क्रमाङ्क लेख	लेखक	पृष्ठ
१—आदेश (कविता)	[प्रोफ़ेसर श्री० रामकुमार जी वर्मा, एम० एम०]	३८९
२—सम्पादकीय विचार...		३८६
३—जला-भुना	[डॉ० धनीराम जी 'प्रेम']	३१३
४—वर्तमान मुस्लिम जगत	[एक डॉक्टर ऑफ़ लिटरेचर]	४२१
५—अज्ञात (कविता)	[श्री० हज़ारीलाल जी वर्मा, 'रञ्जन']	४३७
६—ईश्वरवाद की परीक्षा	[श्री० रमाशङ्कर जी मिश्र, एम० ए०, बी० एल०]	४३६
७—प्रति	[श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]	४४५
८—मेरा प्रेम (कविता)	[श्री० लक्ष्मीनारायण जी अग्रवाल]	४५०
९—पुष्प (कविता)	[श्री० लक्ष्मीनारायण जी अग्रवाल]	४५०
१०—नारी-जीवन (कविता)	[श्री० आनन्दी-प्रसाद जी श्रीवास्तव]	४५१

* * *

विविध विषय

क्रमाङ्क लेख	लेखक	पृष्ठ
११—सी० आई० डी० विभाग में स्त्रियाँ	[श्रीमती संयोगिता देवी मेहता]	४५५
१२—भारतवासियों का स्वास्थ्य	[श्री० दीनानाथ जी व्यास, विशारद]	४५६

क्रमाङ्क लेख लेखक पृष्ठ

१३—चुम्बन [श्री० वंशीधर जी मिश्र, एम० ए०, एल्-एल्० बी०] ४५६

१४—पर्दा उठ कर ही रहेगा [महाराज-कुमारी ललिता देवी (बदवान)] ४६२

१५—आध्यात्मिक शिक्षा [ज्ञानमल्ल हंसराज जैन] ४६३

१६—अर्वाचीन भारतीय ग्रामीण-समाज [प्रकाशचन्द्र दत्त 'सहिष्णु'] ४६५

* * *

१७—दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह ["पागल"] ४६७

१८—तुमसे—(कविता) [श्री० 'व्यथित हृदय'] ४६९

* * *

क्रमाङ्क लेख लेखक पृष्ठ

रङ्ग-भूमि

१९—अभिशाप और लज्जा ४७१

२०—अन्धों की समस्या ४८१

२१—उपहासजनक अभिज्ञता ४८२

२२—एक अनुकरणीय बिल ४८२

२३—वेलफ़ेयर ऑफ़-इण्डिया लीग ४८३

२४—जीवन का आदर्श और स्त्रियाँ ४८४

* * *

२५—साहित्य-संसार [आलोचक श्री० अवध उपाध्याय]... ... ... ४८७

२६—उपन्यास-कला और श्री० प्रेमचन्द के उपन्यास [श्री० केशरीकिशोर शरण जी, बी० ए० (ऑनर्स), साहित्य-भूषण, विशारद] ४८९

क्रमाङ्क लेख लेखक पृष्ठ

२७—केसर की क्यारी (कविता) [सम्पादक—कविवर 'बिस्मिल'] ४९५

* * *

विश्व-वीणा

२८—स्त्रियों के वोट देने और कौन्सिलों की सदस्या होने के अधिकार ४९७

२९—स्त्रियों का व्यापक क्षेत्र ४९९

* * *

३०—सङ्गीत-सौरभ [सम्पादक-श्री० नीलू बाबू] ५०१

३१—दुबे जी की चिट्ठी [श्री० विजयानन्द दुबे जी] ५०२

३२—उपालम्भ (कविता) [श्री० 'सुकुमार'] ५०४

३३—स्वास्थ्य और सौन्दर्य [श्री० रतनलाल जी मालवीय, बी० ए०, एल्० एल्० बी०] ... ५०५

क्रमाङ्क लेख लेखक पृष्ठ

३४—श्री जगद्गुरु का फ़तवा [हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द विरूपाक्ष] ५०६

* * *

चित्र-सूची

१—सावन का झूला (तिरङ्गा)

आर्ट-पेपर पर रङ्गीन

२—चितवन

३—प्रकृति

सादे

४-३३—भिन्न-भिन्न विषयों के चित्र तथा ग्रूप आदि—३० चित्र।

कार्टून

३४—द्विविधा

३५—जॉनबुल का कार्यक्रम

३६—मधुर-मिलन

सावन का झूला

स्थानापन्न-सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—श्री० शङ्करदयाल श्रीवास्तव, एम० ए०

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ६ खण्ड २ | अगस्त, १९३१ | संख्या ४ पूर्ण संख्या १०८

आदेश

[प्रोफ़ेसर रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

स्वप्न-राज्य को अब न सजाना !

नहीं जानते हो किस गति से कहाँ-कहाँ है जाना-आना,
गूँथ रहे प्रतिपल जीवन, है किस भविष्य का ताना-बाना !
चढ़े हुए हो समय-अश्व पर, उसका निश्चित गति से जाना,
पतन मृत्यु है, वायु-वेग है जीवन का रुकता-सा गाना।
स्वप्न-राज्य को अब न सजाना !

❀

मृत्यु-हीन पीड़ा का गर्जन जीवन-वारिधि में लहराता,
मानव अपने रहने को जग में पीड़ा का भवन बनाता।
सुख थामे दुख का कर जग की पर्वत-श्रेणी पर चढ़ जाता,
इन्द्रधनुष से रँगा क्षणिक बादल अपनी छवि पर इठलाता।
स्वप्न-राज्य को अब न सजाना !

जग में सुख के पत्थर पर दुख के कितने ही महल बनाना,
एक मास की लोभ-अवधि में शशि को पूर्ण एक दिन पाना।
जीवन-ज्वार उतार रूप में यौवन का पल में बह जाना,
और समय के शासन में परिवर्तन का है एक बहाना।
स्वप्न-राज्य को अब न सजाना !

❀

तारों के झिलमिल परिधानों के सोते जग का ढक जाना,
तारों की आकांक्षा में बुद्बुद का फूट-फूट थक जाना।
यही देखता हूँ अपने भावों का आँखों से मुरझाना,
मानो माँ के एक पुत्र का अर्ध निशा में बाहर जाना।
स्वप्न-राज्य को अब न सजाना !

अगस्त, १९३१

हमारी धार्मिक समस्याएँ

मानव-समाज के विकास के प्रारम्भिक काल में, जब कि समाज-सङ्घों और राजनीतिक संस्थाओं का आदि-निर्माण हुआ था, उसके पहले—बहुत पहले ही मनुष्य ने जीवन के नैतिक एवं आध्यात्मिक अङ्गों को परिपुष्ट किया था। कारण जीवन के इन दोनों प्रमुख अङ्गों को परिपुष्ट किए बिना न तो समाज-सङ्घों का, और न राजनीतिक संस्थाओं के ही किसी स्थायी रूप का निर्माण किया जा सकता था। तात्पर्य यह कि नैतिकता और अध्यात्मवाद ही सामाजिक एवं राजनीतिक दुर्ग की नींव है। बिना इन प्रमुख गुणों के न तो समाज की ही कोई स्थायी व्यवस्था हो सकती है और न राजनीति की ही। नैतिकता और अध्यात्मवाद समाज एवं राजनीति के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना शरीर के लिए प्राण। जिस भाँति काया की दीवार प्राण-वायु के बिना खड़ी नहीं रह सकती, उसी भाँति समाज, धर्म के बिना अपना कोई अस्तित्व नहीं रख सकता—वह धर्म, जो अध्यात्मवाद एवं नैतिकता का शुद्ध मिश्रण है। और क्योंकि राजनीति समाज का एक अङ्ग मात्र है, अतः धर्म से पृथक राजनीति अपनी कोई पृथक सत्ता नहीं रख सकती। कहने का अभिप्राय यह कि राजनीतिक एवं सामाजिक संस्थाओं की एकता, उनका अन्तिम उद्देश्य धर्म के सूत्र में बाँधे बिना प्राप्त नहीं हो सकता। इसी कारण हिन्दू-धर्म के आदि-प्रवर्तकों ने राजनीति-शास्त्र एवं समाज-विज्ञान को धर्म का एक अङ्ग माना था और इसीलिए आर्ष-धर्म एवं वैदिक ग्रन्थों में समाज-विज्ञान तथा राजनीति-शास्त्र की धर्म से पृथक अपनी कोई भिन्न सत्ता नहीं है। इस दृष्टि-कोण से जब हम यूरोपीय राजनीति के सम्बन्ध में विचार करते हैं, तो वह एक भिन्न वस्तु एवं भिन्न आदर्श के रूप में उपस्थित होती है। प्राच्य एवं पाश्चात्य राजनीति में आकाश-पाताल का अन्तर है। प्राच्य राजनीति की भाँति पाश्चात्य राजनीति अपने को नैतिक अथवा आध्यात्मिक, किसी भी बन्धन में नहीं डालती। प्राच्य हिन्दू राजनीति की भाँति उसका उद्देश्य विश्व-सेवा एवं उसकी सिद्धि विश्व-कल्याण में नहीं है। वह तो अपने राष्ट्र का

कल्याण, अपने राष्ट्र की उन्नति अन्य राष्ट्रों की पराधीनता तथा विवशता पर चाहती है। आर्ष-ग्रन्थों में जहाँ भी राजनीति के उद्देश्य तथा उसकी आत्म-सिद्धि की विवेचना की गई है, वहाँ विश्व-हित और विश्व-कल्याण का प्रसङ्ग अवश्य ही आता है; परन्तु इसके विपरीत आधुनिक यूरोपीय राजनीति में सङ्कीर्ण राष्ट्रवाद ही प्रमुख वस्तु है। यही कारण है कि वर्तमान संसार, जिस पर यूरोपीय राजनीति का विशेष प्रभाव है, आज सन्देह, अविश्वास, युद्ध, अशान्ति और घृणा के दूषित भावों से पूर्ण है। इसीलिए आज का संसार प्रतिक्षण युद्ध के संहारकारी चित्रों की कल्पना एवं उन युद्धों के निमित्त भीषण आविष्कारों में लिप्त है। अस्तु—

विश्व-कल्याण एवं संसार के हित के लिए यह अत्यन्त आवश्यक एवं ग्राह्य है कि संसार के सम्पूर्ण राष्ट्रों का वातावरण अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण हो जाय! मानव-जाति की शान्ति और सुख केवल इसी बात में है; अन्यथा संसार में जब तक सङ्कीर्ण राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव होता रहेगा, तब तक मनुष्य-जाति चैन की नींद से सो नहीं सकती। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि राष्ट्रीय जीवन को प्रौढ़ एवं उन्नत बनाने के लिए किसी विशेष परिस्थिति में राष्ट्रवाद की आवश्यकता पड़ती है; परन्तु उस राष्ट्रवाद अथवा स्वदेश-उन्नति का प्रमुख उद्देश्य विश्व-सेवा ही होना चाहिए। जिस भाँति व्यक्ति-विशेष अपना शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास केवल एक विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए करता है, उसी भाँति राष्ट्र की प्रत्येक उन्नति कर उसकी मर्यादा विश्व-सेवा में सीमित करना ही राजनीति का प्रधान उद्देश्य है। राजनीति एवं समाज-शास्त्र करोड़ों मनुष्यों की दरिद्रता, दुख एवं विपत्तियों के मूल्य पर कुछ व्यक्ति-विशेष के द्वारा सुख उपार्जन तथा आनन्द-उपभोग की शिक्षा नहीं देता। इसका ध्येय यह है कि प्रत्येक प्राणी अपने और अपने जीवन के सारे सुख को समूह-विशेष के हित में विलीन कर दे। यही अनन्त-कल्याण का साधन-पथ है। इटली और फ़्रान्स, फ़्रान्स और ब्रिटेन, ब्रिटेन और रूस, जर्मनी और फ़्रान्स तथा इसी प्रकार संसार के अन्य राष्ट्रों का परस्पर आन्तरिक मनोमालिन्य राजनीति के सर्व-श्रेष्ठ सिद्धान्तों को घातक है। इसी कारण संसार के राष्ट्रों को संहार से बचाने के लिए आज सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि हम आधुनिक राजनीति के दृष्टि-कोण को पूर्णतः बदल दें। संसार आज इस बात का अनुभव करने लगा है और संसार की आधुनिक राजनीति उस स्थिति में पहुँच चुकी है, जबकि वह हिन्दू राजनीति के उद्देश्य का महत्व समझे और उस उद्देश्य की ओर अग्रसर हो। तात्पर्य यह कि आज संसार की सब से बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि वह राजनीति की सङ्कीर्णता को धर्म की व्यापकता में परिणत कर दे। जो बात संसार के लिए लागू है, वह भारत के लिए भी उसी प्रकार लागू है। इसी कारण आज इस अभागे देश की प्रत्येक राजनीतिक एवं सामाजिक समस्या की आधार-भित्ति धर्म होना चाहिए। धर्म से हमारा तात्पर्य यह नहीं कि भारतीय राजनीति के वाह्याभ्यन्तर साम्प्रदायिकता की कलुषित सङ्कीर्णता हो तथा धर्म का हम निर्वाचनों और नौकरियों के सुरक्षित स्थानों के रूप में मोल-तोल करें। भारतीय राजनीति में इस स्थान पर धर्म से हमारा अभिप्राय यह है कि सामयिक राजनीति में हम यथासम्भव धार्मिकता का उचित लाभ उठावें। दृष्टान्त-स्वरूप भारत की वर्तमान राजनीति एक ऐसे पराधीन देश की राजनीति है, जो ब्रिटेन जैसे अत्यन्त शक्तिशाली एवं साम्राज्यवादी राष्ट्र की दासता से मुक्त होना चाहता है। इस मुक्ति के पथ में हमें हिन्दू-धर्म की रचनात्मक शक्तियों और आदर्शों से यथाशक्ति लाभ उठाना चाहिए—उन रचनात्मक शक्तियों और आदर्शों से, जिसकी चर्चा हम आगे चल कर करेंगे। परन्तु इसके पहले कि हम अपनी धार्मिकता का राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं में उचित लाभ उठावें, इस बात की परम आवश्यकता है कि हम आज सर्व-प्रथम अपनी धार्मिक समस्याओं को हल कर लें। अस्तु—

हिन्दू-धर्म की समस्याएँ आज उलझी हुई हैं। इसके अन्तर्पट की सारी रचनात्मक शक्तियाँ आज त्रस्त हैं और इसकी सारी वाह्य विध्वंसात्मक शक्तियाँ इसके संहार में जुटी हुई हैं। तात्पर्य यह कि यदि हम अपनी धार्मिक समस्याओं को शीघ्रातिशीघ्र हल करने में न लग जायँ, तो कुछ दिनों के बाद हमारा धार्मिक पतन सुधार

की सीमा से दूर हट जायगा और उसके बाद हमारी वही स्थिति होगी, जो प्राचीन ग्रीक, यूनान, बैबीलोन आदि देशों की हुई। इसलिए विश्व-कल्याण एवं विश्व-सेवा के निमित्त हिन्दू-धर्म तथा हिन्दू-संस्कृति की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है और हिन्दू-धर्म की रक्षा करने का अर्थ यह है कि हम इसके वाह्य-रूप में फँसी हुई बुराइयों का जड़-मूल से नाश करें। हमने इस स्थान पर जान कर ही वाह्य-रूप की चर्चा की है, कारण किसी भी धर्म में आन्तरिक बुराई नहीं होती। मनुष्य-मात्र के धर्म का आन्तरिक उद्देश्य एक ही है। वह है अपने व्यक्तित्व को अनन्त के व्यक्तित्व में आत्म-समर्पण करना और अनन्त के व्यक्तित्व को अपने व्यक्तित्व में अभिव्यक्त करना। अतः जहाँ तक धर्मों के मूल एवं अन्तरङ्ग सिद्धान्तों का प्रश्न है, वहाँ मनुष्य मात्र का लगभग एक ही धर्म है; परन्तु देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार धर्म के वाह्य-उपकरण, उसके वाह्य-चिन्ह भिन्न-भिन्न होते हैं। और जब काल के अनियन्त्रित प्रवाह अथवा मानव-जाति की स्वाभाविक दुर्बलता के कारण इन वाह्य-उपकरणों अथवा चिन्हों में बुराइयाँ फैल जाती हैं; तब उनमें नए-नए सुधारों की आवश्यकता होती है। ये सुधार अनिवार्य हैं, इनके बिना धर्म की आधार-भित्ति नष्ट हो जाती है। जिस भाँति शरीर आत्मा का आधार-रूप है; उसी प्रकार मठ-मन्दिर आदि वैष्णव-धर्म का आधार-रूप है। हम उन आधार-रूपों का नाश नहीं कर सकते, उनमें केवल सुधार ही कर सकते हैं। कारण उनका नाश करना धर्म के मूल-आधार का नाश करना है। जिस प्रकार शरीर में घाव होने पर उसे (शरीर को) काट कर फेंक नहीं दिया जाता, वरन् उसकी उचित औषधि होती है, उसी भाँति धर्म के इन वाह्य उपकरणों के दूषित हो जाने पर उस दूषण को हटाना ही श्रेयस्कर है, न कि उसका नाश कर देना!

हिन्दू-धर्म की आज ठीक यही अवस्था है। हिन्दू-धर्म आज त्रस्त और मरणोन्मुख इसलिए है, कि उसके बाह्य अङ्गों में भीषण रोग फैल चुका है। हिन्दू-धर्म की समस्याएँ आज जटिल इसलिए हैं, कि उसके प्रमुख बहिर्अङ्गों की अवस्था आज अत्यन्त जटिल हो गई है। ये बहिर्अङ्ग मठ-मन्दिर हैं। हम मठ-मन्दिरों के विरोधी नहीं और न हम मूर्त्तिपूजा के ही विरोधी हैं। हमारी दृष्टि में ये मठ-मन्दिर हिन्दू-धर्म के प्राण हैं। ये हमारे लिए दुर्गों के रूप में हैं—उन विशाल दुर्गों के रूप में, जहाँ हमारे धर्म की सर्वोत्तम शक्ति का सञ्चय एवं विकास हो सकता था। परन्तु आज इन दुर्गों की स्थिति भीषण है। आज यदि हिन्दू-धर्म के संहार में अधिक से अधिक उत्तेजना देने वाली कोई वस्तु है, तो वह हमारी धार्मिक संस्थाओं के रूप में हमारे मठ और मन्दिर हैं—वे मठ-मन्दिर, जहाँ प्रति दिन करोड़ों व्यक्ति भगवान के पाद-पद्मों में अपना सर्वस्व निछावर करने के निमित्त जाते हैं; वे मठ-मन्दिर, जहाँ हिन्दू-धर्म की अधिकांश जनता श्रद्धा, भक्ति, प्रेम और प्रसन्नता के साथ भगवान के श्रीचरणों में अपना जीवन एक "निष्काम प्रार्थना" के रूप में उपस्थित करती है; वे मठ-मन्दिर, जहाँ मुक्ति के जिज्ञासु जीवन और मृत्यु से त्राण पाने की इच्छा से अपना सर्वस्व उत्सर्ग करने के लिए समुपस्थित होते हैं। वे अधिकांश मठ-मन्दिर, जहाँ आज धर्म के बदले अधर्म, पुण्य के बदले व्यभिचार, भक्ति और मुक्ति के बदले लूट-खसोट का दारुण-काण्ड उपस्थित किया जाता है। प्राचीन काल में जब इन मठों और मन्दिरों की उत्पत्ति हुई थी, इनका उद्देश्य महान था। इनका निर्माण इसलिए हुआ था कि ब्रह्म एवं मुक्ति की जिज्ञासा करने वाली आत्माओं के लिए ये स्थान प्रत्येक सुविधा उपस्थित कर सकें। प्राचीन काल में ये पवित्र स्थान केवल साधकों के साधन के ही स्थान हों, सो बात न थी; इनका उपयोग महाविद्यालयों और आध्यात्मिक प्रयोग स्थानों (Spiritual Laboratories) के रूप में किया जाता था। अध्यात्म-पथ से भूले-भटके पथिक यहाँ अपना पथ ढूँढ़ने आया करते थे। इसलिए प्रत्येक हिन्दू का यह अत्यन्त आवश्यक, अनिवार्य एवं पवित्र कर्तव्य था, कि वह इन मठों और मन्दिरों में भगवान के नाम पर अपनी आय की निश्चित रक़म श्रद्धा और भक्ति के साथ समर्पित करे। वह उपयोगी प्रथा आज भी वैसी ही है; पर इन अधिकांश मठों और मन्दिरों का उपयोग धर्म की रक्षा के बदले धर्म के सर्वनाश में किया जाता है।

आज हमारे मठों की आय का अन्त नहीं; देश में लाखों मठ हैं और इन मठों में ऐसे मठों की संख्या कम नहीं है, जहाँ प्रतिवर्ष लाखों की आय न होती हो।

एक-एक मठ ऐसे हैं, जहाँ के तहख़ानों में आज भी लाखों की पूँजी सञ्चित है। इन मठों की अपनी स्वतन्त्र ज़मींदारियाँ हैं और हमारे दुर्भाग्य से हमारे मठाधीश आज धर्म के संस्थापक न होकर पूँजीपति-ज़मींदार हैं। उनमें अधिकांश का काम यही है कि दूध, मलाई, माल-पुए चाभ कर रात-दिन सोएँ और व्यभिचार में संलग्न हों। हमारे अधिकांश मठाधीश आज ऐसे हैं, जहाँ एक-एक के पास आठ-आठ, दस-दस चेलियाँ सदा मौजूद रहती हैं; बाहर से आने वाली अथवा अस्थायी रूप से आने वाली चेलियों का तो कोई हिसाब ही नहीं। ये चेलियाँ भक्ति और अध्यात्मवाद की जो शिक्षा और दीक्षा लेती हों, इसका जानने वाला तो भगवान ही है, पर हम इतना अवश्य जानते हैं कि मठाधीशों के लिए ये अभागिनियाँ वे सारी सामग्री उपस्थित करती हैं, जो पत्नी पति के लिए कर सकती है। तात्पर्य यह कि हमारे अधिकांश मठाधीशों का काम आज खाने-पीने, मौज करने और अपनी उप-पत्नियों के साथ रास रचने में ही व्यतीत हो रहा है और इनके इस निरर्थक एवं सारहीन जीवन के कारण हिन्दू-समाज तथा हिन्दू-धर्मावलम्बियों की अतुल सम्पत्ति का प्रति वर्ष संहार हो रहा है—उस अतुल सम्पत्ति का, जिसके द्वारा प्रत्येक हिन्दू आज उचित शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त कर सकता था—उस अतुल सम्पत्ति का, जिसका समुचित उपयोग होने से आज हिन्दुओं की यह दुर्दशा और अधःपात न होता, जो आज हो रहा है! यह एक कटु-सत्य है कि आज हमारे मठों के द्वारा जितनी आय होती है, वह भारत-सरकार की आय से कहीं अधिक है। उस धार्मिक आय का अधिकांश भाग या तो व्यभिचार में नष्ट किया जा रहा है अथवा उन साधुओं के खिलाने में, जो हमारे धर्म और समाज के लिए किसी भी काम के नहीं हैं, तथा जिन्हें हिन्दू-धर्म के उच्च आदर्श को कौन कहे, हिन्दू-धर्म की वर्णमाला का भी ज्ञान नहीं है। एक ओर हिन्दू-धर्म के नाम पर अभिमान करने वाले पेट की ज्वाला से तड़प रहे हैं, एक ओर राम और गङ्गा जी के नामलेवाओं के अभागे, अबोध बच्चे ईसाइयों के हाथ कुछ आने पैसे पर इसलिए बेच दिए जाते हैं कि उनके पास क्षुधा-पीड़ा-निवारण के लिए कोई भी सामग्री नहीं, और वे अपने अभागे बच्चों का भरण-पोषण करने से विवश हैं; और दूसरी ओर मठों में व्यभिचार-ताण्डव का अभिनय हो रहा है; शिव जी और विष्णु भगवान के पवित्र स्थान वैश्याओं के नृत्य-गान से कलुषित किए जा रहे हैं।

मन्दिरों की अवस्था मठों से कम दयनीय हो, सो बात नहीं। मठाधीशों से हमारे पण्डों में व्यभिचार का प्रमाण और भी अधिक भयानक रूप में है। प्रति सहस्त्र कदाचित् ही एक-दो पण्डे ऐसे निकलें, जिनका आचरण शुद्ध हो। हमारे अधिकांश पण्डों का दैनिक कार्यक्रम केवल दण्ड-बैठकें मारना, कुश्ती लड़ना, बादाम-भाँग छानना, अच्छे से अच्छे भोजन खाना और वेश्यागृहों में मौज उड़ाना है। किसी भी तीर्थस्थान में जाकर सब बातें भली-भाँति निरीक्षण करने से इसका प्रमाण किसी भी व्यक्ति को मिल जायगा। सब से दयनीय बात तो यह है कि तीर्थस्थानों वाले स्टेशनों से दो-चार स्टेशन पहले ही इन पण्डों के दलाल यात्रियों को अपने जाल में फँसाने के लिए घूमते रहते हैं। जो भोले-भाले यात्री इनके जाल में फँस जाते हैं, वे एक प्रकार अपने सिर पर बला ले लेते हैं। इन अभागों को इस प्रकार चूसा जाता है कि तीर्थ कर चुकने के बाद इनके पास घर लौटने का व्यय बड़ी कठिनाइयों से बच जाता है। प्रत्येक प्रकार की अनुचित चालों और झूठे धार्मिक प्रलोभनों के द्वारा इनके पास का सारा द्रव्य ले लिया जाता है। "यह गौरी पर चढ़ाओ तो यह महादेव जी पर, यह विष्णु भगवान को समर्पित करो तो यह जगत-माता को, यह पाप-मोचन का दक्षिणा हुआ तो यह सङ्कट-निवारण का, यह गोदान में चढ़ाओ तो यह ग्रह-निवारण का, यह पितरों के लिए हुआ तो यह ब्रह्म-भोज का........!" इन शब्दों के द्वारा यदि तीर्थयात्री अपने पास का लगभग सारा रुपया स्वाहा नहीं कर देता तो अधिकांश अवसरों में मार-पीट तक की नौबत आ जाती है। और सब से घृणित बात तो यह है कि हमारे पण्डों के अधिकांश कर्मचारी, जो पण्डों और ब्राह्मणों के रूप में दक्षिणा लेते और मन्त्रोच्चारण करते हैं, वे स्वयं उनके कहार, नाई तथा अन्य प्रकार के सेवक होते हैं। हमारा तात्पर्य यह नहीं कि हम ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य जातियों के विरुद्ध कोई भाव रखते हैं। हमारा तो आशय केवल इसी बात से है कि हिन्दू-समाज

इस अत्यन्त घृणित एवं दयनीय बात से अनभिज्ञ न रहे कि हमारे धर्म और मुक्ति के दाता आज कितनी घृणित चालों से हमारे पसीने की कमाई का एक महत्वपूर्ण भाग चूस लेते हैं और इस प्रकार की चूसी हुई अतुल सम्पत्ति पाप और व्यभिचार, पारस्परिक झगड़ों और मुक़दमों में नष्ट कर दी जाती है। मन्दिरों में चढ़ाए जाने वाले रुपयों की कोई निश्चित संख्या नहीं होती। श्रद्धालु जन अपनी शक्ति भर द्रव्य भगवान के चरणों पर समर्पित करते हैं। इस कारण निश्चय के साथ यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे मन्दिरों में दान की आय कितनी होती है, पर यह बात बिना सङ्कोच के कही जा सकती है कि उस आय की रक़म अस्सी करोड़ रुपयों से कम प्रति वर्ष न होगी। तात्पर्य यह कि हिन्दू-मन्दिरों में चढ़ने वाली रक़म की वार्षिक आय भारत-सरकार के वार्षिक सैनिक व्यय से लगभग डेढ़-गुणा है—उस सैनिक व्यय से, जो केवल भारत को ही सुरक्षित करने में नहीं, वरन् सारे एशिया में ब्रिटिश-सत्ता को सुदृढ़ करने के लिए व्यय किया जाता है।

इस स्थान पर हम मन्दिरों के सम्बन्ध में धार्मिक रूप से होने वाले दूषणों और पापों की चर्चा करना नहीं चाहते। वह एक स्वतन्त्र लेख का विषय है। इस स्थान पर हम उन लोमहर्षक एवं रोमाञ्चकारी व्यभिचारों की चर्चा करना नहीं चाहते, जो हमारे मन्दिरों के वायु-मण्डल में घृणित रूप से सम्पन्न किए जाते हैं। हम न तो इस स्थान पर इस अन्यायपूर्ण बात की ही चर्चा करना चाहते हैं कि भगवान का दरवाज़ा मालदारों के लिए पहले खुल जाता है और भक्ति की पवित्र भावनाओं से प्रेरित निर्धन व्यक्तियों को सहस्रों की संख्या में झाँकी के निमित्त घण्टों प्रतीक्षा करनी पड़ती है; और न हम इसी बात की ही चर्चा करना चाहते हैं कि रुपए वालों के लिए मठों और मन्दिरों में भी पण्डों, पुजारियों और मठाधीशों के व्यभिचार की सभी सामग्री मौजूद कर दी जाती है; हम तो इस स्थान पर केवल यही कहना चाहते हैं कि यदि हमारे मठों और मन्दिरों की सम्मिलित आय का आधा भाग भी सार्वजनिक हित एवं राष्ट्रीय मुक्ति के लिए व्यय किया जाय, तो कुछ महीनों में हमारा अभागा देश पूर्ण रूप से स्वातन्त्र्य हो सकता है। इस प्रकार हम अपने देश को ही स्वतन्त्र कर सकेंगे, सो बात नहीं, देश की स्वतन्त्रता हमारी धार्मिकता को भी स्वतन्त्र करेगी, कारण पराधीन राष्ट्र के धर्म भी पराधीन होते हैं और किसी भी धर्म का उचित आध्यात्मिक उपयोग अथवा विकास राष्ट्र को स्वतन्त्र किए बिना नहीं हो सकता। इस कारण राष्ट्रीय दृष्टि से ही नहीं, वरन् धार्मिक दृष्टि से भी आज इस बात की अत्यन्त अधिक आवश्यकता है कि हम अपने मठों और मन्दिरों के सुधार के लिए लग जायँ। हमारा तो विश्वास है कि हमारी इन धार्मिक संस्थाओं का सुधार, स्वयं राष्ट्रीय दृष्टि से भी विगत एवं भावी सत्याग्रह आन्दोलन से कम महत्व नहीं रखता। प्रचलित प्रथा के दूषण से आज इन पर कुछ व्यक्ति-विशेष का सर्वस्व अधिकार भले ही हो गया हो, पर यह अधिकार सर्वथा असङ्गत एवं अन्यायपूर्ण है। न्याय के रूप में भी यदि हमारे मठों और मन्दिरों पर मठाधीशों तथा पण्डों का अधिकार भले ही हो, पर स्वयं वे मठाधीश और पण्डे हिन्दू-धर्मावलम्बी जनता के प्रति उत्तरदायी हैं और इस बात का प्रमाण बड़ी सुविधा के साथ दिया जा सकता है कि इस प्रकार की धार्मिक संस्थाओं और दैवी-सम्पत्ति पर प्राचीन काल में उस धर्म की अनुयायी जनता का सर्वस्व अधिकार रहा है। मठाधीशों के निर्वाचन की आज जो प्रथा है, वह पहले न थी। जनता का इस निर्वाचन में पूर्ण अधिकार था और थोड़ी देर के लिए तर्क के निमित्त यह मान भी लिया जाय कि मठों और मन्दिरों पर जनता का अधिकार प्राचीन काल में न था, तो इससे यह परिणाम नहीं निकलता कि आज भी, भविष्य में भी ऐसा ही हो। इस कारण आज हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जाति को सर्वनाश के भयानक गह्वर में पतित होने से बचाने के निमित्त यह अत्यन्त आवश्यक है कि हमारे मठों और मन्दिरों का शीघ्रातिशीघ्र सुधार हो। इन सुधारों की वृहद योजना क्या होगी, यह हिन्दू-जाति के कर्णधार स्वयं निर्णय करें; परन्तु हमारा विचार है कि हमें अकालियों के पथ पर चलना होगा। मठों और मन्दिरों पर सार्वजनिक अधिकार प्राप्त करने के निमित्त, इन अभागी धार्मिक संस्थाओं को व्यभिचार का क्रीड़ा-क्षेत्र होने से रोकने के निमित्त, प्राचीन काल की भाँति इन्हें सार्वजनिक उपयोग की संस्थाओं के रूप में परिणत करने

के निमित्त, हिन्दू-धर्म एवं हिन्दू-जाति के लिए इन्हें स्वतन्त्रता प्राप्त करने का केन्द्र बनाने तथा उनकी दासता छुड़ाने के निमित्त, हिन्दू-महिलाओं को विधर्मी एवं पतित होने से रोकने के निमित्त एवं मरणोन्मुख हिन्दू-जाति में एक नवीन शक्ति, नवीन स्फूर्ति तथा नवजीवन सञ्चार करने के निमित्त आज हमें अपने मठों और मन्दिरों पर सार्वजनिक (साम्प्रदायिक) अधिकार प्राप्त करने की आवश्यकता है। इन धार्मिक संस्थाओं पर हमारा पूरा अधिकार हो; हम अपने बहुमत से मठाधीशों का निर्वाचन कर सकें तथा अपने बहुमत से ही अयोग्य एवं पतित महन्तों को उनके अधिकार से वञ्चित कर सकें। इतना ही नहीं, इन संस्थाओं के द्वारा प्राप्त धन पर हमारा पूरा अधिकार हो। हम स्वयं महन्तों के तथा आवश्यकीय धार्मिक कार्यों के व्यय का व्योरा तैयार करें। हिन्दू-धर्म की उन्नति और विकास के लिए हमें इस बात का पूरा अधिकार प्राप्त हो कि हम इन संस्थाओं की आय की अतुल सम्पत्ति को उचित एवं लाभदायक कार्यों में लगाएँ। इस प्रकार इन संस्थाओं पर आर्थिक प्रभुत्व पाने से ही हमारे अधिकार में ७९ लाख से अधिक साधु कार्यकर्ता आ सकते हैं। इस अतुल धन-जन से हम अपनी उन्नति और विकास के निमित्त क्या नहीं कर सकते, यह बात विचारणीय है। अस्तु—

पर हमारे मठों और मन्दिरों का सुधार आसान नहीं है। राजनीतिक आन्दोलनों में तो सरकार ही हमारा विरोध करती है एवं इस विरोध में हम पर कोई भी राक्षसी अत्याचार करने से नहीं चूकती। धर्म-सुधार के इस आन्दोलन में सरकार हमारा विरोध तो करेगी ही, इसके अतिरिक्त लाखों की संख्या में हमें उन लोगों का विरोध सहना पड़ेगा, जो हमारे अपने हैं, जिनके धर्म और अधर्म की समस्या हमारे धर्म और अधर्म की समस्या है; जिनके पाप और पुण्य का प्रश्न स्वयं हमारे पाप और पुण्य का प्रश्न है, तथा जिनके जीवन और मृत्यु की समस्या हमारे जीवन और मृत्यु की समस्या है। ये हमारे अपने, हमारे भगवान को अपना भगवान और हमारे धर्म-शास्त्रों को अपना धर्म-शास्त्र कहने वाले, उस समय हमारे रक्त के प्यासे होंगे; कारण मन्दिरों और मठों का सुधार इनके जीवन के सारे विलास और वैभवों का घातक होगा। इनके साथ "क़ानून और शान्ति" की रक्षा की आड़ में सरकार हमारा जिस प्रकार भीषण विरोध करेगी उसकी कल्पना मात्र से हम काँप उठते हैं। जिन लोगों ने विगत असहयोग काल में अकाली-आन्दोलन को अपनी आँखों से देखा है, वे हमारे इस कथन की सत्यता का अनुभव भली-भाँति कर सकेंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। कारण, मन्दिरों और मठों का सुधार हिन्दू-जाति को भारत-सरकार से अधिक सम्पन्न बना सकेगा। इस अतुल धन से हम थोड़े से थोड़े समय में अपना इतना अच्छा सङ्गठन कर सकेंगे कि संसार की सारी सरकारें सम्मिलित होकर भी हमें गुलाम नहीं रख सकतीं। इस परिस्थिति में हमारे धार्मिक सुधारों के मामले में सरकार का विरोध करना स्वाभाविक ही है। जो सरकार आज से आठ वर्ष पहले २० लाख अथवा इससे भी कम अकालियों का सङ्गठन नहीं सह सकती थी और इस कारण जिस सरकार के सिर पर जैतों और 'गुरु का बाग़' के सारे रोमाञ्चकारी एवं घृणित अभिनयों का उत्तरदायित्व है, वह सरकार २० करोड़ से अधिक वैष्णवों अथवा २५ करोड़ से अधिक हिन्दुओं के धार्मिक सङ्गठन एवं मठ-मन्दिर-सुधार का कितना भयानक विरोध करेगी, इसकी कल्पना सहज ही नहीं की जा सकती। वह विरोध विगत सत्याग्रह आन्दोलन के विरोध से कहीं अधिक व्यापक और भीषण होगा।

परन्तु इस विरोध के भय से हम भगवान के पवित्र-पथ को दूषित करने वाली तथा भगवान के नाम पर व्यभिचार एवं नाना भाँति के दुर्गुण उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों का सामना किए बिना हम नहीं रह सकते। आज एक ओर हमें सरकार तथा अपने लोगों के भीषण विरोध का सामना करना है, तो दूसरी ओर अखिल हिन्दू-जाति एवं हिन्दू-धर्म के जीवन और मृत्यु का प्रश्न है। इन युद्ध और विरोधों के भय से हम हिन्दू-संस्कृति एवं हिन्दू-धर्म का सत्यानाश होने में सहायक नहीं हो सकते और न आँखें और हृदय होते हुए हम अपने सर्वनाश का दृश्य ही देख सकते हैं।

तात्पर्य यह कि हमारी धार्मिक समस्याएँ आज जटिल और उलझी हुई हैं। हिन्दू-जाति के नेता और कर्णधार आज व्यवस्थापक सभाओं में अपने स्थान-

संरक्षण में लगे हुए हैं। उन्हें न तो हिन्दू-संस्कृति के और न हिन्दू-जाति तथा हिन्दू-धर्म के विनाश की ही चिन्ता है। जितनी शक्ति वे अपने निर्वाचन में लगाते हैं, यदि उतनी ही शक्ति वे मठों और मन्दिरों के सुधार के निमित्त सङ्गठन करने में लगाते तो कदाचित् वे थोड़े से थोड़े समय में व्यवस्थापक सभाओं से सहस्र गुणा अधिक उपयोगी कार्य कर सकते थे। हिन्दू-सभाओं का सङ्गठन उसी प्रकार है; प्रति वर्ष अखिल भारतीय एवं प्रान्तीय हिन्दू-सभाओं के अधिवेशन पहले की ही भाँति होते हैं; परन्तु विगत दस वर्षों से, जब कि हिन्दू-सङ्गठन के आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ था, आज तक कोई भी ऐसी उपयोगी बात न हो सकी, जिसका कोई महत्व, स्थायित्व एवं मूल्य हो।

यहाँ एक प्रश्न और भी है। मठों और मन्दिरों के सुधार का प्रश्न केवल धार्मिक ही हो, यह बात भी नहीं। इनका राष्ट्रीय महत्व कम नहीं है। कॉङ्ग्रेस अथवा कम से कम कॉङ्ग्रेस के हिन्दू-सदस्य इस प्रश्न को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकते। कारण, सुधार का यह आन्दोलन एक जाग्रत एवं अभिनव रूप में राष्ट्र को वह सात्विक उत्तेजना देगा, जिसका महत्व किसी भी राष्ट्रीय आन्दोलन से कम न होगा। इस सुधार में राष्ट्र की आत्मा होगी; वह आत्मा देश के सम्मुख जीवन की सात्विकता एवं स्वतन्त्रता के सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य का कल्पनातीत दृष्टान्त उपस्थित करेगी। हिन्दुओं की धार्मिक समस्याओं का सुधार केवल हिन्दू-जाति तथा हिन्दू-धर्मावलम्बियों के लिए उपयोगी हो, सो बात नहीं; उस सुधार से देश के अन्य धर्मावलम्बियों को भी एक ऐसी सात्विक उत्तेजना मिलेगी, जिससे वे स्वयं अपने धर्म और सम्प्रदाय को विनाश में पतितोन्मुख होने से बचा सकेंगे। तात्पर्य यह कि मठों और मन्दिरों का सुधार साधारण रूप से राष्ट्र की राजनीतिक और विशेष रूप से हिन्दू-जाति की धार्मिक स्वतन्त्रता का वह अध्याय खोलेगा, जिसकी समस्या इतिहासकारों और राजनीतिज्ञों के लिए एक महत्वपूर्ण रहस्य की बात होगी।

"सब ठाट पड़ा रह जावेगा, जब लाद चलेगा बनजारा !"

जला-भुना

[डॉ० धनीराम जी, 'प्रेम']

चाहे उसे 'प्रेम' कहो, चाहे 'इश्क़' कहो, चाहे 'लव' कहो, चाहे 'पागलपन'—है वह एक ही बीमारी। कहीं चले जाओ, उसका वही रूप देखने को मिलेगा। किसी भाषा की पुस्तक पढ़ो, उसका वही वर्णन पढ़ने को मिलेगा। बचपन में क्या समझता था कि इस कम्बख़्त की नज़र मेरे ऊपर भी पड़ेगी? लैला-मजनूँ, शीरी-फ़रहाद, गुलबकावली, मालती-माधव आदि सभी कहानियाँ पढ़ी थीं, परन्तु उन्हें पढ़ कर हँसी आती थी। उन लोगों को मैं सिड़ी, दीवाना, बूदम-बेदाल आदि नामों से पुकारा करता था। आदमी थे या हैवान, इतनी भी अक़्ल न थी कि मुहब्बत करने से पहले कुछ इधर-उधर की सोच लेते। भला इसका भी कहीं ठिकाना कि एक ख़ूबसूरत चेहरा देखा और बस, दिल दे बैठे। दिल न हुआ, एक खिलौना हो गया। उस समय मैं क्या जानता था कि कभी लोग मुझे भी सिड़ी, दीवाना और पागल की उपाधि देंगे; कभी मैं भी इसी प्रकार किसी को देख कर अपने दिल को बिना इधर-उधर की सोचे हुए फेंक दूँगा। मेरी कहानी को पढ़ने वाले मुझे डबल-बेवक़ूफ़ कहेंगे, कहें। उन्हें इस रोग के भेदों का क्या पता है? रङ्गमञ्च पर किसी की मृत्यु होती है तो दर्शक तालियाँ बजाते हैं। नट जितनी ही सुन्दरता से मरता है, दर्शक उतने ही प्रसन्न होते हैं। यही हाल संसार का है। प्रेम के रङ्गमञ्च पर प्रेमीगण तड़पते हैं, परन्तु देखने वाले उसकी खिल्ली उड़ाते हैं। उन्हें क्या मालूम कि—

प्रेम-पयोनिधि में धँसिकै हँसिकै कढ़िबो हँसि-खेल नहीं है।

जब तक इस रोग का आक्रमण नहीं होता, तब तक चाहे जो कुछ कह लो, परन्तु जब एक बार इसके शिकार हुए तो फिर निकलना आसान नहीं है।

अब मुझे मालूम होता है कि फ़रहाद, मजनूँ और रोमियों आदि का इसमें कुछ भी दोष न था। क्योंकि यदि मैं प्रेम करने लगा तो मेरा भी तो इसमें कुछ दोष नहीं है। दिल ही तो है, रोग का शिकार हो गया तो क्या हुआ?

वह दिन मुझे अब तक नहीं भूलता है। बी० ए० पास करके लखनऊ यूनीवर्सिटी में एम० ए० के लिए मैंने नाम लिखाया ही था, मेरे एक मित्र आगरा से एल० एम० पी० पास करके चौक के पास ही डॉक्टरी करने लगे थे, अतः उन्हीं के पास एक कमरा लेकर मैं भी रहने लगा था। रविवार था, कॉलेज बन्द था ही। मैं अपने शयनागार में पड़ा हुआ 'Forsaken Love' उपन्यास पढ़ रहा था कि मेरी नौकरानी ने आकर डॉक्टर जिन्दल के आने की सूचना दी। डॉक्टर बेतकल्लुफ़ थे, जहाँ तक दोस्तों के घर से सम्बन्ध था! परन्तु अपने घर में वे ज़रूर तकल्लुफ़ करते थे। इसमें उनका दोष नहीं था, वे लखनऊ में ही पैदा हुए थे। जब तक नौकरानी कमरे से निकले, आप आ दाख़िल हुए। दरवाज़े में घुसते ही आप बोले—"अरे भाई हरीश, अजब चुक़न्दर हो, ग्यारह बजने आए और नवाब साहब अभी तक ज़नानख़ाने में पड़े हैं।" इतना कह कर आप मेरे पास पलङ्ग पर आ बैठे।

मैंने कहा—कहो, आज बीमार मारने को नहीं मिले कि सुबह ही सुबह धावा बोल दिया।

"ग्यारह बजे को सुबह कहते हो, हज़रत! मैं मरीज़ों को देख कर भी लौट आया और आप अभी तक रज़ाई में पड़े हैं।"

"तो यहाँ क्या ख़ाली हाथ बैठे हैं?"

"ख़ाली हाथ नहीं बैठे तो कौन सी घास खोद रहे हो?"

"एक नॉविल को दो सौ सफ़े ख़त्म कर दिए। यह क्या कम काम है?"

"अच्छा, कुछ चाय-वाय पिलवा रहे हो?"

"ऐसी इल्लत नहीं पालते।"

"तो नीचे से कुछ मिठाई ही मँगवा ले, यार! सेठ की दूकान पर ताज़ी इमरती बन रही है।"

"तो लेते क्यों नहीं आए, क़लन्दरनाथ! मैं भी कुछ खा लेता।"

"यह भी एक कही। बाज़ार से दोना हाथ में लिए निकलता। बुढ़िया को भेज दो।"

"पैसे निकालो।"

"अभी निकालता हूँ।"—कह कर आप मेरे कपड़ों की ओर चलने लगे।

मैंने पूछा—"फिर, उधर आप कहाँ तशरीफ़ लिए जा रहे हैं?"

"तुमने कहा था, पैसे निकालने को। तुम्हारे कोट से निकाल रहा हूँ!"

"तुम डॉक्टरों से तो ईश्वर ही बचावे। बीमार हों तो लूटो और अच्छे हों तो लूटो।"

"डॉक्टरों के पीछे ज़िन्दा रह रहे हो, नहीं तो पता तक न लगे।"—कह कर जिन्दल ने हँसते हुए बुढ़िया को नीचे भेज दिया। फिर मेरे पास आकर कहने लगे—"क्या आज कुछ ख़ास काम कर रहे हो?"

"नहीं तो।"

"फिर चलो उन्नाव की सैर कर आवें।"

"वहाँ सैर करने को क्या रक्खा है?"

"रक्खा तो कुछ नहीं है, ज़रा रेल की सवारी हो जायगी। फिर उधर मामा जी की फ़िटन में सैर करेंगे। शाम को लौट आएँगे।"

"चले तो चलें यार, यह नॉविल समाप्त करना चाहते थे।"

"ऐसी-तैसी नॉविल की, ऐसी इसमें कौन सी ख़ास बात है? फिर ख़त्म कर लेना।"

"ख़ास बात तो नहीं है। एक पढ़े-लिखे उजबक की बेवक़ूफ़ी का क़िस्सा है। हज़रत को एक लड़की पार्क में मिली और मरने लगे!"

"तो इसमें क्या बेवक़ूफ़ी है। अगर कोई मरने लायक़ चीज़ मिले तो मैं जी-जी कर मरूँ। जब तक नहीं मिलती, तभी तक है।"

"अफ़सोस, तुम भी उन्हीं गधों में से एक निकले।"—मैंने मज़ाक़ बना कर कहा।

"ठीक है, डींग मार लो, क्योंकि अभी तक प्रेम की चिनगारी तुम्हारे दिल में दबी हुई पड़ी है। जिस दिन वह तेज़ हो जाएगी, जल-भुन कर ख़ाक हो जाओगे।"

"जी जनाब, ईंजानिब से यह उम्मीद न कीजिए। प्रेम, प्रेम के तरीक़े से किया जाता है, न कि अन्धे होकर।"

"लेकिन हरीश, जब दिल में मुहब्बत पैदा होती है तो कह कर पैदा नहीं होती। तुमने सुना नहीं है कि 'प्रेम' अन्धा है।"

"यह भी किसी अन्धे ने कहा है। मैं दीवाना तो हूँ नहीं। जब किसी से प्रेम करूँगा तो यह अवश्य देख लूँगा कि वह प्रेम करने के योग्य भी है और मुझे भी प्रेम करती है या नहीं।"

"मान लो वह तुम्हें प्रेम न करे?"

"तो मैं भी प्रेम न करूँगा।"

"अच्छा, तो यह सौदा है। आप इस बात में विश्वास नहीं करते कि प्रेम एकतरफ़ा भी हो सकता है।"

"वह प्रेम नहीं है। पागलपन है, जहालत है।"

"अच्छा, इस वक़्त तुम चाहे जो कह लो। कभी काम आवेगा तो बता देंगे।"

"बता देना।"

इमरतियाँ आ गई थीं, डॉक्टर उन्हें ठण्डी थोड़े ही होने दे सकता था। बातें करना छोड़ कर वह लम्बे-लम्बे हाथ मारने लगा।

२

लखनऊ स्टेशन पर आकर हम लोगों ने इण्टर के दो टिकट लिए। गाड़ी प्लेट-फ़ॉर्म पर खड़ी थी। सामान तो कुछ पास था ही नहीं, गाड़ी के सामने चहल-क़दमी करने लगे। यह हम लोगों के लिए कोई नई बात नहीं थी। यह तो कॉलेजों और हाईस्कूलों में पढ़ने वालों की आदत ही हो जाती है। डॉक्टर ज़रा चुलबुले स्वभाव के आदमी थे। ख़ुश रहते थे और दूसरों को ख़ुश रखते थे। गाड़ी के छूटने में जब पाँच मिनट रहे थे तो हम लोगों की दृष्टि एक सुन्दरी की ओर गई। वह पुल पर से उतर कर प्लेटफ़ॉर्म पर ही

आ रही थी। क्या था, डॉक्टर साहब की नज़र उधर को गई और बस उसी पर वार्तालाप होने लगा।

"कहो, कुछ है?"—डॉक्टर बोले।

"बोलो मत यार, मरने लगेंगे।"

"लेकिन तुम्हें तो मरना आता ही नहीं।"

"आता तो नहीं था, मगर मालूम होता है कि यह सिखा देगी।"

"कॉलेज-स्टूडेण्ट मालूम होती है।"

"यूनीवर्सिटी में तो कभी नहीं देखा।"

"इसावेला में होगी।"

"शायद! लेकिन है एक ही चीज़। वह साथ में कौन है?"

"कोई सहेली होगी।"

"कुछ समझ सकते हो, इनमें से कौन जा रहा है?"

"इनमें से कौन जा रहा है, का क्या मतलब? क्या दोनों नहीं जा सकतीं?"

"जा तो सकती हैं, लेकिन दिल कह रहा है कि इनमें से एक जा रही है और दूसरी पहुँचाने आई है।"

"और मेरा दिल कह रहा है कि दोनों जा रही हैं।"—डॉक्टर ने हँसते हुए कहा।

"फ़ैसला कैसे हो?"

"मैं बताऊँ?"—डॉक्टर बोला।

"क्या?"

"पैसा उछाल कर देख लो! सर आए तो तुम ठीक और पूँछ आए तो मैं ठीक।"

"यह ठीक है। यार कभी-कभी तुम ग़ज़ब की सोचते हो।"—यह कह कर मैंने जेब से पैसा निकाल कर प्लेट-फ़ॉर्म पर फेंका। देखने पर मैं उछल कर बोला—"मैं कहता था न, डॉक्टर! सर आया है। इससे यही मालूम होता है कि एक जा रही है।"

"लेकिन सवाल फिर होता है कि कौन सी जा रही है और कौन सी पहुँचाने आई है।"

"फिर पैसा डाल लो।"

पैसा फिर डाला गया। कम्बख़्त, वह नहीं जा रही थी। दम टूट गया। डॉक्टर हँसने लगा, वह तो चिढ़ाने का अवसर देख ही रहा था। मुझे झकझोर कर बोला—"अब क्या करोगे, हज़रत, माशूक़ा साहब तो जा नहीं रहीं। दिल टूट गया होगा।"

वह सच कह रहा था। अब तक जिस दिल पर नाज़ था, वही मचल रहा था, जिस प्रेम पर मैं हँसा करता था, उसी की चिनगारी मेरे भीतर सुलगने लगी थी। मैं सचमुच उस पर मरने लगा था। न जाने उसने क्या जादू डाला था। एक घण्टे पहले ही मैं डींग हाँक रहा था। प्रेम को मूर्खता, इश्क़ को पागलपन समझ रहा था। इतना शीघ्र परिवर्तन! मुझे इसमें अपना अपमान जान पड़ा। डॉक्टर कह चुका था "कभी वक़्त आएगा तो बता देंगे!" क्या इतनी जल्दी मैं अपनी पराजय स्वीकार कर लूँ। मैं मन के भाव दबा कर बोला—"सुनो डॉक्टर, मज़ाक़ के वक़्त मज़ाक़ किया करो। किसी बेचारी लड़की को मेरी माशूक़ा न बनाओ। मैं तुमसे कह ही चुका हूँ कि मैं इस इश्क़ के झगड़े को पालना भी पसन्द नहीं करता। यों किसी ख़ूबसूरत चीज़ की तारीफ़ न करने की क़समें थोड़े ही खाई हैं।"

"अच्छा, तो फिर चलिए दरबे में बैठिए।"

"अभी तो गाड़ी में तीन मिनट की देर है। ज़रा हवा में टहलो। डॉक्टर होकर भी हाईजिन की बातें भूल जाते हो।"

"डब्बे में सिर्फ़ तीन आदमी बैठे हैं। काफ़ी ताज़ी हवा मिल जायगी। आप हाईजिन की परवाह न कीजिए।"

कुछ देर तक मैं चुपचाप खड़ा रहा। अगर वह जा नहीं रही है तो फिर कैसे उसका पता लगेगा। जब गाड़ी में एक मिनट रहा, तब भी वे दोनों एक सेकण्ड क्लास के डब्बे के सामने खड़ी थीं। मैं डॉक्टर से बोला—"डॉक्टर, यार एक बात सुनो।"

"कहो!"

"मुझे कुछ सर में दर्द मालूम होता है।"

"इसके दो ही कारण हो सकते हैं। या तो 'प्रेम' या ठण्डी हवा। 'प्रेम' को तो तुम स्वीकार करते ही नहीं, अतः ठण्डी हवा ही इसका कारण हो सकती है। इसका इलाज यही है कि चल कर गाड़ी में बैठो।"

"गाड़ी में तो यार........."

"क्यों, इरादा क्या है?"

"मेरे ख़याल में आज उन्नाव जाना पोस्टपोन कर दो तो अच्छा है।"

"मर्द हो या औरत ? ज़रा से सर-दर्द से ही घबरा गए।"

"बात यह है कि बाहर जाकर तबियत ज़्यादा ख़राब हुई तो तुम्हें भी तकलीफ़ होगी और मुझे भी। इससे तो अच्छा यही है कि यह बला मोल ही क्यों ली जाय।"

"सो इस बात की तुम परवाह मत करो। मेरे पास कुछ ऐस्पिरीन की गोलियाँ हैं। एक खा लो। और फिर, उन्नाव में काफ़ी डॉक्टर और दवाएँ मिलेंगी।"

"उन्नाव में क्या रक्खा है यार !"

"तो यों क्यों नहीं कहते कि माशूक़ के घर का पता लगाना है। लो, हम भी पोस्टपोन करते हैं। तुम्हें प्रेम हुआ तो सही।"—वह हँस कर बोला, उसकी वह हँसी मुझे छेद रही थी। मैं नीची आँखें किए बोला—"तुम तो समझते नहीं हो डॉक्टर ! हर वक़्त मज़ाक़ करते हो।"

"मैं सब समझता हूँ। मेरा ख़याल मत करो।"—हम दोनों बातें कर रहे थे कि गाड़ी चल दी। मेरी दृष्टि उधर को गई तो क्या देखता हूँ कि वह तो गाड़ी पर चढ़ गई और उसकी सहेली नीचे खड़ी रह गई। मेरे मुख से एकाएक निकल गया—"डॉक्टर ग़ज़ब हो गया। हमारी कल्पना झूठ थी। वह तो गाड़ी में बैठ गई।"

"अब क्या करोगे ?"—डॉक्टर ने पूछा। मैं स्वयं न सोच सका कि क्या करूँ। गाड़ी बढ़ी जा रही थी और मेरे पैर न हिलते थे। अन्त में मैं डॉक्टर से बोला—मैं जा रहा हूँ। और यद्यपि गाड़ी तेज़ हो गई थी, मैं कूद कर पिछले डब्बे में चढ़ गया। डॉक्टर बेचारा हक्का-बक्का सा देखता रहा। उसे इतना समय न मिला कि वह भी कूद कर गाड़ी पर चढ़ लेता। पीछे से मैंने देखा कि वह हँसता हुआ अपना सफ़ेद रूमाल हिला रहा था। वह अपने हृदय के भाव प्रगट करने के लिए मेरे पास न था, परन्तु जिस प्रकार वह रूमाल हिला रहा था, उससे उसके उन भावों को पढ़ना कुछ कठिन न था।

३

जब गाड़ी के भीतर की ओर मुँह फिराया तो पता लगा कि वह तीसरा दर्जा था। कम्बख़्त के पीछे इण्टर के पैसे देकर भी तीसरे दर्जे में बैठना पड़ा और फिर भी उसके दर्शन तक मयस्सर न थे। उधर डॉक्टर भी पीछे छूट गया। गाड़ी थी एक्सप्रेस, अतः उन्नाव से पहले कहीं रुकने वाली न थी। दस-पाँच मिनट की बात भी नहीं थी कि सब्र करके एक कोने में बैठ जाता। मन ही मन मुझे क्रोध आ रहा था कि यही गाड़ी एक्सप्रेस क्यों हुई ! पैसेञ्जर होती तो अगले स्टेशन पर उतर कर सेकेण्ड क्लास में बैठ जाता। और तो क्या करता, एक कोने में चुपचाप बैठ कर दुआ मनाने लगा कि 'हे परमात्मा, किसी तरह कोई घटना हो जाय तो गाड़ी खड़ी हो जाय और मैं उतर कर उसके पास जा बैठूँ।' परन्तु ऐसी प्रार्थनाएँ भी कभी सुनी जाती हैं ? परमात्मा को भी दूसरों को तड़पते हुए देख कर आनन्द आता है। मुसाफ़िरों में से भी कोई ऐसा न था, जो गाड़ी की ज़ञ्जीर खींच कर गाड़ी को खड़ी करा लेता। ऐसे अवसर पर मस्तिष्क के सोचने की शक्ति न जाने किस प्रकार बढ़ जाती है। सैकड़ों प्रकार के नए-नए आविष्कार सूझते हैं। परन्तु होते सब बिना सर-पैर के हैं। बड़ी मुद्दतों के बाद गाड़ी उन्नाव स्टेशन पर रुकी। मेरे जी में जी आया। परन्तु हृदय धड़कने लगा। शरीर में सनसनी मालूम होने लगी। मुझे मालूम हो गया कि मैं ज़रूर ही इश्क़ में पड़ गया हूँ। नहीं तो हृदय की धड़कन और शरीर की सनसनी के क्या अर्थ ?

डब्बे में आदमी काफ़ी थे। मैं एक कोने में जाकर बैठा था, अतः जब गाड़ी खड़ी हुई तो मेरे उठने से पहले ही दरवाज़े के सामने उतरने वालों की लाइन लग गई। कइयों के पास तो ट्रङ्कों का ताँता लगा था। मैं मन ही मन घबरा रहा था। देर होने से वह निकल न जाय, फिर तो उसका पाना बड़ा मुश्किल हो जायगा। पाँच मिनट की रेल-पेल के बाद कहीं निकलने का अवसर मिला। डब्बे से निकलते ही मैं स्टेशन की ओर भागा। देखा कि वह स्टेशन के बाहर एक मोटर पर चढ़ रही थी। मैं जब तक अपना टिकट भी न दे पाया था कि मोटर वहाँ से चल दी।

हे भगवान्, यह निराशा पर निराशा। सब पाँसे उल्टे पड़ रहे थे। एक बार उसे अच्छी तरह देख भी लेता तो दिल के मन्सूबे तो पूरे हो जाते। यही सोचते हुए मैं बाहर निकला। उधर से वह क़ुली आ रहा था, जिसने उसका बेग उसकी मोटर में रक्खा था। कुछ आशा हुई। मैंने उससे पूछा—

"क्यों भाई, यह मोटर किसकी थी?"

"जदुनन्दन उकील की हन।"

"मोटर में कौन थी, जानते हो?"

"ई हम का जानी, साहिब।"

"वकील साहब किधर रहते हैं?"

"उनकेर बङ्गलवा नजीक हन। तुमका जाए का है? हम तुमका पहुँचाइ सकित है।"

मैंने उस क़ुली को साथ लेकर वकील साहब के बङ्गले की ओर को प्रस्थान किया। क़ुली की भेंट एक चवन्नी करके उसे तो मैंने बिदा किया और मैं बङ्गले के पास चक्कर लगाने लगा। बङ्गला था बिल्कुल जङ्गल में। उसके चारों ओर कोई मकान न था। धूप पड़ रही थी। बङ्गले के भीतर किस बहाने से जाता। सामने एक नीम का पेड़ था। उसके नीचे ही रूमाल बिछा कर बैठ गया, केवल इस आशा से कि शायद वह बाहर निकले और मुझे दर्शन हो जायँ। उधर धूप पड़ रही थी, इधर प्यास लग रही थी। फिर भी आशा आशा ही ठहरी। मुझे अब उन लोगों की कहानियाँ याद आने लगीं, जिन्होंने प्यारी के एक बार दर्शन करने के लिए ही अनेकों कष्ट सहे थे। फिर उसके लिए भूख-प्यास तो कोई बड़ी तपस्या न थी।

जब ठीक एक घण्टा प्रतीक्षा कर चुका तो मुझे मोटर की आवाज़ सुनाई दी। मैंने उठ कर देखा, वही मोटर फाटक से निकल रही थी। मैंने झुक कर देखा, आप उसमें विराजमान थीं। अब क्या करूँ, फिर उसके पीछे भागना पड़ेगा। इतने ही में मुझे एक बात सूझ पड़ी। कुछ मोटरों के पीछे रैक होता है, जिस पर एक पहिया रक्खा रहता है। मैंने पीछे से देखा तो मोटर के रैक पर पहिया भी न था। अभी मोटर तेज़ न हुई थी, मैं कूद कर रैक पर चढ़ बैठा। वह कोई प्रतिष्ठा का स्थान तो न था, परन्तु ऐसे अवसर पर प्रतिष्ठा का ख़्याल तो एक ओर को उठा कर रख दिया जाता है। जब तक मोटर शहर के बाहर रही, ख़ैरियत थी। क्योंकि रास्ता बिलकुल ख़ाली था। ज्योंही हम शहर के भीतर आए, मुझे शर्म मालूम होने लगी। एक कोट-पतलून वाले हिन्दुस्तानी साहेब को मोटर के पीछे चोर की भाँति बैठा देख कर बाज़ार के लोग हँस रहे थे। आफ़त तो यह थी कि मेरा मुख उन्हीं की ओर था। जब बिलकुल ही बीच बाज़ार में आए तो मोटर धीरे-धीरे चलने लगी और पीछे लड़कों का एक झुण्ड तालियाँ बजाता हुआ दौड़ने लगा। कुछ ढेले फेंकते थे और कुछ धूल; कुछ आँखें मटकाते थे और कुछ जीभ निकाल कर हँसी उड़ाते थे। मेरी आफ़त हो गई। उस दृश्य को न देखने की इच्छा से मैंने अपना मुख उस ओर से मोटर के पिछवाड़े की ओर फिराने के उद्देश्य से अपना शरीर उधर फिराना चाहा। यह सरल बात न थी। अतः मैं खड़े होकर अपने पैरों को जमाने लगा। उसी समय किसी ईंट के बीच में आ जाने के कारण मोटर उछली और मैं धम से नीचे आ गिरा। चोट लगी सो लगी ही, सारा सूट ख़राब हो गया। इन बातों की मुझे इतनी चिन्ता न थी, जितनी उसे खो देने की। परन्तु भाग्यवश यह घटना स्टेशन के पास घटी थी और शीघ्र ही मोटर वहाँ खड़ी होगई। मैं अपना सूट झाड़ने लगा था कि उन बदमाश लड़कों का झुण्ड तालियाँ बजाता हुआ उधर आ निकला। लड़के इन हरकतों में शैतान के भी नाना होते हैं, इसीसे उनसे मैंने जान छुड़ाना ही अच्छा समझा और मैं भाग कर स्टेशन की ओर बढ़ने लगा। उन्हें इतनी समझ आ गई कि वे आगे न बढ़े, परन्तु चिल्ला कर कहने लगे—"कस, सरऊ, और चढ़िहौ का मुटरवा पै?"

स्टेशन पर आकर देखा तो पता लगा कि आप कानपुर का टिकट ले रही हैं। मैंने भी कानपुर का सेकेण्ड क्लास का टिकट ख़रीद लिया। दो मिनट बाद ही लखनऊ से गाड़ी आकर प्लेटफ़ार्म पर खड़ी हो गई। मैं सेकेण्ड क्लास के डब्बे की ओर बढ़ा, परन्तु आपने ज़नाना डब्बा खोला और उसमें जाकर बैठ गईं। यह तो बहुत बुरा हुआ। सारी मेहनत बेकार हुई। अङ्गरेज़ी पढ़ कर भी ज़नाने डब्बे में बैठेंगी। इतना साहस नहीं कि मर्दों के साथ उसी डब्बे में बैठें। मर्द क्या इनसे

कुछ खाने को माँगते हैं! मैं इसी प्रकार मन में जल-भुन रहा था कि पीछे से किसी ने मेरे कन्धे पर हाथ रख दिया। मैंने फिर कर देखा तो डॉक्टर खड़ा था। मैं चौंक कर बोला—"डॉक्टर! यह तुम हो?"

वह मेरे गाल पर हलकी सी चपत रसीद करके बोला—"क्यों हज़रत, उसे देखते-देखते आँखें ऐसी हो गईं कि कोई और पहचाना ही नहीं जाता। अभी तो सिर्फ़ दो ही घण्टे हुए हैं।"

"लेकिन मुझे यह ख़्याल भी न था कि तुम यहाँ आ टपकोगे।"

"तुम्हें क्यों ख़्याल होता। वहाँ छोड़ ही इसी लिए आए थे। लेकिन मैं तो तुम्हें इस तरह से नहीं छोड़ सकता था।"

"भई, करूँ क्या। उस वक़्त इतनी जल्दी में गाड़ी पर चढ़ा था कि तुमसे कुछ कहने का वक़्त ही न रहा।"

"अच्छा, अब कहो, क्या इरादे हैं? क्या अब भी मेरे सामने बनोगे कि प्रेम को तो तुम समझते ही नहीं।"

इतने ही में गार्ड ने सीटी दी। मैंने डॉक्टर से कहा—"वह कानपुर जा रही है। चलो, गाड़ी में बैठ लो।"

"मैं तो यहीं तक का टिकट लाया हूँ।"

"कुछ परवाह नहीं, किराया वहाँ जाकर दे देंगे।"

हम दोनों डब्बा खोल कर बैठ गए। गाड़ी चल दी। डॉक्टर ने नज़र दौड़ा कर कहा—"वह तो यहाँ है नहीं।"

"वह ज़नाने डब्बे में है, यार। है न ज़ालिम!"

कुछ देर तक हम दोनों चुपचाप बैठे रहे। फिर डॉक्टर मेरी ओर देख कर बोला—"हरीश!"

"हाँ।"

"एक बात बताओगे?"

"पूछो।"

"यह सब मज़ाक़ कर रहे हो?"

"नहीं।"

"क्या तुम सचमुच उसे चाहने लगे हो?"

"सचमुच।"

"बिना जाने-पहचाने?"

"हाँ।"

"क्या अन्त तक लड़ोगे?"

"इरादा तो है।"

"अगर वह अस्वीकार कर दे?"

"प्रेम क्या एकतरफ़ा नहीं हो सकता?"

"सो तुम इन बातों पर विश्वास करने लगे?"

"हाँ, आज से। डॉक्टर तुम सच कहते थे। जब तक इस आग में कोई पड़ता नहीं, तब तक इसकी गर्मी को जान नहीं सकता। या तो मैं पहले मूर्ख था, या अब मूर्ख हूँ। या तो मैं पहले पागल था या अब। कुछ भी हो, मैं उसे प्रेम करने लगा हूँ। मेरे होंठ यह नहीं कह रहे हैं, यह मेरा दिल कह रहा है। भीतर मेरे अन्तःकरण में कोई कह रहा है कि मैं उसे प्रेम करता हूँ! और मैं उस भीतरी आवाज़ पर अविश्वास नहीं कर सकता।"

"तो फिर किसी तरह उससे वार्तालाप करो।"

"यही मैं भी सोच रहा हूँ। कानपुर स्टेशन आने दो। कोई बहाना अवश्य ही निकालूँगा।"

"गाड़ी कानपुर स्टेशन पर खड़ी हुई। भीड़ काफ़ी थी। वह गाड़ी से उतर कर एक ओर खड़ी हो गई। शायद किसी की प्रतीक्षा कर रही थी। मैंने यह अच्छा समझा। मैं बातें शुरू करने का कोई बहाना सोच रहा था कि इतने ही में एक छोटा सा बच्चा, जो अकेला खड़ा रो रहा था, दिखाई दिया। मैंने उसका मुख भी नहीं देखा और उसे गोद में उठा कर उसके पास पहुँचा। बच्चे को उसकी ओर करके मैं बोला—"क्या यह आपका बच्चा है?"

वह नाक-भौं सिकोड़ कर बोली—"क्या यह मेरा बच्चा दिखाई देता है?"

मैंने उस बच्चे का मुख अपनी ओर फिरा कर देखा, वह एक चीना का बच्चा था। उसकी चपटी नाक और भीतर को घुसी हुई छोटी-छोटी आँखें साफ़ यह बता रही थीं। मुझे सचमुच बड़ी शर्म आई! जैसे-तैसे बहाना निकाला और उसमें भी भाग्य ने साथ न दिया। मैं बच्चे को अभी पकड़े हुए ही था कि उसकी माँ ने आकर बच्चे को मेरी गोद से छीन लिया और

चीनी भाषा में लगी गालियाँ सुनाने। वह समझती थी कि मैं बच्चे को कहीं भगाए लिए जा रहा था। यह ग़नीमत थी कि मैं उसकी गालियों का एक भी शब्द नहीं समझा, नहीं तो शायद मुझे भी क्रोध आ जाता।

उधर से जब दृष्टि फिरी तो देखा कि वह एक नवयुवक से खड़ी हुई एक ओर बातें कर रही है। शायद वह उसी से मिलने आई थी। मैं उधर टकटकी लगा कर देख रहा था कि डॉक्टर आ धमका। मेरी ओर हँस कर बोला—"कहो, कैसी रही?"

मैंने उसे क़िस्सा सुना कर कहा—"क्या बताएँ यार, क़िस्मत ही औंधी है। व्यर्थ में मुँह की खानी पड़ी। अब वह होगई होगी नाराज़!"

"इसमें नाराज़ी की क्या बात है? यह तो अच्छे लक्षण हैं। प्रेम करना कोई मज़ाक़ तो है नहीं। जितने ही जलोगे, सिखोगे भी उतने ही।"

"मालूम होता है कि दूसरी गाड़ी से लखनऊ वापस जा रही है।"

"तो हम लोग भी तो तैयार हैं।"

"क्या पता, फिर भी निराशा ही हो।"

"अच्छा, गाड़ी में अभी तो देर है। तब तक कुछ खा-पी लिया जाय।"

"मुझे भूख नहीं है।"—मैंने कहा।

"अच्छा लाओ, कुछ पैसे निकालो, मैं अपने लिए ही कुछ मिठाई ले लूँ।"

"घर से ख़ाली हाथ ही चले थे, हज़रत!"

"तुम हमारे ख़ज़ाञ्ची किसलिए मुक़र्रर हुए हो।"

"तुम अपनी ख़ज़ाञ्चीगीरी रख छोड़ो।"

"बाक़ायदा इस्तीफ़ा देना; उससे पहले लाओ, एक अठन्नी हवाले करो।"

एक अठन्नी हवाले करनी पड़ी और डॉक्टर प्लेटफ़ार्म पर खड़ा-खड़ा ही बत्तीसों पैसे चाट गया। एक पैसा अपने पान के लिए भी न छोड़ा। इसलिए पानों के लिए और दो पैसों का मुझी को ख़ून करना पड़ा।

बड़ी प्रतीक्षा के बाद गाड़ी चली। इतना अच्छा था कि डॉक्टर साथ था, जो चुटकुले सुना-सुना कर हँसाता रहा, नहीं तो वह समय काटना मुश्किल पड़ जाता। इस बार फिर आप ज़नाने डब्बे में बैठी थीं। हम सामने खड़े भी न हो सकते थे, क्योंकि हज़रत उनके मित्र बिदा ले रहे थे। हार कर मर्दाने डब्बे में ही बैठना पड़ा। जब गाड़ी चल दी, तो मैंने डॉक्टर से कहा—"कहो यार, अब क्या किया जाय?"

"है तो ज़रा ख़तरे की बात, लेकिन शायद तुक्का लग जाय।"

"कैसी ही ख़तरे की हो, दो बातें हो जायँ, बस।"

"उन्नाव में तुम भी ज़नाने डब्बे में बैठ जाओ।"

"मैं, ज़नाने डब्बे में?"

"हाँ-हाँ।"

"यह कैसे?"

"तरीक़े से।"

"कोई देखेगा तो जूते पड़ेंगे।"

"कह तो दिया कि तरीक़े से।"

"कौन सा तरीक़ा है?"

"उन्नाव में जब गाड़ी चलने लगे तो तुम भाग कर उसी डब्बे पर चढ़ जाना। कोई देखेगा तो समझेगा कि जल्दी में तुमने ऐसा किया है। वह भी यही समझेगी। गाड़ी एक्सप्रेस है। काफ़ी वक़्त बातों के लिए मिलेगा।"

"यार यह एक ही बात तुमने बताई। लाखों रुपयों की है। डॉक्टर, तुम्हें चूमने की तबियत चाहती है।"

"इसकी ज़रूरत दूसरी जगह पड़ेगी। यहाँ नष्ट न करो।"

मैंने कुछ सोच कर कहा—"लेकिन डॉक्टर अगर वह ज़ञ्जीर खींच दे?"

"पागल हो। वह पढ़ी-लिखी है, ऐसा कभी करेगी? अधिक से अधिक, तुमसे बात न करेगी।"

यह स्कीम तै हो गई और उन्नाव में मैंने ऐसा ही किया। सफलता तो होगई, परन्तु मेरे होश उड़ रहे थे। मैंने खिड़की बन्द की ही थी कि वह चौंक कर बोली—"यह क्या? देखते नहीं, ज़नाना दर्जा है?"

"ज़नाना? ओह कैसी भूल। क्षमा कीजिएगा। गाड़ी चल दी थी। जल्दी में मैंने देख नहीं पाया। मैं खड़ा रहूँगा। कुछ देर की तो बात ही है। आपको कष्ट

म होगा।" वह चुप हो गई। परन्तु मेरा हृदय तो चुप नहीं हुआ था। बातें करने की इच्छा, कम होने के बजाय और जम गई थी। कम्बख़्त ने इतना भी तो न कहा कि "बैठ जाइए!" कुछ देर तक मैं चुपचाप खड़ा रहा। फिर मैंने धीरे से अपना रूमाल गिरा कर स्वयं ही उठाया और उसकी ओर ले जाकर बोला—"क्या यह आपका रूमाल है?"

उसने रूमाल की ओर देखा और तुनक कर बोली—"क्या मेरा नाम हरीश हो सकता है? अपनी जेब देखिए।"

मैंने आश्चर्य से रूमाल की ओर देखा। दुर्भाग्य! उसके किनारे पर साफ़ लिक्खा था HARISH. और वही किनारा ऊपर की ओर दीख रहा था। इस रूमाल पर मेरा नाम था, नहीं तो ऐसा न करता। झेंप मिटाने के लिए मैं बोला—"आज न जाने मुझे क्या हो गया है, ग़लती पर ग़लती कर रहा हूँ।"

वह फिर भी चुप रही, मानो मेरी बातें सुन ही न रही थी।

मैं बोला—क्या आप लखनऊ जा रही हैं?

"लखनऊ जा रही हूँ या कहीं जा रही हूँ, आप कहिए!"—वह लापरवाही से बोली।

मैं कुछ देर तक चुप रहा। बोलने की हिम्मत ही न होती थी। वह इस प्रकार बोलती थी मानो मैं उस डब्बे में था ही नहीं। बातें करने को तो फिर भी जी चाहता था, परन्तु डर यह था कि कहीं वह डाँट न दे या लखनऊ स्टेशन पर जाकर पुलिस से न शिकायत कर दे। कुछ देर तक इसी सोच-विचार में पड़ा रहा और फिर साहस करके बोला—"मैं भी लखनऊ जा रहा हूँ।"

वह ज़ालिम फिर चुप रही। मैंने सोचा, इस पर कुछ धाक जमानी चाहिए। अतः मैंने कहा—"मैं यूनीवर्सिटी में एम० ए० में पढ़ता हूँ।"

वह कटाक्ष से बोली—"हाँ, आपकी तारीफ़ मैंने 'पायोनियर' में पढ़ी थी। यह सब उसने केवल मज़ाक़ उड़ाने लिए कहा था, परन्तु मुझे यही सन्तोष था कि वह कुछ बोली तो। विषय को पकड़ कर मैं आगे बढ़ा—"आपको यूनिवर्सिटी में तो देखा नहीं, क्या इसाबेला कॉलेज में हैं?"

उसने कुछ कहा नहीं। एक काग़ज़ पर पेन्सिल से कुछ लिख कर मेरी ओर को उड़ा दिया। काग़ज़ मेरे जूते के पास आकर गिर पड़ा। मैंने झुक कर उसे उठाया। उस पर लिक्खा था—

It is only the fools that try to know the secrets of others. (मूर्ख ही दूसरे के भेदों को जानने का यत्न करते हैं) अय हय! कैसी प्यारी अदा थी! यदि यही बात वह अपने मुख से कहती तो मैं उस पर बलिदान हो जाता। परन्तु इतनी दया उसने सीखी ही न थी। मूर्ख बनाया और वह भी काग़ज़ पर लिख कर। उनकी आवाज़ों का कुछ ठीक भी है। सुनो तो, किसी ने कहा है—

जितने माशूक़ हैं, कामिल हैं सब सताने में।
ख़ुदा ने भेज दिया इनको क्यों ज़माने में?

लखनऊ का स्टेशन पास आ रहा था। मैं बातें तो और करना चाहता था, परन्तु डर था कि स्टेशन पर कोई मुझे ज़नाने डब्बे में देख न ले। अतः मैंने अन्तिम प्रार्थना कर देना ही ठीक समझा। मैं बोला—

"आपको मैंने बड़ा कष्ट दिया है, इसलिए आप मुझसे शायद नाराज़ हैं। ख़ैर, यह मेरा दुर्भाग्य है। मैं अधिक तो नहीं कहना चाहता, परन्तु केवल यही पूछना चाहता हूँ कि क्या लखनऊ में आपको फिर कभी देखने का मौक़ा मिलेगा?"

"किस लिए?"

"कोई ख़ास बात नहीं। योंही!"

"योंही मेरे सर में दर्द तो हो नहीं रहा है, कि हर किसी से मिलती फिरूँ।"

"क्या मुझे भी आप हर कोई में शुमार करती हैं?"

"तो क्या मैं आपको अपने देवताओं में शुमार करूँ?"

"देवताओं में नहीं; तो मित्रों में तो।"

"जान न पहचान, मैं तेरा मेहमान।"

गाड़ी प्लेट फ़ार्म पर पहुँच चुकी थी, अतः मैं अधिक न कह सका। चुपचाप झुक कर पिछले दरवाज़े से मैं बाहर की ओर निकला और इतना कह कर कि 'कभी न कभी तो मुलाकात होगी ही।' मैं रेल की लाइन को पार करके पिछले प्लेटफ़ॉर्म की ओर जाने लगा। ज़नाने डब्बे में बैठना जुर्म है तो लाइनों को

चोर की भाँति पार करना भी कम जुर्म नहीं है। मुझे शीघ्रता थी, क्योंकि मैं स्टेशन के बाहर निकल कर यह जानना चाहता था कि वह किधर जाती है! लाइन को पार करके पिछले प्लेटफ़ॉर्म पर चढ़ा ही था कि एक टिकट-कलेक्टर साहब बहादुर उधर आ धमके। शाही अकड़ दिखाते हुए आप बोले—क्यों जनाब, लाइन पार करने का तो हुक्म नहीं है।

मुझे उनकी इस शाही अकड़ पर क्रोध आ गया। और आता भी क्यों न? मैं एम० ए० का स्टूडेण्ट और वह जनाब शायद आठवीं क्लास भी पास न थे। मैंने भी अकड़ कर कहा—तुम हुक्म के बताने वाले कौन?

"कम्पनी के नौकर।"

"कम्पनी के नौकर की ऐसी-तैसी।"

"आपका टिकट कहाँ है?"—वह भी क्रोधित होकर बोला।

"क्या हम बिना टिकट सवारी करते हैं। अभी तुम्हारी नाक पर टिकट रक्खे देते हैं।"—कह कर मैंने जेब में हाथ डाला। हैं, टिकट का पता भी नहीं। सारी जेबें खोज डालीं, परन्तु पता न लगा। शायद मेरा टिकट डॉक्टर के पास रह गया था, परन्तु उन हज़रत का भी उधर पता न लगा। मैं ज़रा नर्म होकर बोला—"मेरा टिकट मेरे मित्र के पास है। चलो, उन्हें तलाश कर लूँ।"

"इसी पर शेख़ी दिखा रहे थे। बिना टिकट सवारी करते हैं, चोर की तरह पीछे के दरवाज़े से निकलते हैं और फिर अकड़ दिखाते हैं। चलिए स्टेशन मास्टर के पास।"

क़िस्मत! देर में देर। मैंने उसे प्रलोभन दिया, किराया लेने को कहा, ख़ुशामद तक की, मगर वह टस से मस न हुआ। वह बदला लेने पर तुला हुआ था। मुझे उसके साथ स्टेशन मास्टर के कमरे तक जाना पड़ा। स्टेशन मास्टर साहब बाहर थे। बीस मिनट प्रतीक्षा करनी पड़ी। आत्मा जल रही थी। सब खेल बिगड़ गया। अब तक तो वह चली गई होगी। दिन भर की परेशानी का यह अन्त। एक-एक पल मुझे वर्ष के समान प्रतीत हो रहा था। कभी उस टिकट-कलेक्टर पर क्रोध आता था, कभी स्टेशन मास्टर पर। सब से अधिक क्रोध आता था डॉक्टर पर। भले आदमी को इतनी भी बुद्धि न थी कि इधर-उधर तलाश तो करता। उसका दिल थोड़े ही जल रहा था, नहीं तो उसे भी मेरी बेकली का अनुभव हो जाता।

बड़ी प्रतीक्षा के बाद स्टेशन मास्टर साहब तशरीफ़ लाए और बड़े झगड़े के बाद जितने पैसे जेब में थे, चुका कर जान छुड़ाई। बाहर आया तो न डॉक्टर का पता, न उसका। ताँगे और इक्के भी सब चले गए थे। पैदल घर की ओर आना पड़ा।

* * *

बुढ़िया ने दरवाज़ा खोल कर मेरी सूरत देखी तो वह घबरा गई। वह टूटे हुए शब्दों में बोली—डॉक्टर......

उसने इतना ही कहा था कि मैं चिल्ला कर कहने लगा—डॉक्टर, डॉक्टर! अब उसका नाम मेरे आगे न लेना। अगर उसे पा जाऊँ तो कच्चा ही खा जाऊँ!

उधर से मैंने दृष्टि फिराई तो डॉक्टर सामने खड़ा था। मैं आवेश में आकर बोला—डॉक्टर!

"लो, खाओ कच्चा।"—वह हँस कर बोला।

"मैं तुम्हें क़त्ल कर दूँगा।"

"क़त्ल पीछे करना। पहले एक ख़ुशख़बरी सुन लो।"

"ख़ुशख़बरी? क्या उसका पता लग गया?" मेरा सारा मुख प्रसन्नता से दमक गया।

"चलो, बैठ कर पहले अपनी बीती सुनाओ, फिर तुम्हें ख़बर सुनाऊँगा।"

मैंने उसे जब सारा हाल सुनाया तो वह मेरी पीठ ठोक कर बोला—लो, मार ली बाज़ी। अब क्या है?

"ख़ाक मार ली बाज़ी। अच्छी तरह से उसने मेरी ओर देखा तक भी तो नहीं।"

"तुम रहे चौखट ही, हरीश! अरे मियाँ, वह कोई सिनेमा की तस्वीर तो है नहीं कि दो घण्टे में ही सारा खेल ख़त्म हो जाय। यह सारे जीवन की बातें हैं। पहले दिन यही क्या कम है। ऐसी झिड़कियाँ खाना हर एक के भाग्य में तो है नहीं। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि वह भी कुछ-कुछ तुम्हारे ऊपर मरने लगी है। यह प्रेम की हाँडी के उबाल हैं।"

"अच्छा, तुम अपनी ख़बर सुनाओ।"

"ख़बर यह है कि वह इसाबेला में फ़ोर्थ इयर में पढ़ती है और लखनऊ की ही रहने वाली है।"

मैंने डॉक्टर का हाथ झकझोर कर कहा—दोस्त, यही क्या कम है? तुमने आज इनाम के लायक़ काम किया है।

"यह मालूम है कि रात के बारह बजे हैं।"

"मतलब यह है कि आप पैसे ख़र्चवाना चाहते हैं!"

डॉक्टर बनता हुआ बोला—नहीं, मुझे अपनी फ़िक्र तो नहीं है, तुम दिन भर के भूखे होगे। सूरतों से पेट तो भरते नहीं।

"नहीं, आज तुम्हें ख़ूब माल खिलाएँगे।"—यह कह कर मैंने बुढ़िया को नीचे से मिठाइयाँ और दूध लाने को भेज दिया।

४

पाँच-छः दिन तक मैंने उसके लिए चारों ओर ख़ाक छानी। उसके दर्शन तो न हुए, परन्तु डॉक्टर की कृपा से उसका पता लग गया। उस दिन मैं स्वयं डॉक्टर के यहाँ गया था। वह एक साधारण व्यक्ति की लड़की न थी। उसके पिता लखनऊ के एक बड़े बैरिस्टर थे। बनारसी बाग़ के पास उनकी बड़ी भारी कोठी थी। डॉक्टर यह सब समाचार देकर बोला—क्यों जनाब, कहिए अब भी मरते हैं?

"अगर इसे 'मरना' कहते हो, तो अब जीने की इच्छा नहीं है?"

"मामला आसान नहीं है।"

"क्यों?"

"वह एक बड़े आदमी की लड़की है और तुम जो कुछ हो वह हो ही।"

"तो मैं उससे कौन सी जवाहिरात चाहता हूँ।"

"उसका प्रेम तो चाहते हो?"

"प्रेम में छुटाई-बड़ाई का तो विचार होता नहीं।"

"ठीक है। लेकिन अगर वह तुम्हें प्रेम न करे, तब तो बाज़ी हारनी ही होगी।"

"क्या मेरे हृदय की आह उसे प्रेम करने को बाध्य न कर देगी?"

"यह नाटक और सिनेमा की बात नहीं है, जहाँ नायक को नायिका अवश्य ही मिल जाती है। यह तो संसार है। यहाँ आशा और निराशा सभी मिलेंगी। तुम सबके लिए तैयार हो?"

"यार, तुम तो ऐसा न कहो। अब तक तो आशा दिलाते रहे हो और अब निराशा की ओर खींचे लिए जा रहे हो।"

"नहीं, यह बात नहीं है। मैं तो तुम्हें भविष्य के लिए तैयार कर रहा हूँ। यदि सच्चा प्रेम कर रहे हो, तो अन्त तक डटे रहना। फल की चिन्ता न करना।"

"अच्छा, यह बताओ कि उस पर अपना प्रेम प्रकट किस प्रकार करूँ? उससे मिलने का अवसर तो आता नहीं। और किसी प्रकार यदि वह मिली भी तो बातें करते ही या तो मज़ाक़ बनाती है या काटने को दौड़ती है। फिर भला उससे प्रेम के ऊपर बातें करने की नौबत कब आ सकती है।"

"इसका एक ही उपाय है।"—डॉक्टर कुछ देर के विचार के बाद बोला।

"क्या?"—मैंने जिज्ञासा से पूछा।

"उसे एक पत्र लिखो।"

"कहाँ?"

"उसका पता तो अब मालूम ही है।"

"उसे मिल जायगा?"

"ज़रूर!"

"फाड़ देगी।"

"पढ़ेगी तो सही ही। शायद है, प्रभाव हो जाय। भाग्य-परीक्षा करने में हानि ही क्या है?"

"हाँ, तुमने नाम तो बताया ही नहीं।"

"शाम को मैं तुम्हारे यहाँ आऊँगा। तभी मालूम कर लाऊँगा। पत्र तुम लिख रखना।"

"दोस्त, तुम्हारा ऋण मैं इस जन्म में न चुका सकूँगा।"

"चुका सकोगे।"

"किस प्रकार?"

"शाम को कुछ बङ्गाली मिठाई ख़रीद कर रख लेना। आज तक का ऋण माफ़ कर दूँगा। आगे का हिसाब फिर देखा जायगा।"—उसने हँस कर कहा। उसकी इस बात से मेरे उदास मुख पर भी हँसी की एक रेखा दौड़ गई।

घर आकर मैंने 'राइटिङ्ग पैड' और दो फ़ाउण्टेन-

पेन सामने रख लिए और एक ओर सिगरेट का बक्स खोल कर रख लिया। यों सैकड़ों पत्र लिखे थे, परन्तु इस पत्र के लिखने में बड़ी कठिनता दिखाई पड़ी। पहला प्रश्न तो यह था कि पत्र हिन्दी में लिखूँ अथवा अङ्गरेज़ी में। इस समस्या ने ही एक घण्टा ले लिया। कभी अङ्गरेज़ी में एक पृष्ठ लिखता और फाड़ देता। कभी हिन्दी में कुछ लाइनें लिखता और फाड़ देता। एक-एक शब्द तोल-तोल कर लिखने की आवश्यकता थी, क्योंकि एक शब्द ही उसे नाराज़ या प्रसन्न कर दे सकता था। कुछ सोच-विचार के बाद मैंने अपनी पुस्तकों में से 'Love letters of an Englishman' निकाल कर पढ़ी। परन्तु एक भी पत्र नक़ल करने योग्य न था। एक दूसरी पुस्तक 'French Love' थी, वह भी पढ़ी, इस आशा से कि फ्रान्स के लोग प्रेम-पत्र लिखने में शायद दक्ष हों। परन्तु वहाँ भी मन के योग्य बात न मिली। अब तक मैंने 'Kamla's letters to her husband' नहीं पढ़ी थी, हालाँकि वह मेरी आलमारी में महीनों से पड़ी थी। उसके पृष्ठ उलट कर देखा तो वहाँ मसाला ही कुछ और दिखाई पड़ा। अन्त में यही निश्चय किया कि पत्र हिन्दी में लिखा जाय। फिर प्रश्न हुआ कि लिखा क्या जाय? अनेकों पृष्ठ फाड़ कर मैंने नीचे लिखा मज़मून तैयार किया—

"मेरे हृदय को चुराने वाली,

मुझे विश्वास है कि तुम इस पत्र को पढ़ कर मुझसे नाराज़ होओगी, नाक-भौं सिकोड़ोगी, मुझे धृष्ट, उद्धत, असभ्य आदि सम्बोधनों से पुकारोगी। इसकी मुझे कोई चिन्ता न होगी, यदि तुम केवल एक बार इस पत्र को पढ़ लो।

शायद तुम इस बात पर मुझे धृष्ट समझ लोगी कि मैंने तुम्हें पत्र की पहली पंक्ति में ही चोरी लगाई है। परन्तु बात सच है। तुम्हें इसका पता न हो, परन्तु अपनी आँखों से पूछना, जिन्होंने फ़ौरन ही मेरे हृदय को भीतर जाने के लिए अपने पट खोल दिए थे।

तुम इस बात का अनुमान भी न कर सकोगी कि किस प्रकार मैं तुम्हारे बिना उस इतवार से व्याकुल हो रहा हूँ। क्या तुमने 'Love at first sight' के विषय में कभी कुछ पढ़ा है? यदि पढ़ा है तो कभी उस पर विश्वास किया है? यदि न किया हो तो अब कर लेना। ईश्वर जानता है कि जब से तुम्हें देखा, प्रेम ने मेरे मन में अपना घर कर लिया। फिर तुम्हारी उस दिन की क्रूरता ने तो अग्नि में घी की भाँति काम किया। अच्छा, तुम्हीं बताओ कि मैं इस प्रकार एक ही दृष्टि में तुमसे प्रेम करने लगा? तो क्या यह स्वाभाविक नहीं है? कोई ऐसा हृदय इस संसार में है कि जो एक बार तुम्हें अपने असली रूप में देख कर अपनी छाती में रहा आवे? मैं जानता हूँ कि मैं तुम्हारे प्रेम के योग्य नहीं हूँ। परन्तु तुमसे केवल यह प्रार्थना है कि मुझे कम से कम अपना कृपा-पात्र तो समझ लेना। यदि कोई किसी के प्रेम का अधिकारी नहीं हो सकता, तो क्या उसका भक्त, दास, ग़ुलाम या पुजारी भी नहीं हो सकता? क्या मैं इनमें से किसी के भी योग्य नहीं हो सकूँगा?

जब कई दिन भटकने पर भी तुम्हारे दर्शन न हुए तो मुझे कुछ कविता करने की सूझी। परन्तु मैं कवि तो हूँ नहीं, अतः निराश होकर वह इच्छा दबानी पड़ी। क्योंकि जो उपमा, अलङ्कार, नायिका-भेद, छन्द-ज्ञान आदि के विषय में कुछ भी नहीं जानता है, वह कविता कर ही नहीं सकता। फिर मैं गद्य-काव्य लिखने का विचार करने लगा, परन्तु वहाँ भी सफलता न हुई। क्योंकि तुम्हारी आकृति को चित्रित करने के योग्य मुझे एक भी शब्द न मिला—न हिन्दी में, न अङ्गरेज़ी में। मैंने एक-एक शब्द को खोज कर देखा, परन्तु पता लगा कि वह शब्द किसी न किसी की तारीफ़ में प्रयोग किया जा चुका है। भला तुम्हारे लिए मैं जूठे, सेकेण्ड-हैण्ड शब्दों को कैसे इस्तेमाल कर सकता था!

जब वहाँ भी निराशा हुई, तो मैंने तुम्हारा एक चित्र बनाना चाहा। बाज़ार जाकर एक कूची और रङ्गों का एक डब्बा ले आया। बड़े चाव से चित्र बनाने बैठा, लेकिन जँचा नहीं। क्या वे रङ्ग तुम्हारे वास्तविक रङ्गों को प्रकट कर सकते थे? मैंने वे सब रङ्ग फेंक दिए। अब क्या करूँ? बहुत सोच-विचार के बाद मैंने प्रकृति के पास जाकर कुछ सहायता माँगना निश्चित किया। प्रकृति ने तुम्हें बनाया है, अतः मुझे आशा थी कि तुम्हारे सारे रङ्ग मुझे वहाँ मिल जायँगे। प्रकृति देवी ने जब मेरी विनय सुनी, तो मुझे कुछ पते देकर अपने प्रतिनिधियों के पास भेज दिया।

पहले-पहल मैं गुलाब के पास गया। गुलाब बड़े

चाव से बाग़ में मुस्करा रहा था। मैंने कहा—"भाई गुलाब, क्या तुम थोड़ा सा रङ्ग मुझे दे सकोगे?"

"अपना रङ्ग?"—उसने पूछा।

"हाँ।"

"किस लिए?"

"प्यारी के कपोलों का चित्र बनाना है।"

जब मैंने तुम्हारा नाम उसके सामने लिया तो वह एक साथ मुरझा गया। मैंने व्यग्र होकर पूछा—यह क्या बात?

"पागल हुए हो? उन कपोलों का सा रङ्ग तो तुम्हें संसार में भी न मिलेगा।"

मैं निराश होकर उधर से चला। मार्ग में भ्रमर-साहब वायु के रथ पर चढ़े सैर को जा रहे थे। मैंने उन्हें रोक कर कहा—मैं आपके पास एक प्रार्थना करने आया हूँ।

"कहिए?"

"क्या आप अपना कुछ रङ्ग दे सकेंगे?"

"किस लिए?"

"प्यारी के केशों का चित्र बनाना है।"

वह नाच-नाच कर हँसने लगा। मैंने आश्चर्य से पूछा—आप इस प्रकार मेरी हँसी क्यों उड़ा रहे हैं?

"तुम्हारे गधेपन पर!"

"क्यों?"

"वह तुम्हारी प्यारी है और तुम्हें यह पता नहीं कि उसके केशों का सा रङ्ग संसार भर में न मिलेगा। मैंने अपना रङ्ग स्वयं उसके केशों से चुराया है।"

मैं लज्जित होकर घर लौट आया। मेरी हिम्मत कहीं और जाने की न हुई, क्योंकि डर यह था कि सब जगह स्वयं मूर्ख ही बनना पड़ता। घर आकर मैंने इस विषय पर बहुत सोचा और मुझे एक ही उपाय सूझ पड़ा। मैंने अपने आपसे पूछा—"जब उसके बराबर संसार में और कोई नहीं है, तो उसी के पास जाकर प्रार्थना क्यों नहीं करता?" इसी कारण यह पत्र तुम्हें लिखा है। क्या मैं आशा करूँ कि तुम इसका उत्तर अवश्य ही दोगी और मुझे आज्ञा दोगी कि तुम्हारे दर्शन कर सकूँ। दुर्भाग्यवश मैं कवि नहीं हूँ, नहीं तो पत्र को कविताओं से भर देता। इतना है कि यदि तुम मेरे हृदय की परीक्षा करो, तो तुम्हें वहाँ कविता ही कविता सुन पड़ेगी।

अपने पिता जी और अपनी माता जी को मेरा सादर राम-राम कह देना। शायद है कि कभी मैं भी उन्हें पिता जी और माता जी कह सकूँ। यदि तुम्हारे कोई छोटे भाई-बहिन हों तो उनको मेरी ओर से हल्की सी चपतें जड़ देना। और तुम्हें? तुम अपने लिए मेरा ढेर सा प्यार कहना। कहोगी? कहोगी? बोलो! मेरी सीधी आँख फड़कने लगी है, मुझे आशा है कि कहोगी।

तुम्हारा,

अभी नहीं कह सकता कौन,

—हरीश"

पत्र लिख कर मैंने उसके कई पाठ किए और फिर डॉक्टर की प्रतीक्षा करने लगा। ठीक समय पर वह आया। पहला प्रश्न जो मैंने किया वह यह था—

"कहो, नाम मालूम हुआ, डॉक्टर?"

"यह बताओ, रसगुल्ले मँगाए?"

"पहले नाम तो बताओ।"

"रसगुल्ले इधर रख दो, खाता जाऊँगा और नाम बताता जाऊँगा।"

यही करना पड़ा। डॉक्टर ने नाम बताया, 'कुमुद'। कितना प्यारा नाम था। नाम न जानने पर तो यह दशा, अब न जाने क्या होगी, इसकी मुझे चिन्ता होने लगी। डॉक्टर रसगुल्ले उड़ाता हुआ बोला—कहो, पत्र लिख लिया?

"हाँ, लिख तो लिया, परन्तु दिल काँप रहा है।"

"पढ़ कर सुनाओ, सब ठीक हो जायगा।"

मैंने जब पत्र पढ़ कर सुना दिया तो डॉक्टर बोला—तुम्हें किस उल्लू ने बी० ए० में पास कर दिया था।

"क्यों?"—मैंने आश्चर्य से पूछा।

"हिन्दी में क्यों लिखा है?"

"अपनी भाषा है।"

"अपनी भाषा के कुँवर, इस तरह तो रोब नहीं गँठता। अङ्गरेज़ी में लिखते, ज़रा चुहकते हुए इधर-उधर के कुटेशन्स (उक्तियाँ) देते, तो ज़रा असर पड़ता।"

"भाई, मुझे तो अङ्गरेज़ी में लिखते हुए डर लगता

है। अगर उसकी अङ्गरेज़ी ज़ोरदार हुई तो मेरी कमज़ोर अङ्गरेज़ी उसकी दृष्टि में मुझे नीचे गिरा देगी।"

"ख़ैर।"

"तुमने भी तो अङ्गरेज़ी पढ़ी है, तुम ही लिख दो।"

डॉक्टर नीचे को दृष्टि करके बोला—"लिख तो देता, पर जिसके दिल पर बीत रही है, उसी के हाथ से लिखा जाना ठीक है। ख़ैर, अब हिन्दी ही में भेज दो। फिर अङ्गरेज़ी में भेज देना। हाँ, अगर अङ्गरेज़ी में कुछ शब्द पीछे से जोड़ दो तो ज़रा रोब जम जायगा।"

"क्या शब्द?"

"लो लिखो।"

डॉक्टर ने लिखवाया—

P. S.

I could have written this letter in English—in fact, I can always write a letter better in English than in Hindi—but, thinking that you might perhaps be more inclined towards our mother tongue than towards a foreign language, I had but to write it in Hindi. If you are more at home in English, I shall be very happy to have further correspondence in that tongue.

—HARISH

पत्र का एक-एक शब्द जब सावधानी से पढ़ लिया गया तो उसे एक बहुत सुन्दर नोट-पेपर पर लिख कर लिफ़ाफ़े में बन्द कर दिया। टिकट भी मैंने इस ढङ्ग से लगाया था कि यदि वह 'टिकटों की भाषा' जानती हो तो साफ़ जान जाय कि उसका अर्थ था—मैं तुम्हारे बिना व्याकुल हूँ।

जब पत्र डालने के लिए तैयार हो गया, तो मैंने डॉक्टर से कहा—यार, यह पत्र शुभ घड़ी में डालें तो अच्छा हो।

"यह तो ज्योतिषी जी से पूछ सकते हो। उनके पत्रा में तो हर एक बात के लिए घड़ियाँ नियत की हुई हैं। लेकिन तुम तो इन बातों में विश्वास नहीं करते।"

"करता तो नहीं, लेकिन पूछ लेने में हर्ज ही क्या है? कभी-कभी इन लोगों की बातें ठीक हो जाती हैं।"

"तो इस मुहल्ले में तो पूछो मत, नहीं यह सारे लोग हँसी उड़ाएँगे।"

"कहीं भी चलो।"

ताँगा करके हम लोग सदर गए और वहाँ एक ज्योतिषी जी के द्वारा शुभ घड़ी मालूम करके उसी समय पत्र को लेटर-बक्स में डाला। अब बस यही आशा लगी थी कि कब उत्तर आवे। ज्योतिषी जी के अनुमान के द्वारा तो पत्र का उत्तर अवश्य और इच्छानुसार आना चाहिए था।

बड़ी मुश्किल से दूसरा दिन कमरे में पड़े-पड़े व्यतीत किया। दो वक्त दौड़-दौड़ कर डाकिया से भी पूछा। अन्त में रात की डाक से एक बड़ा सा लिफ़ाफ़ा डाकिया ने लाकर दे ही दिया। स्त्री के हाथ का पता लिखा हुआ था, अतः वह और किसका हो सकता था। मैं हर्ष से पागल की भाँति नाचने लगा। मुझे इतना प्रसन्न देख कर डाकिया बोला—कोई ख़ुशख़बरी है क्या बाबू?

मैं उसे झकझोरता हुआ बोला—ख़ुशख़बरी? दुनिया में सब से बड़ी ख़ुशख़बरी। मेरे समान और कौन भाग्यशाली हो सकता है?

"तो फिर सरकार कुछ इनाम मिल जाय!"—वह बोला।

मेरा हाथ जेब में पड़ा। एक रुपया था, निकाल कर उसके हाथ पर रख दिया! वह ख़ुश होता हुआ एक ओर को गया और मैं नङ्गे पैरों ही डॉक्टर के मकान की ओर भागा। अँधेरा हो रहा था। हज़रत कभी-कभी बड़े सवेरे सो जाते थे। कई आवाज़ें देने पर आप दौड़े हुए नीचे आए। मुझे देखते ही बोले—अरे तुम! मैं समझा था, कोई बीमार होगा।

"मैं भी बीमार हूँ, ऊपर ले जाकर पलङ्ग पर डाल दो, नहीं तो बेहोश हो जाऊँगा।"

"क्यों, क्या हुआ?"

"ख़ुशी से।"

"किस बात की ख़ुशी?"

"उसका पत्र!"

"पत्र? कुमुद का?"

"हाँ! उसी हृदय-चोर का।"

"क्या लिखती है?"

"अभी पढ़ा नहीं।"—यह कह कर मैंने लिफ़ाफ़ा

उसके हाथ में दे दिया। वह लिफ़ाफ़े को देख कर बोला—"अभी खोला भी नहीं?"

"तुम्हीं खोलो। मेरे हाथ काँप रहे हैं।"

हम दोनों ऊपर जाकर बैठे। डॉक्टर बोला—तुम बड़े जल्दबाज़ हो। बिना पत्र के पढ़े हुए इतना प्रसन्न होना ठीक नहीं।

"पत्र में और कुछ हो ही नहीं सकता।"

"यदि उसने 'नहीं' लिखा हो?"

"नहीं लिखती तो उत्तर इतना शीघ्र न आता! और फिर पत्र का वज़न देखते हो। 'नहीं' तो एक लाइन में लिखा जा सकता है। अच्छा कहो, कुछ कल्पना कर सकते हो?"

"कैसी?"

"हिन्दी में है या अङ्गरेज़ी में?"

"उसने ज़रूर ही अङ्गरेज़ी में लिखा होगा।"

"मुझे भी ऐसा ही मालूम होता है। मेरी अङ्गरेज़ी की लाइनों से रोब गँठ गया होगा। वह तुम्हारी बड़ी दूर की सूझ थी।"

"अच्छा बतावें, किस तरह शुरू किया होगा—My Sweetheart.

I am dying without you"

"Dying? यों क्यों नहीं कहते कि I am dead without you मैं जानता था कि एक दिन असर होगा ही।"

"अच्छा, तुम अपनी आँखें बन्द करो, मैं अब इसे खोलता हूँ।"

मैंने आँखें बन्द कर लीं। थोड़ी ही देर बाद मैंने डॉक्टर के मुख से विस्मय तथा दुःख-भरी वाणी से सुना—'हैं!'

मैंने शीघ्र ही अपनी आँखों से हाथ उठा लिए। डॉक्टर नीचे को मुख किए उदास हुआ बैठा था और वह पत्र उसके सामने पड़ा था। मैं बोला—क्यों डॉक्टर, क्या हुआ? पत्र किधर है?

उसने कुछ कहा नहीं। अपनी मुट्ठी में से एक लपेटा हुआ लिफ़ाफ़ा मेरे हाथ में दे दिया। मैंने उसे सीधा करके देखा—हैं, यह तो मेरा वह पत्र था, जो उसके लिए मैंने भेजा था। मेरा हृदय धक् से रह गया। मैंने बड़ी मानसिक वेदना के साथ पूछा—मेरा पत्र?

"हाँ।"—डॉक्टर ने धीरे से कहा।

"वापस कर दिया?"

"हाँ"

"इसका अर्थ है कि उसने इसे एक बार पढ़ा भी नहीं।"

"दीखता तो यही है।"

"कोई और काग़ज़ था?"

"कुछ नहीं।"

"कम्बख़्त कितनी निर्दय है। पत्र को पढ़ कर दो शब्द भी न लिखे गए।"

एक उछलती हुई वस्तु को पृथ्वी पर गिर जाने से जैसा आघात लगता है, वैसा ही मेरे हृदय को भी लगा और उसके साक्षी के रूप में मेरे नेत्रों में दो बड़े-बड़े आँसू डबडबा आए।

५

कई दिनों तक मेरा बुरा हाल रहा। दिल तोड़ने वाली बात थी। मेरे लिफ़ाफ़े को बिना पढ़े हुए उसने लौटा दिया। क्या यह सभ्यता है, शिष्टाचार है? किसी शत्रु के साथ भी ऐसा व्यवहार नहीं किया जाता है, फिर मैं तो उसका चाहने वाला था। और तो मैं क्या कर सकता था, बस दो बातें ही मेरी समझ में आती थीं। एक तो नित्य उस लिफ़ाफ़े पर लिखे हुए पते को देख कर आँखें सेंक लेता था और दूसरे मन ही मन उसको श्राप दिया करता कि हे भगवान जिसको वह चाहे वह भी इसी प्रकार का व्यवहार उसके साथ करे।

कई दिनों के बाद डॉक्टर मुझसे मिलने आया। मुझे उदास देख कर वह बोला—"कहिए नूरचश्म, अभी तक उस Shock (सदमा) का असर बाक़ी है?"

"अभी तक से क्या मतलब? हमेशा रहेगा। मुहब्बत है या मज़ाक़।"

"यानी आप मुहब्बत से बाज़ नहीं आएँगे?"

"तुम ज़्यादा बातें न करो डॉक्टर, मुझे आ जायगा तुम पर क्रोध।"

"क्यों?"

"तुम्हें याद है, कुछ सप्ताह पहले इसी कमरे में तुमने क्या कहा था ?"

"हाँ !"

"तो फिर अब क्या तुम्हें यह विश्वास नहीं, कि मैं सच्ची मुहब्बत कर सकता हूँ ? डॉक्टर, तुम नहीं जानते। तुमने प्रेम की Theories पढ़ी हैं, परन्तु कभी उसकी आग में नहीं जले हो। मैं बहुतेरा अपने हृदय को मनाता हूँ, परन्तु सब व्यर्थ। बताओ, क्या वह लखनऊ में सबसे सुन्दरी है ? क्या वही एक धनिक की पुत्री है ? क्या और कोई लड़की उसे पढ़ने-लिखने में मात नहीं कर सकती ? क्या उससे पहले मैं ऐसी लड़कियों से मिला नहीं था ? फिर उसी के नाम पर हृदय क्यों नाच उठता है ? तुम उसे चाहे जो नाम दो, परन्तु उसके प्रति मेरा भाव एक सच्चे प्रेमी का भाव है।"

"तो फिर अगर मरो तो कुछ करके मरो।"

"मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूँ।"

डॉक्टर कुछ देर तक सोच कर बोला—"उससे जाकर स्वयं ही क्यों नहीं मिलते ?"

"तुम ऐसी सलाह ही दोगे, जिसमें सर पर जूते पड़ें !"

"उसके लिए जूते खाना कोई बड़ी तपस्या थोड़े ही है।"

"बात तो ठीक है, पर वह मिलेगी भी ? जब पत्र को वापस कर दिया तो मिलने से भी मना कर देगी।"

"यह कोई ज़रूरी बात नहीं है। मुँह देखने पर कुछ और ही बात होती है। शायद तुम अपनी बातों से कुछ असर डाल सको।"

बात तै होते ही मैंने उससे मिलने की तैयारी शुरू कर दी। बाल कटवाए, अङ्गरेज़ी नाई की दूकान पर जाकर उनमें बल डलवाए। नया सूट पहना, रेशमी रूमाल जेब में लगाया। चाँदी का नया सिगरेट-केस जेब में डाल लिया। बाहर निकल कर टाँगे पर बैठने ही वाला था कि डॉक्टर आ गया।

"मैं भी आ रहा हूँ !"—वह बोला।

"किस लिए ?"—मैंने पूछा।

"बाहर खड़ा रहूँगा। वहीं से देखने में ज़रा लुत्फ़ आएगा।"

"जी नहीं, आप अब काम न बिगाड़िए। आप से सब बातें आकर कह दूँगा।"

"मैं कोई उसे छीन थोड़े ही लूँगा।"—वह हँस कर बोला।

"कभी तुम गम्भीर होना भी सीखोगे ?"

"वहाँ से ख़ुशख़बरी ले आओ, तब मैं तुमसे सीखूँगा।"

इतने ही में एक औरत एक भरा हुआ घड़ा लेकर सामने से निकल गई। डॉक्टर बोला—"लो, हरीश, गहरे हैं। भरा हुआ घड़ा सामने से निकला है।"

मैं क्रोधित होकर बोला—"ऐसी-तैसी इस घड़े की। सब पाखण्ड है। उस दिन उस ज्योतिषी ने भी पत्र डालने की शुभ घड़ी बताई थी। सब लूटने के तरीक़े हैं।"

"और जब तक गाँठ के पूरे और आँख के अन्धे लूटने को मिलेंगे, यह तरीक़े जारी रहेंगे।"

मैं कुछ न कह कर टाँगे पर चढ़ गया। डॉक्टर बोला—"वैल, गुडलक।"

बनारसी बाग़ के पास टाँगा मैंने छोड़ दिया और पैदल ही उसके बङ्गले की ओर चला। मार्ग में मुझे ध्यान आया कि एक फूल तक लाना मैं भूल गया। अब क्या करता ? अन्त में मैंने बाग़ से ही एक फूल चुराना निश्चय किया। इधर-उधर देखता हुआ मैं आगे बढ़ा। देखता हूँ कि पौधों के झुण्ड में एक गुलाब का फूल लगा हुआ है। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि उन पौधों पर गुलाब का फूल कैसे। मैंने सोचा कि शायद गुलाब का पौधा उनके बीच में छिपा हुआ हो। पास जाकर मैंने उसे खींचा, परन्तु वह टूटा नहीं। मालूम पड़ा कि किसी ने उसे वहाँ किसी पौधे से तार द्वारा जकड़ दिया था। मैंने उसे फिर ज़ोर से खींचा। परन्तु इस बार, फूल कुछ हिला और धीरे-धीरे ऊपर को उठने लगा और एक क्षण में ही एक मराठिन का क्रोधित मुख मेरे सामने आ गया। हाय ! हाय ! वह फूल तो उस मराठिन की चोटी में लगा था। कम्बख़्त को कहाँ बैठने की सूझी थी। मैंने उससे क्षमा चाही, परन्तु वह कहाँ सुनती। 'इकड़े-तिकड़े' कह कर सैकड़ों गालियाँ सुना दीं और यही नहीं, लपक कर उसने जो हाथ मारा तो मेरा बाईस रुपए का टोप पास के कीचड़ भरे हुए गड्ढे में जा गिरा। मेरे होश उड़ गए। मैं उसे उठाने को झुका

ही था कि एक मोटर सर्र से उसी कीचड़ में होती हुई निकल गई और मेरे सूट का सामने का भाग कीचड़ से लथपथ हो गया। भरा हुआ घड़ा मेरे सामने से निकला था। शकुन! घातक शकुन! मेरे सारे मन्सूबे ख़ाक में मिल गए। उस दशा में किस प्रकार कुमुद से मिलने जाता। मोटर वाले पर अपना क्रोध उतारने के लिए उधर को मुख करके उसे गालियाँ देने लगा। 'हरामी देख कर मोटर नहीं चलाता। रास्ते को अपने नाना का घर समझता है। सारे सूट का सत्यानाश कर दिया। ज़रा मोटर खड़ी कर लेता तो सारी ऐंठ निकाल देता।' परन्तु मोटर तो मीलों दूर जा चुकी थी। अब क्रोध करने से क्या लाभ था? मैं रूमाल निकाल कर अपना मुख पोंछने लगा। अभी मैं मुख पोंछ ही रहा था कि मैंने पीछे दूसरी मोटर का भोंपू सुना। जब तक मैं सँभलू और वहाँ से हटूँ, वह मोटर भी कीचड़ में से निकल ही गई। और उसने मेरे सूट के पीछे का रहा-सहा भाग भी बिगाड़ दिया, परन्तु इस बार वह मोटर आगे नहीं बढ़ी, वहीं रुक गई और एक सुन्दरी ने खिड़की में से मुख निकाल कर धीरे से कहा—"मुझे बड़ा दुःख है! क्या आपका सारा सूट ख़राब हो गया?"

मैंने बिना उसे देखे मुख पोंछते-पोंछते कहा—"मोटर पर चढ़ कर लोगों को रास्ता चलने वालों का ख़्याल क्यों रहेगा?"

"लेकिन दोष तो आपका ही है। आप उस कीचड़ के पास खड़े ही क्यों थे? मैंने भोंपू बजाया, फिर भी आप नहीं हटे।"

जब वह इतना सब कह गई, तब मुझे ख़्याल हुआ कि वह तो कुमुद का स्वर था। मैं शीघ्र ही मोटर के पास आकर बोला—"कुमुद!"

वह चौंक पड़ी और मेरी ओर देख कर कहने लगी—"लेकिन मैं तो आपको जानती भी नहीं।"

"जानती नहीं हो? क्या वह सेकण्ड क्लास का ज़नाना दर्जा भूल गईं?"

वह गर्दन हिला कर बोली—"आहा, आप वह हैं। कहिए, वह पत्र किस लिए भेजा था?"

"तुमने उसे पढ़ा नहीं?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"क्योंकि मैं जानती थी कि उसमें क्या होगा।"

"वह किस प्रकार?"

"तुम्हारे उस दिन के व्यवहार से।"

"तुमने यह कैसे समझ लिया था कि वह पत्र मेरा था?"

"स्वयं तुम्हारी मूर्खता से"—वह हँस कर बोली—"याद है, तुम्हारा पता लिफ़ाफ़े पर एक कोने में लिखा था?" इसका मुझे विचार भी न हुआ था। इसीलिए शीघ्र ही उसने वह वापस भेज दिया था। दुर्भाग्य बुद्धि के ऊपर भी काला पर्दा डाल देता है। मैं बोला—"तुम समझ सकती हो कुमुद, मुझे उससे कितनी निराशा हुई थी?"

"इसीलिए तो मैंने उसे वापस ही भेजा था।"

"लेकिन फिर भी, तुमने आशा का एक आधार तो दे दिया था?"

"क्या?"

"तुम्हारे लिफ़ाफ़े पर तुम्हारे हाथ का लिखा हुआ मेरा पता।"

वह ख़ूब हँसी और कहने लगी—"क्षमा करना, इसमें भी तुम्हें निराशा होगी!"

"क्यों?"

"वह पता मेरे क्लर्क ने लिखा था!"

कैसा वार किया था। कितनी बेधक क्रूरता दिखाई थी? मेरा मुख उदास होकर नीचे गिरने लगा। वह बोली—अच्छा, मुझे क्षमा कीजिए, मैं घर जा रही हूँ।

"परन्तु मैं तुमसे ही मिलने जा रहा था।"

"किस लिए?"

"वह क्या दो-एक मिनट में बताया जा सकता है?"

"जो कुछ कहना हो, उसे संक्षिप्त कर दीजिए।"

"घर चलूँ?"

"नहीं।"

"कल आऊँ?"

"यहीं कह दो।"

"यहाँ, सरे आम?"

"क्यों, क्या कोई ख़ून-डकैती का मामला है क्या?"

"नहीं, औरों के ख़ून का तो नहीं, लेकिन अपने ख़ून का।"

"क्यों, आत्महत्या करने जा रहे हो ? मेरी सहायता की आवश्यकता है ?"—वह हँस कर बोली।

"तुम तो मेरा मज़ाक़ बना रही हो।"

"अच्छा कहो, क्या बात है ?"

"तुम मेरे साथ क्रूरता का व्यवहार क्यों कर रही हो ?"

"तुम मेरे पीछे इस प्रकार क्यों पड़े हो ?"

"क्योंकि, क्योंकि मैं तुम्हें......प्रेम करता हूँ !"

"क्योंकि, क्योंकि मैं तुम्हें......प्रेम नहीं करती हूँ।"

"ऐसा न कहो, कुमुद ! मैं तुमसे सच्चा प्रेम करता हूँ। मायावादी प्रेम नहीं, दार्शनिक प्रेम। बाह्य लावण्य देख कर नहीं, अन्तर्जगत का सौन्दर्य देख कर। तुम इस प्रकार मुझे निराश नहीं कर सकतीं।"

"तो क्या अपना प्रेम मेरे ऊपर ज़बर्दस्ती लादना चाहते हो ?"

"तुम यह सब इसलिए कह रही हो कि तुम मेरे हृदय की दशा नहीं जानतीं। अगर कहो तो मैं अपना हृदय चाक़ू से चीर कर तुम्हें दिखा सकता हूँ।"—यह कह कर मैंने जेब से अपना क़लम बनाने का चाक़ू निकाल कर खोल लिया। उसने मेरे हाथ से वह चाक़ू ले लिया, उसे घुमा-फिरा कर देखा और फिर अपनी कमर से एक लम्बी सी छुरी मेरे हाथ में देकर बोली—"इस छुरी से अपने हृदय को चीरो !"

मैं दङ्ग रह गया। कितनी विचित्र लड़की है।

"तुम मेरी हँसी उड़ा रही हो।"—मैंने लज्जित होकर कहा।

"हँसी ? बिल्कुल नहीं। सच्ची बात है। तुम्हारा चाक़ू तो चमड़ी भी ठीक तरह से न काट सकेगा। मेरी छुरी हृदय तक सीधी पहुँच जाएगी।"

"तुमसे मुझे यह आशा न थी।"

"यह क्यों होती ? तुम्हें तो यह आशा थी कि मैं डर कर चाक़ू तुम्हारे हाथ से छीन लेती और कहती—ओ हरीश, अपने लिए नहीं तो मेरे लिए, ऐसा न करना ; मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। क्यों ?"

"तो क्या तुम मुझे कभी प्यार नहीं कर सकतीं ?"

"स्वप्न में भी नहीं !"

"किसी दूसरे को प्यार करती हो ?"

"तुम्हें इससे मतलब ?"

"मुझे मतलब ? हाँ, है ! यदि इसी प्रकार तुम व्यवहार करोगी तो किसी दिन सुन लोगी कि हरीश इस संसार में नहीं है।"

"सुन क्यों लूँगी, पढ़ लूँगी। किस अख़बार में यह ख़बर निकलवाओगे ?"

"तुम चाहे जो कह लो। एक दिन सच्चा प्रेम ज़रूर जीतेगा।"

"गुड लक !"—उसने शरारत से कहा और मोटर बढ़ा कर भाग गई।

६

वाह प्रेम महाराज, कैसा बदला लेते हो, और फिर भी अपने ही पुजारी से। नया सूट बिगड़वाया, टोप का सत्यानाश किया, मुँह पर ज़ोर की चपत खाई और ऊपर से सुनीं ऊट-पटाङ्ग बातें। घर लौटने लायक़ भी तो न रहा। बाज़ार में भूत बना किस तरह निकलता ? वहीं रास्ता चलने वाले जान सुखाए डालते थे। जो भी निकलता, मेरी ओर देख कर एक दबी हुई हँसी हँस देता। अपने को एक तुमायशी बन्दर होने से बचाने के लिए मैं बाग़ के उस ओर चला, जिधर छोटी सी नहरें खोद दी गई है। उधर दर्शकों का ऐसा जमघट न था। वहाँ एक ओर बैठ कर मैं यह देख रहा था कि यदि कोई ख़ाली ताँगा या इक्का निकले तो उसे पुकार लूँ। वहाँ बैठे कुछ ही देर हुई थी कि डॉक्टर उधर आ गया। आते ही ज़ोर का एक घूँसा पीठ पर जमा कर वह बोला—क्यों जनाब, आख़िर बातें कर ही लीं ?

मैं उसके हाथ को एक ओर हटा कर बोला—ख़ाक बातें कर लीं ! सारा सूट ख़राब हुआ और उसकी तुनुक-मिज़ाजी सहनी पड़ी।

"यह किस तरह ?"

मैंने सारा क़िस्सा सुनाया। सुन चुकने पर वह बोला—मुझे तो इसमें कुछ आशा नज़र आती है।

"वह कैसे ?"

"उसकी पीछे की बातों से।"

"यानी ?"

"एक तो उसकी सारी बातें हँसी से भरी हुई हैं।"

"इससे क्या ?"

"इससे क्या ? सब कुछ। अगर वह तुम्हें प्यार न करती होती तो नाराज़ होती, अकड़ जाती, दो-चार खरी-खोटी सुनाती और इतनी देर तुम्हारे साथ खड़ी होकर कभी भी बातें न करती।"

"तुम हमेशा बेसर-पैर की उड़ाते हो। उसने साफ़ तो कह दिया कि वह मुझे स्वप्न में भी प्रेम नहीं कर सकती।"

"वह तुम्हारी तरह से मूर्ख नहीं है कि पहली ही मुलाक़ात में तुम्हें यह जता देती कि वह तुम पर मरती है। और फिर यह स्त्रियाँ तो इस बात में ग़ज़ब की उस्ताद हैं। प्यार करेंगी और कहेंगी कि घृणा करती हैं। सूरत देखने को तरसेंगी और कहेंगी कि कभी नहीं मिलेंगी। देखो न, तुम्हें जलाने के लिए पता भी क्लर्क से लिखवाया।"

"तो तुम्हारे कहने का अर्थ यह है कि अभी तक कुछ आशा है ?"

"यह तो वह भी कह सकता है कि जिसका दिमाग़ बिल्कुल ही गोबर से भरा हो।"

"शायद ऐसा वही कहते हैं, जिनका दिमाग़ गोबर से भरा हुआ होता है।"

"यह तो तुम जानो।"

कुछ देर तक हम दोनों चुपचाप रहे। फिर मैं कुछ सोच कर बोला—एक बात सूझी है, भाई डॉक्टर !

"क्या ?"

"वह नित्य शाम को घोड़े पर सवारी करने जाया करती है।"

"फिर ?"

"मेरा विचार है कि कल शाम को उसके साथ घोड़े पर मैं भी जाऊँ। दो-चार बार इस प्रकार मिलने से शायद वह नर्म हो जाय।"

"लेकिन तुम्हारे पास घोड़ा कहाँ है ?"

"तुम किस लिए हो ?"

"मैं घोड़ा बन जाऊँ ?"

"तुम्हारे चचा के पास घोड़ा है। दो-एक बार उनसे माँग लाना।"

"तुम चढ़ना तो जानते ही नहीं।"

"उसमें कौन बड़ी कला है। लगाम कस दी, वह रुक गया; ढीली कर दी, वह तेज़ हो गया। अमरूद ख़ाए नहीं हैं तो सूँघे तो हैं।"

"वह मामूली घोड़ा नहीं है, बड़ा विकट है, हुलिया तङ्ग कर देता है।"

"रोज़ घोड़े ही हुलिया तङ्ग करता होगा।"

"क्या पता, तुम्हें पीठ पर देख कर बिदक जाय।"

"यह सब देखा जायगा। ज़रा उसके साथ घोड़े पर चढ़ने को तो मिल जायगा।"

"अच्छा।"

दूसरे दिन डॉक्टर घोड़ा लेकर आया और कहने लगा—हरीश !

"हाँ।"

"घोड़ा तो ले आया हूँ, लेकिन चचा ने एक शर्त बड़ी बेढब लगा दी है।"

"क्या ?"

"उन्होंने घोड़ा सिर्फ़ मेरी सवारी के लिए दिया है। कहने लगे कि अगर उस घोड़े पर उन्होंने किसी और को चढ़ते देख लिया, तो मुझे वे अपनी कोई भी चीज़ भविष्य में न देंगे।"

"फिर क्या किया जाय ?"

"किया क्या जाय, तुमसे प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। तुम आज इस पर चढ़ोगे।"

"और चचा को मालूम हुआ तो ?"

"उन्हें मालूम न होगा। वे आज किसी मित्र के यहाँ दावत पर जा रहे हैं। तुम किसी से यह न कहना कि वह उनका घोड़ा है।"

"नहीं, मैं उन्हें यह न मालूम होने दूँगा कि मैं इस घोड़े पर चढ़ रहा था।"

मैं शान से घोड़े पर चढ़ कर बनारसी बाग़ की ओर चला। कुछ देर प्रतीक्षा करनी पड़ी। इतने ही में उसका घोड़ा छलाँगें भरता हुआ उधर से सड़क पर निकल गया। मैंने भी अपना घोड़ा पीछे डाल दिया। शहर से जब दो मील बाहर आ गए, तो मैंने अपना घोड़ा उसके घोड़े के बराबर लाकर गुड ईविनिङ्ग की। उसने मेरी ओर दृष्टि फिराई और हँस कर बोली—ओहो, आप हैं ? मैं नहीं जानती थी कि आप घोड़े की सवारी भी करते हैं।

"अब सीखना शुरू किया है।"

"लेकिन चौक से इतनी दूर आकर?"

"यह भाग बहुत रमणीक है।"

"क्या इस घुड़सवारी के सीखने का कोई विशेष कारण है?"

"प्रत्येक बात के करने का कोई विशेष कारण होता है।"

"यह घोड़ा मि० जिन्दल से कब ख़रीदा?"

"मि० जिन्दल से?"

"हाँ, यह तो उन्हीं का घोड़ा है। ऐसा घोड़ा लखनऊ भर में कोई और नहीं है।"

"लेकिन इस घोड़े ने तो लखनऊ का अभी मुँह ही देखा है। वह इसका भाई होगा।"

"वाह, यह ख़ूब! ख़ैर, मि० जिन्दल अभी पीछे आ रहे हैं, उनसे मैं पूछूँगी।"

मैं घबरा गया। 'मि० जिन्दल पीछे आ रहे हैं।' इस वाक्य ने मेरे हृदय की धड़कन को तेज़ कर दिया। मैं भौंचक होकर बोला—मि० जिन्दल इधर आ रहे हैं?

"हाँ! वह और पिता जी मोटर में पीछे से आ रहे हैं और इस सामने वाले बाग़ में मुझसे मिलेंगे।"

"यह क्योंकर हो सकता है कि मि० जिन्दल इधर आ रहे हैं?"

"क्या उन्हें जानते हो?"

"जानता हूँ? नाम ही आज सुना है। नहीं, उन्हें मैं नहीं जानता। क्या कहा, वे इधर आ रहे हैं?"

"हाँ, दो-एक मिनट में।"

"यह बड़े आश्चर्य की बात है कि मि० जिन्दल इधर आ रहे हैं।"

"क्यों?"

"यह तो नहीं जानता। मगर यह आश्चर्य की बात है।"

एकाएक मोटर का शब्द सुनाई दिया। कुमुद ने पीछे फिर कर देखा और चिल्ला उठी—लो, वह मोटर आ रही है।

"और इसी में मि० जिन्दल आ रहे हैं!"—मैंने धीरे से कहा और घबराहट में मेरे हाथ से घोड़े की लगाम छूट गई। बस फिर क्या था, घोड़ा अपनी पर आ गया और हवा में उड़ने लगा। मेरे रहे-सहे होश भी उड़ गए। मुझे यह पता न रहा कि क्या हो रहा था। सारा विश्व मुझे उलटता हुआ दिखाई दे रहा था। कुछ देर बाद ही मैं घोड़े की पीठ के बजाय एक काँटों के खेत में पड़ा आहें भर रहा था।

७

यह मुसीबतों का तीसरा नम्बर था। पहले में तो स्टेशन पर दौड़-धूप ही करनी पड़ी थी, दूसरे में सूट की मिट्टी पलीद हुई थी, अब तीसरे में खोपड़ी पर नौबत आई। यह कुशल थी कि घोड़े ने किसी गढ़े में या पथरीली जगह पर न गिराया, नहीं तो 'रामनाम सत्य' होने में देर न थी। फिर भी खेत था तो काँटों का, अतः सारा शरीर चुटीला हो गया था। एक सप्ताह तक चारपाई पर पड़ा ही रहना पड़ा।

अपनी मुझे परवाह नहीं थी, परन्तु मेरे पीछे इस बार डॉक्टर बेचारे को भी कष्ट सहना पड़ा। कुमुद की कृपा से उसके चचा को घोड़े के विषय में पता लग ही गया और डॉक्टर को उनसे एक करारी डाँट खानी पड़ी। इसलिए अब मैंने बिना डॉक्टर के ही अपना काम करने का निश्चय कर लिया।

कठिनता यह थी कि अब कुमुद से मैं मिल भी न सकता था। इतना झूठ बोल कर किस मुख से उसके सामने जाता? इसी चिन्ता में मैं सूखने लगा। एक दिन मैं अपने बरामदे में आरामकुर्सी पर पड़ा हुआ अख़बार पढ़ रहा था कि दूधवाला दूध देने के लिए आ गया। दूध देने के बाद वह एक ओर को बैठ गया और बोला—एक सिगरेट मिलेगी, सरकार?

मैंने उसे एक सिगरेट दे दी। उसे जला कर आप धुआँ निकालते हुए बोले—बाबू, आजकल आप बहुत कमज़ोर हो गए हैं। कुछ फ़िक्र सता रही है क्या?

"हाँ, कुछ ऐसी ही है।"

"हमारे लायक कोई बात हो तो हजूर, हमेशा तैयार हैं।"

"तू उसे नहीं कर सकता मैकू, वह बहुत बड़ी बात है।"

"कुछ आसिक-मासूकी की?"

"तेरी समझ में यह बात नहीं आएगी।"

"समझते तो नहीं हजूर, पर किए सब भुगते हैं।"

"क्या? तूने भी किसी को प्यार किया है?"

"हाँ सरकार, हमने भी एक को ऐसा प्यार किया कि दुनिया में कोई क्या कर सकेगा !"

"क्या वह तेरे क़ाबू में आ गई थी ?"

"आती न क्या अपने बस !"

"तो क्या कोई तरकीब चली थी ?"

"वह आप लोगों के काम की नहीं है ?"

"क्यों ?"

"क्योंकि पढ़े-लिखे साहब उस पर विश्वास नहीं करेंगे।"

"कुछ बता तो सही। जँचेगी तो विश्वास कर लेंगे।"

"मलीहाबाद में एक फकीर हैं, वह ऐसी तरकीब बताते हैं कि मासूक दौड़ा हुआ आपकी तरफ आवे ?"

"अच्छा, कल तुझे जवाब देंगे।"

मुझे कभी इन बातों में विश्वास न हुआ था, परन्तु 'मरता क्या न करता'। मैं सोचने लगा कि इसमें हर्ज ही क्या है। एक बार भाग्य का जुआ इस प्रकार भी खेल लिया जाय। हालाँकि मुझे इस बात से बड़ी शर्म लगती थी कि एक ग्रेजुएट एक मामूली फ़क़ीर के सामने इस तरह की बातों के लिए जाए, परन्तु Everything is fair in love and war. अतः मैंने यही निश्चय किया कि उसके पास चल कर क़िस्मत आज़माई जाय।

दूसरे दिन अपना दूध इधर-उधर बाँट कर मैकू मेरे पास आ गया और हम दोनों मलीहाबाद की ओर को रवाना हो गए। क़स्बे से बाहर एक छोटी सी कुटिया में फ़क़ीर महाराज धूनी लगाए बैठे थे। सामने बड़े-बड़े चैले जल रहे थे। दाढ़ी और सर के बढ़े हुए बालों में सुगन्धित तैल लगा हुआ था। आँखों में बारीक काजल लगा था। शरीर पर रेशमी चुग़ा था। गले में और हाथों में मालाओं का ढेर था। मुख में पान का बीड़ा था और सुल्फ़े की चिलम हाथ में थी। आँखों में मक्कारी और शैतानी भरी हुई थी। सामने ज़मीन पर ही भक्तों का आसन जमा हुआ था। भक्तों में सभी प्रकार के थे—वृद्ध, बालक, युवा, पुरुष, स्त्री। अगर बाबा जी हँस देते थे, तो भक्तगण भी खिलखिला कर हँस पड़ते थे। मुझे यह सब देख कर बड़ी घृणा हो गई। मैंने मैकू से कहा—अगर यही तेरे फ़क़ीर हैं, तो मैं तो इनसे कुछ पूछता नहीं।

मैकू बोला—अब सरकार, बना हुआ काम न बिगाड़िए। इतनी दूर से आकर दो बातें करने में क्या हर्ज है। यह तो बाबा जी का बाहरी दिखावा है। जब आप उनसे मिलेंगे तो और ही बात हो जाएगी, आप ख़ुद उनकी इज़्ज़त करने लगेंगे। देखिए तो, इनके पास बैठे हुओं में मलीहाबाद के ही नहीं, दूर-दूर के सेठ-साहूकार नामी आदमी हैं। वे सब पागल तो हैं नहीं।

अन्य अवसर पर उस दूध वाले के व्याख्यान पर उसको एक चपत जड़ देता, मगर इस वक़्त अपना मतलब था, इसलिए चुपचाप उसकी बात मान ली। दो घण्टे तक प्रतीक्षा करने के बाद कहीं भीड़ छँटी। जब बाबा जी अकेले रह गए तो मैकू मुझे उसके पास ले गया। मैकू धीरे से बोला—हज़ूर, बाबा जी के पैर छुओ, नहीं नाराज हो जाएँगे।

ऐसी-तैसी इस प्रेम की। उस बाबा के पैर तक छूने पड़े। उसने वायु में एक हँसी फेंक कर कहा—लखनऊ से आए हो ?

"जी हाँ।"—मैंने आश्चर्य से कहा; क्योंकि उसे मेरे आने की कोई सूचना न थी।

"मुहब्बत में मुब्तला हो ?"

मैं चुप रहा। वह हँस कर बोला—हमें सब पता है। हमसे मत छिपाओ।

"आपको सब कुछ पता है ?"—मैंने विस्मय से पूछा।

"हाँ, सब कुछ पता है। तुम एक पढ़ी-लिखी लड़की से मुहब्बत करते हो और वह तुम्हें मुहब्बत नहीं करती है। सच है ?"

"बिल्कुल।"

"उसके पीछे तुमने बड़ी तकलीफ़ें उठाई हैं, लेकिन अभी वह क़ाबू में नहीं आई। सच है ?"

"बिल्कुल।"

"अब तुम यह चाहते हो कि वह भी तुम्हारी मुहब्बत में पागल हो जाय और तुम्हारी तरफ़ दौड़ी हुई आवे। सच है ?"

"बिल्कुल।"

मुझे आश्चर्य हो रहा था। बाबा जी है या जादू का पुतला ! सारी बातें इस तरह कर रहा है, मानो मैशीन है या सारी घटनाएँ स्वयं देख चुका है। वह कुछ देर तक

चितवन

क्यों न कहे दर्शक का मन यह चितवन नित अनमनी रहे,
इस सुषमा की रक्षा के हित, सदा प्रतीक्षा बनी रहे !

—आ० प्र० श्री०

[लेखक—अध्यापक ज़हूरबख़्श जी 'हिन्दी-कोविद']

'स्फुलिङ्ग' विद्याविनोद-ग्रन्थमाला की एक नवीन पुस्तक है। आप यह जानने के लिए उत्कण्ठित होंगे, कि इस नवीन वस्तु में है क्या ? न पूछिए कि इसमें क्या है ! इसमें उन अङ्गारों की ज्वाला है, जो एक अनन्त काल से समाज की छाती पर धधक रहे हैं, और जिनकी सर्व-संहारकारी शक्ति ने समाज के मन-प्राण निर्जीव-प्राय कर डाले हैं। 'स्फुलिङ्ग' में वे चित्र हैं, जिन्हें हम नित्य देखते हुए भी नहीं देखते और जो हमारे सामाजिक अत्याचारों का नग्न प्रदर्शन कराते हैं। 'स्फुलिङ्ग' देख कर समाज के अत्याचार आपके नेत्रों के सामने सिनेमा के फ़िल्म के समान घूमने लगेंगे। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि 'स्फुलिङ्ग' के दृश्य देख कर आपकी आत्मा काँप उठेगी, और हृदय ? वह तो एक-बारगी चीत्कार कर मूर्च्छित हो जायगा। 'स्फुलिङ्ग' वह वैतालिक रागिनी है, जो आपके सदियों के सोए हुए मन-प्राणों पर थपकियाँ देगी। 'स्फुलिङ्ग' में प्रकाश की वह चमक है, जो आपके नेत्रों में भरे हुए घनीभूत अन्धकार को एकदम विनष्ट कर देगी।

'स्फुलिङ्ग' में कुशल-लेखक ने समाज में नित्य घटने वाली घटनाएँ कुछ ऐसे अनोखे ढङ्ग से अङ्कित की हैं, कि वे सजीव हो उठी हैं। उन्हें पढ़ने से ऐसा बोध होता है, जैसे हमारे नेत्रों के सामने दीनों पर पाशविक अत्याचार हो रहा हो तथा हमारे कानों में उनकी करुण चीत्कार-ध्वनि गूँज रही हो। भाषा में ओज, माधुर्य और करुणा की त्रिवेणी लहरा रही है। हमारा अनुरोध है, कि यदि आपके हृदय में अपने समाज तथा देश के प्रति कुछ भी कल्याण-कामना शेष है, तो आज ही 'स्फुलिङ्ग' की एक प्रति ख़रीद लीजिए। पुस्तक छप गई है। शीघ्र ही ऑर्डर रजिस्टर करा लीजिए !

चुप होकर कुछ सोचता रहा। मैंने डरते हुए उससे पूछा—तो बाबा, क्या वह कभी मुहब्बत करने लगेगी?

"करने क्यों नहीं लगेगी। लेकिन इसके लिए कुछ जन्तर-मन्तर करना पड़ेगा।"

"मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ।"

"काम इतना आसान नहीं है। सोच-समझ लिया है?"

"हाँ।"

"रुपए का भी ख़र्च है।"

"इसकी भी कुछ परवाह नहीं।"

इतने ही में एक आदमी ने आकर कुछ इशारा किया और बाबा ने हम लोगों को झोपड़ी के दूसरी ओर चले जाने को कहा। मन मार कर हम इधर आकर बैठ गए। मैंने मैकू से पूछा—मैकू, हमें इधर क्यों भेज दिया है?

"कोई औरत आई होगी।"

"औरत? बाबा जी के पास औरत का क्या काम?"

"औरत बाबा जी के काम के लिए नहीं आतीं, अपने ही काम के लिए आती हैं।"

"यानी?"

"बच्चों के लिए।"

"इस रात में?"

"औरतें फकीरों के पास दिन में भी कभी जाया करती हैं?"

मुझे उस बाबा पर क्रोध आया और उस स्त्री पर भी। भले घर की स्त्रियाँ ऐसे रसीले फ़क़ीर के पास रात में अकेली! परन्तु फिर मैंने सोचा तो मुझे अपने ही ऊपर क्रोध आया। जब मुझ जैसा पढ़ा-लिखा व्यक्ति ऐसे बाबा के पास आ सकता है, तो उन अशिक्षित स्त्रियों का ही इसमें क्या दोष? मेरी इच्छा तो हुई कि वहाँ से भाग खड़ा होऊँ और उस साधू के पास भी कभी न फटकूँ। मगर फिर कुमुद की याद आई और सारे हौसले ठण्डे पड़ गए। फिर उसने कई बातें भी ऐसी बताई थीं कि उसकी बातों पर बिल्कुल ही अविश्वास करना कठिन था। कुछ देर के बाद वह स्त्री चली गई और बाबा ने फिर हमें बुला लिया। वह बोला—तो तुम सब कुछ करने को तैयार हो?

"हाँ।"

"कल रात को सौ रुपए लेकर लखनऊ से एक मील दूर आना। वहाँ तुम्हें मेरा एक आदमी मिलेगा। वह तुम्हें एक दवा देगा। उसमें तुम एक पीपल के पेड़ के नीचे दो घण्टे तक फूँकें मारना और फ़ौरन ही उस जगह जाकर, जहाँ वह सोती हो, उसे जला कर रख देना। दूसरे दिन सुबह ही उसका असर दिखाई पड़ेगा। कर सकोगे?"

"कोशिश करूँगा।"

"हाँ, एक बात है। जिस वक़्त जङ्गल में आओ और उसके घर जाओ, बदन पर सिर्फ़ एक लँगोटी हो।"

"अगर लँगोटी की जगह एक जाँघिया हो?"

"उससे भी काम चल सकेगा।"

"दूसरे दिन रात के बारह बजे सौ रुपए लेकर मैं जङ्गल में पहुँच गया। सौ रुपए उस मुट्ठी भर दवा के लिए देते हुए दर्द तो लगा, पर क्या किया जाय। आशा पर सब कुछ करना पड़ता है। डॉक्टर से मैंने इसकी चर्चा तक न की थी, क्योंकि मुझे एक तो उल्लू बनाता और दूसरे यह करने भी न देता। और तो सब ठीक-ठाक था, परन्तु दो घण्टे उस पीपल के नीचे खड़े होकर फूँकों की क़वायद करना मुझे अखर गया।

यह सब कर चुकने के बाद मैंने कुमुद के घर की ओर प्रस्थान किया। उसके भीतर जाकर यह पता लगाना कि कुमुद किधर सो रही थी, आसान न था। इतने ही में मुझे एक कमरे से बिजली की रोशनी दिखाई दी। क्या वही कमरा कुमुद का था? यह जानने के लिए मैं उसके नीचे आकर खड़ा हुआ। थोड़ी देर ही में एक चेहरा खिड़की से बाहर निकला। अधिक प्रकाश न होने के कारण मैं उसे भली-भाँति तो न देख सका, परन्तु मुझे अनुमान यही हुआ कि वह कुमुद थी। कमरे का पता लग जाने से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैं ऊपर चढ़ने का उपाय सोचने लगा। इतने ही में ऊपर से उसने एक बाल्टी भरा हुआ गन्दा पानी मेरे ऊपर फेंक दिया। एक चद्दर ओढ़ कर आया था, वह पानी से तराबोर हो गई। मन ही मन भाग्य को कोस कर मैंने वह चद्दर उतार कर फेंक दी। शीघ्र ही वह बत्ती बुझ गई। आध घण्टा और प्रतीक्षा करके मैंने पतनाले के सहारे ऊपर चढ़ना शुरू किया। कमरे

में पहुँच कर मैंने वह दवा पलङ्ग के पास पृथ्वी पर रख कर उसमें दियासलाई दिखा दी। दियासलाई का जलना ही था कि पलङ्ग से उठ कर वह चौंक पड़ी। अब मैंने पहचाना कि वह कुमुद न थी, बल्कि उसकी नौकरानी थी। हाय-हाय! कैसी ग़लती हो गई। सारी मेहनत व्यर्थ गई। अब जान बचाने के लाले पड़ गए। मैं खिड़की पर, नीचे उतरने के लिए आया ही था कि उस कम्बख़्त ने आकर मेरे जाँघिए की पेटी पकड़ ली और इस ज़ोर से पकड़ ली कि मेरे छुड़ाए न छुटी। यह अच्छा था कि घबराहट से उसका मुख बन्द था। फिर भी मेरे पास उससे युद्ध करने का समय कहाँ था। इतने ही में पास की मेज़ पर रक्खी हुई छुरी मुझे दिखाई पड़ी और मैंने उससे जाँघिए की पेटी को काट दिया! पेटी नौकरानी के हाथ में ही रह गई और मैं जल्दी से पतनाले के रास्ते नीचे उतर आया। जब मैं कूद कर अहाते के बाहर आ गया, तो नौकरानी की आवाज़ सुनाई दी। वह अब 'चोर-चोर' चिल्ला रही थी।

सड़क पर आकर मैंने देखा कि मेरे जाँघिए का ऊपर का बटन भी कहीं टूट कर गिर गया था। जाँघिया नीचे सरका आ रहा था, अतः एक हाथ से उसे पकड़ कर मुझे ऊँचा रखना पड़ा। चद्दर भी वहाँ छूट गई थी, अतः पुलिस के डर से चुपचाप गलियों में होकर घर की ओर चला। परन्तु क्या दुर्भाग्य का अभी अन्त होना था? एक पुलीस के सिपाही ने मुझे देख ही लिया। वह चिल्ला कर बोला—कौन है?

मेरी दशा उत्तर देने लायक़ थोड़े ही थी, अतः मैं चुप रहा और अपनी चाल ज़रा तेज़ कर दी। उसको सन्देह हुआ और वह मेरा पीछा करने लगा। उसे पीछे देख कर मैं अपने सर के बल भागा। उसने सीटी बजाई और वह भी तेज़ी से मेरे पीछे दौड़ने लगा। परमात्मा ने टाँगें तो तेज़ दी थीं, परन्तु यह जाँघिया की आफ़त मारे डालती थी। एक हाथ तो उसे पकड़े रहने में ही घिरा हुआ था। इस प्रकार कब तक भागता? हाथ भी थक गए थे और पैर भी। और पीछे एक-दो नहीं, कई सिपाही पीछा कर रहे थे। अन्त में मुझे एक युक्ति सूझ पड़ी। पास ही 'Fire-alarm' था। मैंने उसका शीशा तोड़ कर उसे बजा दिया और मैं सुङ्गी के कूड़ा-करकट वाले सन्दूक़ में जाकर बन्द हो गया। उसके भीतर दुर्गन्ध का ठिकाना न था, परन्तु किसी तरह जान तो बचानी थी।

एक मिनट के बाद ही पुलीस के सिपाही उधर आ गए और खड़े होकर बातें करने लगे। एक कह रहा था—कम्बख़्त के बदन पर एक लँगोटी ही थी।

दूसरा बोला—कोई पुराना पापी है।

तीसरा बोला—ख़ून करके आया होगा।

चौथा बोला—बचा मिल जायँ तो पहले जूतों से मरम्मत कर दो और फिर और बात करो। दौड़ाते-दौड़ाते नाक में दम कर दिए।

मेरे होश उड़ने लगे। कहीं ऐसा न हो कि उन्हें मेरा पता लग जाय। फिर तो खोपड़ी समूची घर तक जाएगी नहीं। कम्बख़्त वहाँ से टलते भी न थे। सलाह करके चार तो वहीं खड़े रह गए और बाक़ी इधर-उधर की गलियों में चले गए। इतने ही में Fire-brigade की घण्टी सुनाई दी। मुझे कुछ आशा हो गई। एञ्जिन ने वहाँ आकर पुलिस वालों से पूछा—"आग किधर लगी है?"

"आग?"

"हाँ, हमारे पास 'कॉल' गया था।"

पुलिस वालों का ध्यान मेरी ओर से हट गया। उन्होंने सीटी बजाई और दूसरे सिपाहियों के आ जाने पर सब एञ्जिन समेत एक ओर को चल दिए।

मैं अपने जाँघिए को पकड़े-पकड़े जैसे-तैसे दौड़ता हुआ घर आया। पलङ्ग पर पड़ कर मुझे जो विश्रान्ति मिली, उसका अनुभव केवल वही कर सकते हैं, जिन्होंने कभी एक रात में इतनी दौड़-धूप की हो।

८

उस रात की घटना ने तो सारी आशाओं पर पानी डाल दिया। हिम्मत टूट गई। जीवन से घृणा हो गई। उसके सामने झूठ बोला, चोरी तक करनी पड़ी। फिर उसके सामने किस प्रकार जा सकता था? और यदि उसके दर्शन भी नहीं मिल सकते थे, तो जीने से ही क्या लाभ? धीरे-धीरे सोचते-सोचते, आत्महत्या का ही विचार मन में स्थिर हो गया। इसके सिवाय और चारा ही क्या था? डॉक्टर ने कहा ही था कि प्रेम में आशा भी है और निराशा भी। न सबको निराशा

मिलती है न आशा। यदि मेरे भाग्य में निराशा पड़ी तो मुझे स्वीकार करनी चाहिए।

आत्म-हत्या किस प्रकार हो सकती है ? कोई जल में डूब कर मरता है, कोई विष खाकर और कोई पिस्तौल से। पिस्तौल तो मेरे पास था ही नहीं। विषों का मुझे ज्ञान न था और न उनका मिलना ही आसान था। अतः मेरा ध्यान गोमती की ओर गया। मौक़ा देखने की इच्छा से गोमती के किनारे आया। घूमते-घूमते, जब छोटी लाइन के पुल के पास आया तो एक भीड़ दीख पड़ी। तमाशा देखने वालों की हमारे यहाँ कमी नहीं है। कोई मर रहा है तो सैकड़ों राहगीर तमाशा देखने के लिए इकट्ठे हो जायँगे। भीड़ के पास जाकर, तमाशा देखने की इच्छा से, मैं भी खड़ा हो गया। देखा कि एक आदमी भीगे हुए वस्त्र पहने बेहोश पड़ा है और पुलीस के सिपाही उसे एम्बूलेन्स की मोटर में चढ़ाने की तैयारी कर रहे हैं। एक सिपाही से, जो पास ही खड़ा था, मैंने पूछा—यह क्या बात है ?

"पुलिस के लिए नाहक़ की तवालत। कोई हज़रत ख़ुदकुशी करने की ग़रज़ से गोमती में कूद पड़े थे।"

"मरे नहीं ?"

"मरते कैसे ? गोमती में पानी इतना कहाँ है ?"

"अब कहाँ ले जा रहे हो ?"

"अस्पताल को। पीछे से मुक़दमा चलेगा।"

"मुक़दमा ?"

"ख़ुदकुशी जुर्म है।"

"जान की जान ख़तरे में पड़े और ऊपर से मुक़दमा।"

"क़ानून है।"

"क्या सज़ा मिलती है ?"

"जुर्माना या जेल।"

मेरे हवास फ़ाख़्ता हो गए। इस जान देने से बाज़ आवे। जेल में जाने से तो इसी हालत में जीना अच्छा है। मैं चुपचाप घर की तरफ़ चला आया। अब मरने के लिए और क्या उपाय किया जाय ?

मुझे एकाएक डॉक्टर की याद आ गई। उसकी डिस्पेन्सरी में तो अनेकों प्रकार के विष होंगे। अगर उनमें से कोई चुरा लिया जाय तो ? चोरी तो करनी पड़ेगी, परन्तु यह अन्तिम चोरी होगी। और फिर अपने लाभ के लिए तो मैं चोरी करूँगा ही नहीं, यह तो मरने के लिए होगी। फिर इसमें क्या हर्ज है !

डॉक्टर मरीज़ों को देख-भाल कर अपनी डिस्पेन्सरी में बैठा था कि मैं पहुँच गया। मुझे देखते ही वह लपक कर बोला—वाह मियाँ हरीश, मुद्दतों के बाद मिले। क्या कुछ साँठ-गाँठ लग गई ?

"बड़ा बुरा हाल है यार, कुछ न पूछो ! उस तरफ़ से तो अब बिल्कुल ही निराश हो गया हूँ।"

"और मुहब्बत अब भी करते हो ?"

"हाँ ! वह तो कम हो नहीं सकती।"

"फिर ?"

"अब दुनिया से जी ऊब गया है।"

"तो मर जाओ। यही एक सीधा तरीक़ा है।"

"तुम भी यही सलाह देते हो ?"

"यह तो मानी हुई बात है, कि ऐसे जीने से मरना ही अच्छा है !"—वह हँस कर बोला।

"तुम तो अब भी मज़ाक़ करते हो डॉक्टर !"

"इसमें मज़ाक़ की क्या बात है ? मरे भी तो हँसता हुआ मरे। कभी कोई प्रेमी रोता हुआ भी मरा है ?"

"मरने का तरीक़ा भी नहीं आता। तुम तो डॉक्टर हो, कुछ बताओ न।"

"हमारे पास क्या कमी है ? ज़हरों से आलमारी भरी है। देखते हो, उस आलमारी में सब शीशियों पर लिखा है 'Poison'।"

"सब से अच्छा विष कौन सा है ?"

"यह सामने मेज़ पर देखते हो ?" उसने मेज़ पर रक्खी हुई दो शीशियों की ओर इशारा किया। उन दोनों में सफ़ेद पाउडर भरे थे। मैंने उधर देख कर उत्तर दिया—'हाँ।'

"इनमें से एक में आर्सेनिक (सङ्खिया) है।"

"घातक है ?"

"बड़ा !"

उसने दोनों शीशियों में से एक उठा कर मुझे दिखाई और फिर मेज़ पर रख दी। मैं टकटकी लगाए हुए शीशियों की ओर देखता रहा। डॉक्टर बोला—कहो, पसन्द है ?

"कितना खाया जाता है ?"

"दो चमचे भर से काम चल जायगा ?"

"मृत्यु कब हो जाती है ?"

"रात को खाकर सो रहो, सवेरे ख़तम।"

"बड़े मज़े का ज़हर है ?"

"तो क्या तुमने मरने का इरादा कर ही लिया है ?"

मैंने हँस कर उत्तर दिया—नहीं यार, मैं तो हँसी कर रहा था। अभी मेरी उम्र ही कितनी है और दुनिया में मैंने देखा ही क्या है, कि जो इस तरह आत्म-हत्या करता फिरूँ।

"ग़नीमत है।"

इतने ही में नौकर ने डॉक्टर को भीतर बुला लिया। मैंने इधर-उधर देखा और काँपते हाथों से एक काग़ज़ पर दो चमचे भर पाउडर उड़ेल कर जेब में डाल लिया। मेरा हृदय ज़ोर से धड़क रहा था और वहाँ से भाग जाने की इच्छा होती थी। जब डॉक्टर वहाँ आया तो मैंने उससे कहा—भाई, अब मैं जाता हूँ। कुछ तबियत सुस्त मालूम होती है।

"यहीं आराम कर लो।"

"नहीं, अब घर जाकर ही लेटूँगा।"

"शाम को तुम्हारे यहाँ आवें ?"

"आज शाम को नहीं, कल आना।"

"क्यों ?"

"कोई कारण नहीं। शाम को मैं कमरे में अकेला रहना चाहता हूँ।"

"मरने के लिए ?"—वह हँस कर बोला।

"नहीं, इतमीनान रक्खो।"—मैंने कहा और वहाँ से बिदा लेकर चल दिया। चलते समय मैंने डॉक्टर की ओर एक हसरत-भरी निगाह डाली, परन्तु वह बदले में केवल मुस्करा दिया।

घर आकर मैंने मरने की पूरी तैयारी कर ली। बुढ़िया को पाँच रुपए इनाम के दिए, और डॉक्टर को एक अन्तिम पत्र लिख दिया—

"प्रिय डॉक्टर !

क्षमा करना मैंने तुम्हारा एक अपराध किया है। तुम्हारे बिना पूछे तुम्हारी बोतल से मैं थोड़ा सा आर्सेनिक ले आया हूँ। तुमसे पूछने का मुझे साहस ही कैसे हो सकता था ?

तुम कल आत्म-घात की बात को मज़ाक़ समझ रहे थे, परन्तु वह सच है। आज रात को मैं इस पाउडर को खाकर सो रहूँगा और कल प्रातःकाल तुम हरीश को इस संसार में जीवित न पाओगे। तुम जानते हो कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ, वह निरा पागलपन ही नहीं है। मैं उसे प्यार करता हूँ और हृदय से प्यार करता हूँ। उसके प्राप्त करने के लिए मैंने करने योग्य और न करने योग्य सब कुछ किया, परन्तु बार-बार मुझे निराशा ही हुई। ऐसी दशा में अब मैं कब तक जीवित रह सकता हूँ ? मुझे आशा है कि तुम मेरे भावों को समझोगे और मेरी भर्त्सना न करोगे।

तुम सा मित्र मिलना बहुत कठिन है। तुमने वह सब कुछ किया, जो एक मित्र को दूसरे मित्र के लिए करना चाहिए। तुम्हारा ऋण चुकाने के लिए मैं कुछ न कर सका, इसका मुझे दुख है। परन्तु आशा है कि तुम क्षमा करोगे और कभी-कभी याद कर लिया करोगे।

यदि कभी अवसर मिले तो उस बेदर्द से मिल कर सुना देना कि किस प्रकार हरीश उसके लिए बलिदान हो गया। यह मालूम है कि वह लापरवाही से हँस देगी, परन्तु शायद है कि कभी उसके हृदय के रेगिस्तान में मेरी स्मृति का नन्हा सा पौधा उपज आवे।

अच्छा, अब विदा।

—अभागा हरीश"

पत्र को मैंने बैरङ्ग लिफ़ाफ़े में भेजा, ताकि उसे शीघ्र ही और अवश्य ही मिल जाय। पत्र को मैंने लेटर-बक्स में डाला और कमरे में आकर लेट गया। बुढ़िया भोजन लेकर आई, परन्तु कुछ खाने की इच्छा न हुई। वह मेरी ओर देख कर बोली—का आँग पिरात है का बबुआ ?

"आँग नहीं पिरात है, तनिक सरीरवा थकि गवा रहिन।"

"भिनसारे चाय केहि बखत पिहियौ ?"

"नौ-दस बजे उठब।"

बुढ़िया चली गई। मैंने पुड़िया खोली। हृदय में धुकधुकी पैदा हो गई। मृत्यु ! नाम ही कितना भयानक है। संसार छोड़ना पड़ेगा और उसके साथ ही उसे, जिसके पीछे प्राण जा रहे हैं। बिना कुछ देखे,

बिना कुछ भोगे, विश्व से अन्तिम विदा! विधि का कैसा अत्याचार है! मैंने अन्तिम बार कमरे के ऊपर दृष्टि डाली, पुस्तकों को देखा, खिड़की से झाँक कर चारों ओर का दृश्य देखा, एक दृष्टि नीलाकाश की ओर फेंकी और दो मिनट ज़ालिम कुमुद की मूर्ति का स्मरण करके पुड़िया गले के नीचे डाल ली। कुछ देर ही में मुझे किसी बात का पता न रहा।

* * *

आँख खुली। मैंने डर कर सामने देखा। मैं आशा कर रहा था कि दो-चार यमदूत सामने मिलेंगे। परन्तु वहाँ तो वही मेरी पुस्तकों की अलमारी दिखाई दी। यह क्या? क्या स्वर्ग में भी मुझे वही मिलेगा, जो मैं पृथ्वी पर छोड़ आया हूँ या यमराज ने यह सब वस्तुएँ पृथ्वी पर से उठवा कर मेरे लिए यहाँ रख दी हैं? मैं उत्तेजित होकर उठा। वही खिड़की, वही आकाश। आगे चल कर देखा, मेरे वही सूट खूँटी पर रक्खे हैं। मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। परमात्मा मुझे बड़ा समझदार व्यक्ति मालूम पड़ा, जिसने मेरी सारी चीज़ें स्वर्ग में भी उसी प्रकार सजवा दीं, जैसी वे पृथ्वी पर थीं। मैंने दाढ़ी पर हाथ फिराया, बढ़ी हुई थी। मैंने सोचा कि स्वर्ग में उस्तरा तो मिलता न होगा, क्योंकि सबको दाढ़ी रखाते हुए तस्वीरों में देखा था। परन्तु जब मैंने मेज़ पर अपने Safety Razor को रक्खा देखा तो परमात्मा की दूरदर्शिता की प्रशंसा किए बिना मुझसे न रहा गया। टहलते-टहलते जब मैं बाहर बरामदे में पहुँचा तो मेरे आश्चर्य की सीमा न रही, जब मैंने डॉक्टर को एक कुर्सी पर बैठा देखा। मेरे मुँह से हठात् निकल गया—डॉक्टर!

"हरीश!"—उसने मुड़ कर कहा।

"तुम भी मर गए? बोलो कब मरे?"

"मैं काहे को मरता?"

"तो स्वर्ग में कैसे आ गए?"

"यह स्वर्ग कहाँ है?"

"तो और क्या है?"

"तुम्हारा कमरा।"

"मेरा कमरा?"

"हाँ!"

"यानी तुम मुझे यह बताना चाहते हो कि मैं स्वर्ग में नहीं हूँ?"

"बिल्कुल ठीक। ज़रा खिड़की से झाँक कर देखो तो पता लग जायगा कि तुम लखनऊ के अपने कमरे में हो या नहीं।"

"परन्तु मैंने तो देखा कि मैं मर गया था और मुझे चार आदमी उठा कर एक विमान पर एक दाढ़ी वाले वृद्ध पुरुष के पास ले गए। उसने मुझे देख कर उनसे स्वर्ग में मुझे पहुँचाने को कहा। फिर वे मुझे यहाँ छोड़ गए।"

"यह होगा स्वप्न हज़रत!"

"यानी मैं मरा नहीं, ज़िन्दा हूँ?"

"पागल तो नहीं हुए?"

"इसमें पागलपन क्या है? भला दो ड्राम आर्सेनिक खाकर भी कोई जीवित रह सकता है?"

"कहता कौन है कि तुमने आर्सेनिक खाया था?"

"तो तुम्हारी उस शीशी में क्या था?"

"एक नींद लाने वाली दवा!"

"ओहो, तो तुमने यह चालबाज़ी की।"

"तुम जैसों के साथ ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए। भला, सङ्खिया खाकर मरने चले हैं। अरे, अगर मरना ही है तो उसके द्वार पर मरो, जिससे उसे भी तो मालूम पड़े। इस मरने में क्या लुत्फ़ कि मरे भी और उसके माथे पर एक बल भी न पड़ा।"

"ठीक कहते हो डॉक्टर, इसका मुझे ख़्याल ही न आया था।"

यह अच्छा था कि यह बात डॉक्टर ही को मालूम पड़ी थी। अगर और कोई जान जाता तो पुलीस के मारे नाक में दम होता और जो सुनता वही बेवक़ूफ़ बनाता। अबकी बार मैंने डॉक्टर को भी किसी बात की ख़बर न देने का निश्चय कर लिया।

९

इस बार किस प्रकार मरूँ, यह समस्या सामने आई। मरना तो था ही, इसमें कुछ सन्देह न था। डॉक्टर के वे शब्द याद आ गए—"अगर मरना ही है तो उसके द्वार पर मरो।" बात तो ठीक थी। अगर उसके सामने मरा जाएगा, तो यह तो जान जाएगी कि हाँ,

कोई था, जो उसके लिए मर गया। मरने का समाचार सुनना और बात है और मुर्दे को सामने देखना और। यह निश्चय होते ही मैं उसके घर की ओर चल दिया। इस बार न तो बुढ़िया से मैंने कुछ कहा था और न डॉक्टर को ही कुछ लिखा। मालूम तो सबको हो ही जायगा, फिर पहले से ही ढोल बजाने से क्या लाभ?

रात का समय था। मैं टहलता हुआ उसके बँगले की ओर गया। कुछ देर तक इधर-उधर टहलता रहा। इतने ही में कुमुद का शब्द सुनाई दिया। वह अपने मोटर-ड्राइवर को बुला रही थी। जब वह वहाँ आ गया तो कुमुद ने कहा—मोटर दस मिनट में यहाँ ले आ।

"बहुत अच्छा, हुज़ूर!"—कह कर ड्राइवर वहाँ से चला गया।

यह मेरे लिए बड़ी प्रसन्नता की बात थी। इससे अधिक मैं और क्या चाह सकता था? शायद वह मोटर स्वयं ही चलावे। फिर तो गहरे हैं। उसकी मोटर से दब कर मरने से सीधा स्वर्ग पहुँचूँगा। मैंने शीघ्र ही काग़ज़ पर एक पेन्सिल से यह लिखा—

"कुमुद,

तुम्हारे लिए मर रहा हूँ।

तुम जानती हो, कौन?"

और उस पर्चे को पिनों से अपने कोट के ऊपर लगा लिया, ताकि फ़ौरन ही उसकी दृष्टि उस पर पड़ जाय।

वे दस मिनट दस वर्ष के तुल्य व्यतीत हुए! अन्त में उसकी मोटर का शब्द सुनाई दिया। मैं सड़क पर उसके द्वार से एक फ़र्लाङ्ग की दूरी पर खड़ा हो गया। ज्योंही मोटर निकट आई, मैं कूद कर उसके सामने आ गया। मुझे धक्का तो लगा, परन्तु दुर्भाग्य कि ड्राइवर मोटर चला रहा था, उसने फ़ौरन ही मोटर रोक ली। मैं चित हुआ पड़ा था, परन्तु मुझे स्वयं प्रतीत हो रहा था कि मुझे चोट तक न आई थी। परन्तु यह दिखाना मूर्खता थी, अतः मैं बेहोशी का बहाना करके पड़ा रहा। सोचा था कि वह आकर देखेगी तो। परन्तु वहाँ कुछ और ही बात हुई। वह नहीं बोली, कोई और ही बोला—शफ़ी क्या बात है?

मालूम पड़ा कि वह उसके पिता का शब्द था। मुझे बड़ी निराशा हुई। इतने ही में शफ़ी नीचे आकर मुझे देख कर बोला—एक आदमी धक्के से गिर पड़ा है, हुज़ूर!

"चोट तो नहीं लगी?"

उसने मुझे घुमा-फिरा कर देखा और कहा—चोट तो नहीं लगी, बेहोश दिखाई देता है।

आख़िर वह बोली—फिर उसे मोटर में रख कर अस्पताल छोड़ते चलिए।

उसके पिता बोले—नहीं, कुमुद, रजिस्ट्रार के यहाँ समय पर पहुँचना है। और फिर मैं तुम्हें तुम्हारे विवाह के पहले यह दृश्य देखने देना नहीं चाहता। शफ़ी, जल्दी से किसी नौकर से एम्बूलेन्स के लिए फ़ोन करा दो।

यह क्या? कुमुद का विवाह? रजिस्ट्रार के दफ़्तर में? और मैं यहाँ मरने के लिए पड़ा हूँ! मैं यह सोच ही रहा था कि दो नौकर वहाँ आ गए और उन्होंने मुझे उठा कर सड़क के किनारे इस प्रकार पटक दिया कि मानो मैं लकड़ी का एक लट्ठा था। कुमुद की मोटर चली गई। मैंने हाथ-पैर हिलाए, परन्तु वे नौकर यमदूत की भाँति खड़े हुए एम्बूलेन्स की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने मुझे उठते हुए देख कर कहा—बैठे रहो, अभी अस्पताल चलना है।

"किसलिए?"—मैंने पूछा।

"तुम्हारा इलाज होगा।"

"लेकिन मुझे चोट नहीं लगी। मैं अस्पताल नहीं जाना चाहता।"

"साहब का हुक्म है।"

"साहब की ऐसी-तैसी।"—कह कर मैं उठने लगा।

मुझे तो कुमुद का पीछा करने की जल्दी पड़ रही थी। परन्तु उन कम्बख़्तों ने मुझे पकड़ कर पृथ्वी पर लिटाए रक्खा। मैंने बहुत ही प्रार्थना की, परन्तु वे कब सुनते थे। एम्बूलेन्स आ गई और अन्त में उन्होंने मुझे पकड़ कर उसमें डाल ही दिया और आप भी पास ही बैठ गए। कैसी आफ़त। देखते-देखते वह दूसरे की हुई जा रही है और मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं उन दोनों नौकरों को गालियाँ देने लगा। उनमें से एक ने एक चपत मार कर कहा—चुपचाप पड़े रहो, नहीं तो खोपड़ी तोड़ दूँगा।

क्या करता, चुपचाप पड़ा रहा। उन्होंने उसी प्रकार मुझे कैज़ुअल्टी डिपार्टमेण्ट में जा पटका। जब वे

चले गए तो मैंने पास खड़ी हुई नर्स से कहा—मुझे यहाँ से जाने दो।

"तो आए ही किसलिए थे?"

"मैं राज़ी से नहीं आया।"

वह हँसने लगी। मैंने क्रोधित होकर कहा—तुम हँसती हो और मेरे हाथ से मेरी कुमुद छीनी जा रही है?

वह हँस कर बोली—यह डॉक्टर से कहना।

सब अन्धे हैं। किसी को यह नहीं दीखता कि मुझे चोट नहीं लगी। पर समझाऊँ किस तरह, कोई समझने वाला हो तब न! आख़िर मुझसे न रहा गया। मैं उठा। नर्स चिल्ला पड़ी—"उठो मत!" मैंने उसकी ओर ध्यान न दिया और बाहर की ओर भागा। पीछे से नौकर लोग 'पागल है, पागल है' कह कर भागे, परन्तु उनसे मैं बहुत आगे आ चुका था। वहाँ से भाग कर मैंने रजिस्ट्रार के दफ़्तर के सामने ही दम लिया। देखता हूँ तो डॉक्टर वहाँ खड़ा है। मैंने चिल्ला कर कहा—"डॉक्टर!"

उसने मुड़ कर देखा और भाग कर मेरे पास आया।

"अरे हरीश, मैं तुम्हें तलाश कर रहा था। मैं समझता था कि तुम कुमुद को अन्तिम बार देखने यहाँ आए होगे।"—उसने कहा।

"पहले यह बताओ कि वह कहाँ है?"

"वह तो अपने पति के साथ कलकत्ते सैर करने को चली गई।"

"कब?"

"अभी पन्द्रह मिनट पहले।"

"और विवाह में दस मिनट ही लगे?"

"सिविल-मैरिज में समय ही कितना लगता है।"

"वह भाग्यशाली कौन है?"

"वही नवयुवक है, जिसे कुमुद के साथ हमने कानपुर स्टेशन पर देखा था।"

मैं एक लम्बी आह भर कर वहीं बैठ गया। वह पूछने लगा—आख़िर, तुम कहाँ थे?

"अब इन बातों से क्या? सारा खेल समाप्त हो गया। मैं हारा और बुरी तरह से हारा।"

"यह देखो, एक पत्र और एक पार्सल तुम्हारे लिए आए हुए रक्खे थे, मैं तुम्हारे लिए तुम्हारे कमरे से यह सोच कर लेता आया कि शायद तुम यहाँ मिल जाओ।"

मैंने लपक कर पत्र खोला। वह कुमुद का था। हर्ष से मेरे आँसू निकल आए। चलते समय तो उसने याद कर लिया। मैंने काँपते हुए हाथों से पत्र पढ़ा—

"जले-भुने,

आज रात को मैं विवाह करके अपने पति के साथ कलकत्ते जा रही हूँ और शायद वहीं हम अपना घर बना लें।

तुमने मुझसे प्रेम किया है, उसके उपलक्ष में साथ के पार्सल में तुम्हें एक उपहार मिलेगा।

—कुमुद"

पत्र पढ़ कर मैं नाचने लगा। डॉक्टर ने पूछा—क्यों, कुमुद का है?

"लो पढ़ो, क्या लिखती है। मेरे लिए यही बहुत है।"

डॉक्टर ने पत्र को पढ़ कर कहा—पार्सल खोल कर तो देखो, उसमें क्या है।

"मैं इतना प्रसन्न हूँ कि पार्सल मुझसे न खुल सकेगा। तुम्हीं खोलो।"

डॉक्टर ने पार्सल खोला और हँस कर कहने लगा—वाह, क्या शानदार उपहार है!

मैंने पार्सल की ओर देखा, मेरी सारी प्रसन्नता पर पानी फिर गया। हाय रे, ज़ालिम! चलते समय भी ऐसा धोखा, ऐसी क्रूरता, ऐसी शरारत! उस पार्सल में मेरी उस रात वाली पेटी के दो टुकड़े रक्खे थे। मुझे दूना दुख हो रहा था; एक तो इस बात से कि उसे यह पता लग गया कि उस रात को मैं उसके घर में चोर की भाँति गया था, और दूसरे इस बात से कि उसने बदला लेने में कोई कसर न छोड़ी और हृदय में जो थोड़ी सी जान रही थी, उसे भी उसने पैरों से कुचल दिया।

जला-भुना! उसने ठीक ही लिखा था। या तो प्रेम का अन्त होता है विवाह या मृत्यु। परन्तु मुझे न तो वही मिली और न मृत्यु। न तो मैं सिका ही और न जल कर भस्म ही हुआ। हा, न जाने कब तक इस प्रकार जलते-भुनते हुए जीवन व्यतीत करना है। क्योंकि प्रेम के परिणामों में यह सब से दग्धकारी, सब से चुटीला और सब से पीड़ाजनक है।

वर्तमान मुस्लिम जगत

[एक डॉक्टर ऑफ़ लिट्रेचर]

(गताङ्क से आगे)

सुलेमान, अकबर

सोलहवीं शताब्दी में मुसलमानों के दो विशाल तथा समृद्ध राज्य स्थापित हुए। एक महाप्रतापी सुलेमान का और दूसरा, सम्राट अकबर का। सुलेमान का राज्य-विस्तार बग़दाद से वायना तक पहुँचा हुआ था। और मिसिर का उत्तरी भाग भी उसके अधिकार में था। उसकी नौ-सेना ने अलजियर्स को ले लिया था और वेनिस के जहाज़ी बेड़े को भी हरा चुकी थी। ऑस्ट्रिया से युद्ध करने में सुलेमान सदा फ़ान्स से सहायता लिया करता था। उससे पूर्व, सलीम सन् १५१० में, मिसिर को विजय करते समय वहाँ के नामधारी ख़लीफ़ों का अन्त करके स्वयं ख़लीफ़ा की पदवी धारण कर चुका था। इसलिए सुलेमान के समय में कई शताब्दियों के बाद इस्लाम-जगत में एक बार फिर राजनैतिक तथा धार्मिक शक्तियों का सम्मेलन हुआ। क़ुस्तुन्तुनिया के ख़लीफ़ों तथा आदि ख़लीफ़ों में अन्तर यह था कि अबूबकर और उमर की भाँति इनका जीवन सादा और धार्मिक नहीं था। ख़लीफ़ा की पदवी धारण करना उनकी अहम्मन्यता और शक्तिमत्ता प्रकट करता था, न कि धार्मिक सेवा के लिए उत्सुकता। मध्यकाल के सब शक्तिमान शासकों की यह अभिलाषा थी कि प्रजा के शरीर पर ही नहीं, वरन् हृदय और आत्मा पर भी शासन किया जावे। इसलिए वे राजनैतिक शक्ति से सन्तुष्ट न होकर हृदय-शासक बनने के लिए, धर्माचार्य बनने के बड़े अभिलाषी रहते थे। सलीम, सुलेमान, अलाउद्दीन, अकबर इन सब प्रतापशाली बादशाहों ने धर्माचार्य बनने का प्रयत्न किया था। लेकिन सोलहवीं सदी धर्माचार्यों का समय न था। तलवार के बल से चाहे लोगों से दण्डवत् करवा ली जाती थी, परन्तु इन शासकों को कोई श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखता था। फिर भी सुलेमान प्रतापशाली शासक था। उसके राज्य में शान्ति थी, मार्ग प्रायः निष्कण्टक थे और वाणिज्य-व्यापार होने लगा था। कला-कौशल की उन्नति की ओर भी उसका ध्यान था और उसकी सेना अत्यन्त सुसङ्गठित तथा सधी हुई थी। उन्नतिशील यूरोप के सामने अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए, तुर्कों को स्वयं उन्नत बनने की तथा चौकस रहने की ज़रूरत थी और सुलेमान इसको ख़ूब समझता था।

भारत में इस समय अकबर का राज्य था। वह सब धर्मों का आदर करता था। परन्तु अन्त समय में वह इस्लाम से विमुख सा हो गया था। तो भी प्रत्यक्ष में तो वह मुसलमान ही था। उसके समय में भारत पर मुसलमानी सभ्यता, मुसलमानी विचार तथा मुसलमानी धर्म का गहरा प्रभाव पड़ा। वास्तव में संस्कृतियों का विनिमय उसी समय होता है, जब शान्ति स्थापित हो चुकी हो और दो पृथक सभ्यताओं में सङ्घर्ष न हो। इस दृष्टि से देखा जाय तो जितनी सेवा इस्लाम की अकबर के द्वारा हुई, उतनी और किसी मुसलमान बादशाह के द्वारा नहीं हुई। उसके शासन-काल में हिन्दू लोग इस्लाम-धर्म को आदर की दृष्टि से देखने लगे थे। हिन्दू और मुसलमान सन्त दोनों धर्मों में सामञ्जस्य ढूँढ़ने लगे थे। अनेक अच्छे-अच्छे संस्कृत ग्रन्थों का फ़ारसी में अनुवाद करवाया गया था और सम्पूर्ण उत्तर भारत में फ़ारसी राज-भाषा बना दी गई थी। अकबर के राज-भवनों में, क़िलों में तथा नगरों में भी भारत तथा ईरान के कौशल का सम्मिश्रण था और उसकी मनोहर धार्मिक नीति ने क़ुरान को वास्तविक धार्मिक ग्रन्थ के रूप में हिन्दुओं के सामने उपस्थित किया था।

अकबर का राज्य सम्पूर्ण उत्तर भारत में और दक्षिण में नर्मदा तक फैला हुआ था। उसकी सेना सुसङ्गठित

और शासन सुव्यवस्थित था। उस समय वह संसार में सब से अधिक धनवान बादशाह माना जाता था। अबुलफ़ज़ल जैसे विद्वान, टोडरमल जैसे शासक, मानसिंह जैसे सेनापति, तुलसीदास जैसे सन्त कवि, तानसेन जैसे गायनाचार्य और अज़ीज़ कोका जैसे नीतिज्ञ उसके राज्य को अलंकृत करते थे। बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के घरानों से उसका विवाह-सम्बन्ध था और इस विशाल भारत में सिवाय महाराणा प्रताप के, सभी उसकी बङ्क भृकुटी को देख कर काँपा करते थे। उसकी शासन-व्यवस्था इतनी उत्तम थी कि वर्तमान ब्रिटिश शासन की रचना भी उसी ढङ्ग पर हुई है।

वाणिज्य-ह्रास, यूरोप का हस्तक्षेप

अकबर और सुलेमान के राज्य समृद्ध, सम्पन्न और सुव्यवस्थित थे। परन्तु ज्ञान-विकास में उनके समय में कोई विशेष उन्नति नहीं हुई थी। उनका बल, विलास और शासन, सब उसी ढङ्ग का था जैसा परम्परा से चला आता था। चन्द्रगुप्त मौर्य, जूलियस सीज़र, इख़न्यतेन आदि महान सम्राटों का जो ढङ्ग था वही सुलेमान और अकबर का था। यह ऐतिहासिक घटनाओं का चक्र था, जिसके कारण बल, वैभव; ह्रास की पुनरावृत्तियाँ हो रही थीं। लेकिन इसी समय यूरोप में घोर ज्ञान-विप्लव और अपूर्व जागृतियाँ हो रही थीं। धर्म, समाज और राजनीति के विषयों में अद्भुत विचारों की लहर उमड़ी हुई थी और बड़े प्रबल वेग से सबका रूपान्तर होता जाता था। कोलम्बस को अचानक अमेरिका का पता लग चुका था और वास्कोडेगामा भारत-तट पर पहुँच चुका था। इतना ही नहीं, यूरोपियन लोग सम्पूर्ण पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर चुके थे। देश-देशान्तरों के भ्रमण से उनका ज्ञान-क्षेत्र विस्तृत हो गया था और अनुभव बढ़ गया था। छापे के कारण साहित्य की प्रबल गति से उन्नति हो रही थी और यात्रियों के भ्रमण-वृत्तान्त अखिल महाद्वीप में बड़े चाव से पढ़े जाते थे। सारे संसार का व्यापार इस समय यूरोप के हाथ में आ गया था, जिससे आश्चर्यकारी लाभ होता जाता था। पोर्चुगाल के नाविक-लुटेरे अमेरिका से विपुल सुवर्ण-राशियाँ लूट-लूट कर अपने देश में ला रहे थे, जिससे यूरोप मालामाल होता जाता था। ईरान से चीन तक के समुद्र-तट के प्रधान बन्दरगाह यूरोपीय-वणिकों के अधिकार में थे या कम से कम वहाँ उनकी गति थी। राजा और प्रजा दोनों उन्नति के लिए लालायित थे। विदेशों से व्यापार करने के लिए यूरोपियन वणिकों के अपने-अपने सम्राटों की आज्ञा तथा सहायता से कई सङ्घ बन रहे थे। संसार-विजय के लिए यूरोपियन जातियों में पारस्परिक सङ्घर्ष शुरू हो गया था और उनका हौसला इतना बढ़ गया था कि सन् १५०२ में पोप एलेक्ज़ेण्डर ने सम्पूर्ण संसार को स्पेन और पोर्चुगाल में आधा-आधा विभक्त कर दिया था और आज्ञा दे दी थी कि दोनों देश अपने-अपने हिस्से में अपना पराक्रम दिखला सकते हैं।

सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ तक एशिया का व्यापार अधिकांशतः अरब सौदागरों के हाथ में था। अरबी मुसलमान, अफ़्रिका, भारत, मलक्का और चीन आदि स्थानों से माल ख़रीद-ख़रीद कर लाल सागर तथा ईरान की खाड़ी के रास्ते से मिसिर, तुर्की तथा ईरान में पहुँचाया करते थे और वहाँ से फिर वह माल उस समय के समृद्ध व्यापारिक केन्द्र वेनिस में पहुँचा करता था। चीन और तातार देश का माल समरक़न्द के मार्ग से ईरान और तुर्की में होता हुआ, यूरोप पहुँचता था और उत्तर भारत का माल बमयिन तथा तरमेज़ के मार्ग से सुलताने, तबरेज़ अलीप्पो, ब्रूस और क़ुस्तुन्तुनिया आदि प्रसिद्ध नगरों में जाता था। जल-मार्ग से जाने वाला माल चीन तथा मसाले के टापुओं से लद कर मलक्का होता हुआ कालीकट तथा केम्बे को पहुँचाया जाता था। वहाँ से फिर दो मार्ग थे। एक मार्ग था, ईरान की खाड़ी में होकर, जहाँ बसरा या ओरमुज़ जहाज़ों से माल उतार दिया जाता था और वहाँ से या तो सुलताने होकर या बग़दाद, दमिश्क होकर रूम-सागर के प्रसिद्ध बन्दरगाह बेरू, हलेब और त्रिपोली में पहुँचता था। यहाँ यूरोप के बनिए, विशेष-कर वेनिस के सौदागर इसको ख़रीदने के लिए तैयार रहते थे और अपने जहाज़ों में भर-भर कर यूरोप में ले जाया करते थे। दूसरा मार्ग लिकत या केम्बे से सीधा अदन को जाता था। वहाँ से माल या तो दक्षिण की ओर अफ़्रिका के पूर्वी तट पर पहुँचाया जाता था या उत्तर की ओर जद्दा के मार्ग से, मक्का, दमिश्क या तोर-

स्यूयेन, एलेक्ज़ेण्ड्रिया आदि बन्दरगाहों पर पहुँचता था। उस समय समुद्र पर अरब लोगों की प्रतिद्वन्द्विता करने वाला कोई न था और भारत से क़ुस्तुन्तुनिया तक मुसलमानों का आधिपत्य होने के कारण अन्य धर्मावलम्बी सौदागर समरक़न्द, काबुल और तबरेज़ के स्थल-मार्ग से व्यापार करने का साहस नहीं कर सकते थे। इस विस्तृत तथा विशाल वाणिज्य-क्षेत्र से कितना लाभ होता होगा, इसका अनुमान यों किया जा सकता है कि पोर्चुगीज़ लोगों को एक रुपए पर साठ रुपए मिला करते थे। इस वाणिज्य से काबुल और क़ुस्तुन्तुनिया के मध्य का देश दिन-दिन अधिकाधिक समृद्धिशाली होता जाता था। एशिया और यूरोप दोनों महाद्वीपों की लक्ष्मी खिंच-खिंच कर यहाँ इकट्ठी होती जाती थी। इसलिए सोलहवीं शताब्दी फिर इस्लाम के इतिहास में वैसा ही सुवर्ण-युग थी, जैसी आठवीं या नवीं शताब्दी। इस समय ब्रह्मदेश से मोरक्को तक मुसलमानों का राज्य था। विपुल वाणिज्य से समृद्धि बढ़ती जाती थी, मार्ग निष्कण्टक थे, देशों में शान्ति थी और पृथ्वी-मण्डल का एक बड़ा भू-भाग क़ुरान के आगे अपना मस्तक झुकाता था।

इन शक्तिशाली सम्राटों तथा सम्पत्तिशाली सौदागरों को क्या पता था कि काल-चक्र घूमेगा और सौ वर्ष के अन्दर ही इस्लाम की शक्ति क्षीण हो जाएगी? सत्रहवीं शताब्दी में इस्लामी साम्राज्य डगमगाने लगे और अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में बिना शोर किए ही वे चुपके से गिरने लगे। सामुद्रिक व्यापार सब यूरोप के हाथ में पहुँच गया। स्थल-मार्गों का महत्व कम हो गया। मुस्लिम-संसार के ऊपर निर्बलता, निर्धनता, अराजकता, अस्थिरता और विक्षिप्तता के बादल मँडराने लगे।

यूरोप की नीति

मुसलमानों के हाथ में विपुल लाभकारी व्यापार यूरोप को बहुत अखरता था। वहाँ के व्यापारी चाहते थे कि सम्पूर्ण लाभ उन्हीं को मिले और कोई उसमें हिस्सा न बँटावे। राजा और प्रजा दोनों इस प्रयत्न पर तुल गए कि भारतवर्ष तक पहुँचने के लिए ऐसा समुद्री मार्ग ढूँढ़ा जाए कि मुसलमानों से व्यापार में कोई वास्ता ही न रहे और चीन, मसाले के टापू तथा भारतवर्ष के साथ यूरोप सीधा व्यापार-सम्बन्ध स्थापित कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कोलम्बस पश्चिम की ओर से अर्द्ध भू-भाग की प्रदक्षिणा करके भारत पहुँचने की आशा से रवाना हुआ, परन्तु भारत की जगह उसको एक नया ही संसार अमेरिका मिल गया। इसके ५-६ वर्ष बाद, सन् १४९८ ई० में वासकोडेगामा अफ़्रिका के किनारे-किनारे होता हुआ गुडहोप नामक अन्तरीप के मार्ग से मलाबार आ पहुँचा। बस यही अरब के व्यापार के अधःपतन का श्रीगणेश था। अरब लोगों ने अपने वाणिज्य की रक्षा के लिए ख़ूब ख़ून बहाया। परन्तु इस समय यूरोप का भौगोलिक ज्ञान, नौका-ज्ञान, सैनिक सङ्गठन और देशान्तरों का अनुभव ख़ूब बढ़ गया था। फलतः उसके आगे अरब लोग नहीं टिक सके। शुरू में इन्होंने वास्कोडेगामा को कुछ दिन गिरफ़्तार रक्खा और वह बड़ी युक्ति से बच कर किसी प्रकार अपने देश पहुँचा। परन्तु दो वर्ष बाद ही उसने भयङ्कर बदला लिया। एक जहाज़ी बेड़ा लेकर वह फिर आया। दो-तीन हज़ार अरबों को पकड़ कर उनके नाक-कान काटे और लाठियों से उनके दाँत तुड़वाए। फिर उनको एक जहाज़ में भर कर समुद्र में छोड़ दिया और जहाज़ में आग लगा दी। ऐसी नृशंस घटनाओं की आवृत्तियाँ कई बार हुईं और अरब लोग भी धीरे-धीरे निर्बल होते गए। उनका नौका-ज्ञान इतना उन्नत नहीं था कि वे इन लोगों के सामने ठहर सकते। मिसिर के सुलतान ने जब व्यापार के अभाव से अपने देश को कङ्गाल होते देखा, तो इस बात का प्रयत्न किया कि पोर्चुगीज़ लोगों का आधिपत्य अरब-सागर पर न जमने पावे, परन्तु उसका प्रयत्न भी सफल न हुआ। यदि उसको क्षणिक सफलता भी प्राप्त हो जाती, तो क्या हो सकता था? उन्नत ज्ञान और उन्नत सङ्गठन की विजय तो अन्त में होती ही। सन् १६०० के लगभग अदन से विज़गापट्टम और कलकत्ते से सिङ्गापुर तक का समुद्र-तट पोर्चुगीज़ लोगों के अधिकार में हो चुका था। लङ्का, सुमात्रा, जावा, बोरनियो और सेलेबीज़ आदि टापुओं के साथ भी वे व्यापार करते थे और उधर केण्टेन (दक्षिणी चीन) तक उनके जहाज़ पहुँचते थे। अफ़्रिका के पूर्वी, पश्चिमी तथा दक्षिणी तट पर भी उनका काफ़ी प्रभाव था।

इस प्रकार सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में एशिया और अफ़्रिका का व्यापार पोर्चुगीज़ लोगों के हाथ में

जा चुका था। बाद में डच, फ़्रान्सीसी, और अङ्गरेज़ इस अखाड़े में उतरे, परन्तु इससे हमें यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं है। मुसलमानों के हाथ से व्यापार निकल गया, मुस्लिम जगत को गहरा आर्थिक धक्का लगा और फिर वह व्यापार मुसलमानों के हाथ में नहीं आया, बस इतना ही हमको यहाँ बतलाना था।

इस आर्थिक अधःपतन के साथ मुसलमानों की राजनैतिक शक्ति भी सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ से ही क्षीण होने लग गई थी।

औरङ्गज़ेब

भारत में औरङ्गज़ेब ने अपनी धार्मिक कट्टरता और राजनैतिक अदूरदर्शिता के कारण हिन्दुओं को अपना शत्रु बना लिया। राजपूत लोग जो पहिले मुग़ल साम्राज्य के सबल स्तम्भ थे, अब घोर शत्रु बन गए। मारवाड़ और मेवाड़ में अपूर्व जागृति हो उठी और इन दो छोटी रियासतों ने कई वर्षों तक साम्राज्य की सेनाओं का वीरतापूर्वक सामना किया। औरङ्गज़ेब के पुत्र अकबर को अपनी ओर फोड़ कर शाही घराने में कलह उत्पन्न करा दिया। उत्तर में सिक्ख लोग सैनिक रूप में सङ्गठित होकर लूट-मार करने लगे और भरतपुर के आस-पास के जाट लोग भी बाग़ी बन गए। मराठों के दमन करने में औरङ्गज़ेब ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर साम्राज्य को निर्बल कर दिया। सेना, कोष, उच्चाधिकारी, योग्य प्रबन्धक, सब दक्षिण युद्ध में स्वाहा हो गए और सन् १७०७ में औरङ्गज़ेब भी दक्षिण में ही मर गया। बस उसके मरते ही राज्य में अशान्ति और अराजकता फैल गई। प्रान्तीय शासकों ने दिल्ली के बादशाहों की आज्ञा मानना छोड़ दिया। औरङ्गज़ेब के पुत्रों में राज्यसिंहासन के लिए पारस्परिक युद्ध होने लगे और टेनिस के गेंद की भाँति राजशक्ति कभी इसके और कभी उसके हाथ में पहुँचने लगी। नाम-मात्र के बादशाह मन्त्रियों के हाथ की कठपुतलियाँ बन गए और दो-दो, चार-चार मास में सिंहासन एक के अधिकार से दूसरे के अधिकार में जाने लगा। सन् १७३९ में नादिरशाह के हमले का ऐसा भारी धक्का लगा कि साम्राज्य-रूपी जीर्ण भवन एकदम भहरा पड़ा। कई प्रान्त स्वतन्त्र हो गए और महान अकबर के उत्तराधिकारियों के हाथ में दिल्ली के आस-पास का छोटा सा राज्य रह गया। दस-बारह वर्ष बाद मराठों ने घर दबाया और सन् १७६० के लगभग सम्पूर्ण भारत में मराठे सब से अधिक प्रबल हो गए। सारा देश उनके अधीन हो गया।

मुग़ल राज्य का अधःपतन

मुग़ल-साम्राज्य की शक्तिमत्ता के समय में अफ़ग़ानिस्तान और बलूचिस्तान मुग़लों के राज्य में सम्मिलित थे। काबुल का प्रान्त बाबर के समय से मुग़लों के हाथ में था और क़न्धार के लिए ईरान तथा दिल्ली के सम्राटों में समय-समय पर युद्ध हुआ करते थे। यह नगर व्यापारिक दृष्टि से बड़े महत्व का था और औरङ्गज़ेब के समय में ईरान के हाथ में था, हिरात भी ईरान के राज्य में शामिल था। क़न्धार और हिरात के निवासी सदा ईरान के शासन से असन्तुष्ट रहते थे और समय-समय पर वहाँ बलवे हुआ करते थे। इस प्रकार अफ़ग़ानिस्तान काबुल, क़न्धार तथा हिरात तीन भागों में विभक्त था। बलख़ और बलख़शाँ के प्रदेश पर मुग़ल सम्राटों की आँख सदा लगी रहती थी, पर उन पर उनका अधिकार कभी नहीं होने पाया। १८ वीं शताब्दी के आरम्भ तक अफ़ग़ानिस्तान एक देश नहीं माना जाता था और वहाँ के निवासियों में यह भाव नहीं था कि वे एक देश के निवासी हैं। जैसे राजपूत लोग राठोर, कछवाहा, चौहान और सिसोदिया आदि जातियों में विभक्त हैं, उसी प्रकार अफ़ग़ान लोग भी, दुर्रानी, ग़िलज़ई और काबुली आदि जातियों में बँटे हुए थे और अपने को 'अफ़ग़ान' नहीं कहते थे।

मुग़ल-साम्राज्य के अधःपतन के बाद जब काबुल का शासक स्वतन्त्र हो गया तो भारत के सीमा-प्रान्त में एक अपूर्व खलबली उत्पन्न हो गई। उधर ईरान के साम्राज्य की बागडोर भी किसी योग्य शासक के हाथ में न थी, इसलिए क़न्धार और हिरात में भी उत्पात होने आरम्भ हो गए। इस गड़बड़ के समय एक प्रबल सैनिक ने सम्पूर्ण अफ़ग़ानिस्तान को अधिकृत करके ईरान के पतनोन्मुख साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया और उसे जीत कर वहाँ के शाही घराने को एक कोने में रख दिया। इस समय अफ़ग़ानिस्तान और ईरान दोनों अफ़ग़ान बादशाह के अधिकार में थे और कुछ समय के लिए तो सिन्ध नदी से दजला नदी तक अफ़ग़ान-सत्ता का आधिपत्य था। परन्तु इस विस्तृत
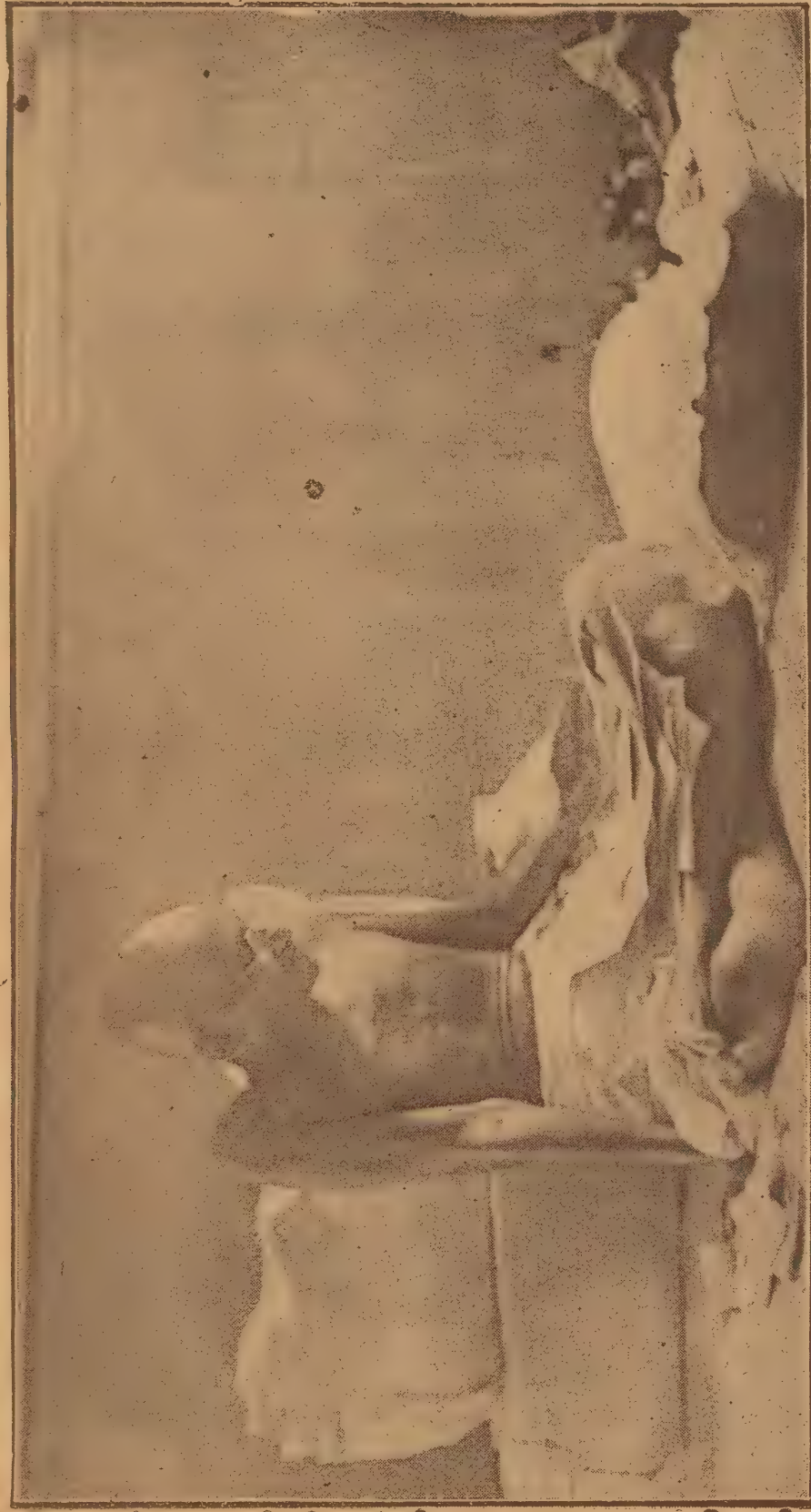
बम्बई में महात्मा गाँधी के निवास-स्थान (गामदेवी) में लिया हुआ आपका चित्र। इस चित्र में पाठक देखेंगे महात्मा जी अपने नाम के आए हुए पत्रों को पढ़ रहे हैं। महात्मा जी का यह चित्र १०वीं जून को लिया गया है।

बम्बई कॉङ्ग्रेस के उन नेताओं का चित्र, जिनके नेतृत्व में हाल ही में महात्मा गाँधी के दर्शनार्थ प्रभात-फेरी का एक बृहत् जुलूस निकला था।
(बाँईं ओर से) श्री० नगीनदास मास्टर, श्री० बी० सम्बामूर्ति, श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय और श्री० के० एफ़० नॉरिमन।

विगत|मङ्गलवार को बम्बई में महात्मा गाँधी के दर्शनार्थ निकलने वाला "अखिल भील-भारत प्रभात-फेरी-सङ्घ" के वृहत् जुलूस का दृश्य।

बम्बई का वह दृश्य, जिसमें राष्ट्रपति सरदार पटेल ने कॉङ्ग्रेस-भवन पर अपने हाथ से हाल ही में राष्ट्रीय झण्डा फहराया था। इस चित्र में बाँई ओर से पाठक सरदार पटेल, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री० जैरामदास दौलतराम तथा सीमा-प्रान्त के 'गाँधी' ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ आदि राष्ट्रीय नेताओं को उपस्थित देखेंगे।

बम्बई की हाल हीं में होने वाली वृहत् सभा का दृश्य, जब कि वहाँ राष्ट्रीय नेता एकत्र हुए थे—पाठक इस चित्र में बम्बई के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता श्री० के० एफ़० नॉरिमन को भाषण देते हुए देखेंगे।

मालाबार के सुप्रसिद्ध मोपला-लीडर—जनाब अब्दुल रहमान साहब सम्पादक "अल्लमीन" के बम्बई में स्वागत का दृश्य ।
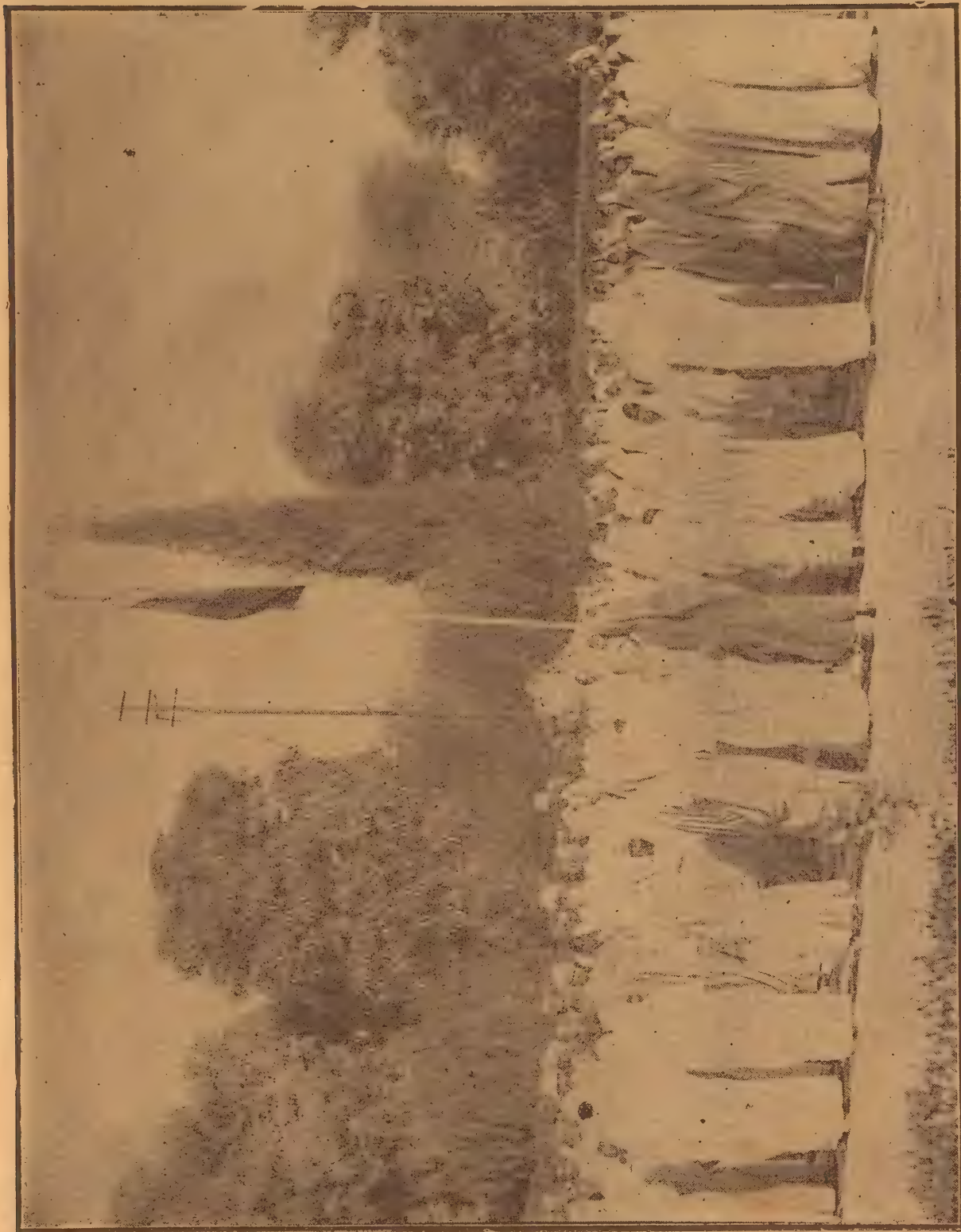
जालन्धर के सुप्रसिद्ध कन्या महाविद्यालय में हाल ही में सीमा-प्रान्त के गाँधी—ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ द्वारा राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया था।
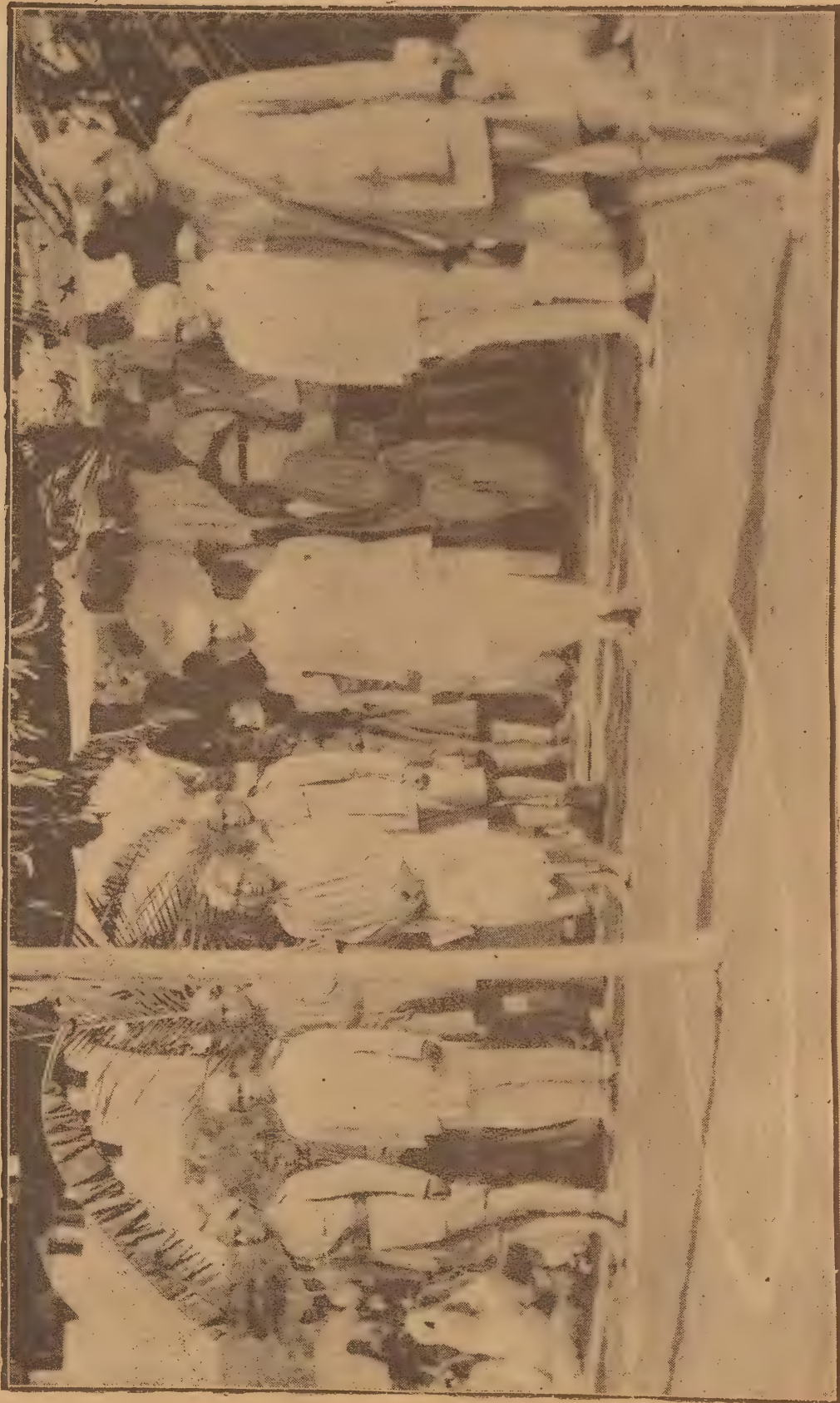
बम्बई के हिन्दोस्तानी सेवा-दल ऑफ़िसर ट्रेनिङ्ग कैम्प में झण्डाभिवादन का दृश्य। पाठक इस चित्र में श्री० सम्बामूर्ति, पं० जवाहरलाल नेहरू तथा डॉक्टर हार्डिकर आदि सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय नेताओं को उपस्थित देखेंगे।

साम्राज्य की नींव एक प्रबल तलवार पर रक्खी हुई थी। शासन की उत्तमता या प्रजाहित की चिन्ता शासक को नहीं थी। इसलिए यह विशाल साम्राज्य अस्थिर था।

अफ़ग़ानिस्तान

कुछ ही वर्ष बाद अफ़ग़ान साम्राज्य डगमगाने लगा। ईरान के नाम-शेष बादशाह का एक नौकर नादिरशाह अपने सैनिक बल और नेतृत्व के प्रभाव से बलशाली बन कर स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में लगा। ईरान को जीत कर उसने अफ़ग़ानिस्तान को भी अपने अधिकार में किया और फिर १७३९ में उसने दिल्ली पर आक्रमण किया। वहाँ से विपुल सम्पत्ति के अतिरिक्त विख्यात तख़्ते-ताऊस (मयूर सिंहासन) अपने देश में ले गया। नादिरशाह के समय में ईरान का राज्य ईसफ़ से दिल्ली तक फैल गया, परन्तु यह विस्तृत राज्य भी वैयक्तिक बल और पौरुष पर टिका हुआ था। नादिरशाह अपनी क्रूरता और धन-लिप्सा के कारण राज्य में ही नहीं, सैनिकों में भी अत्यन्त अप्रिय हो चला था, जिसके परिणाम-स्वरूप अन्त में एक सिपाही ने उसका वध कर डाला। उसके मरने के बाद उसके साम्राज्य की वही दशा हो गई, जो तैमूर और औरङ्गज़ेब के साम्राज्यों की हुई थी। अब फिर साम्राज्य-स्थापना के लिए अफ़ग़ानिस्तान की बारी आई। अहमदशाह अब्दाली ने अफ़ग़ानिस्तान और ईरान के अधिकांश पूर्वी भाग पर अधिकार जमा लिया। सन् १७६० से पहले ही मराठे पञ्जाब को अपने राज्य में मिला चुके थे और दिल्ली पर भी अपना आधिपत्य जमा लिया था। अहमदशाह अब्दाली पञ्जाब को अफ़ग़ानिस्तान का एक भाग समझता था, इसलिए उसने सन् १७६१ में भारत पर चढ़ाई कर दी। पानीपत की समर-भूमि में घमासान युद्ध हुआ, जिसमें मराठे हार गए। फलतः अफ़ग़ान राज्य दिल्ली से ईरान तक फैल गया। परन्तु यह क्षणिक ऐश्वर्य था, वह अधिक दिनों तक नहीं ठहर सका, जो अहमदशाह की बुद्धि तथा बाहुबल पर टिका हुआ था। उसकी मृत्यु के बाद ज़मानशाह क़ाबुल की गद्दी पर बैठा, पर वह इस विस्तृत राज्य को अपने अधिकार में नहीं रख सका। पूर्व और पश्चिम दोनों तरफ़ से राज्य सिकुड़ने लगा और उसकी मृत्यु के बाद अफ़ग़ानिस्तान में एक प्रकार की अराजकता फैल गई।

घोर पतन

इस्लाम के इतिहास में १८वीं शताब्दी अराजकता, अधःपतन, क्षीणता और दुर्बलता का युग है। इस समय चीन से लेकर मोरक्को तक मुसलमानों की कहीं घनी और कहीं कम आबादी थी, परन्तु तुर्की के सिवा और कहीं का मुसलमान शासक यथेष्ट शक्तिशाली नहीं था। चीन में मुसलमानों की आबादी बहुत कम थी और वे सब चीन सरकार की प्रजा थे। पूर्वी द्वीप-समूह के हिन्दू शीघ्र गति से इस्लाम-धर्म स्वीकार करते जाते थे, परन्तु वहाँ भी राजसत्ता मुसलमानों के हाथ में नहीं थी जिस समय समुद्र का व्यापार अरबी मुसलमानों के हाथ में था, उस समय मुसलमान सम्पन्न थे। परन्तु १८वीं शताब्दी में सारा व्यापार यूरोपीय सौदागरों ने दबा लिया था, इसलिए मुसलमानों की आर्थिक स्थिति भी बिगड़ती जाती थी। भारतवर्ष में मुसलमानों का साम्राज्य १७३९ के पश्चात् ही नष्ट हो चुका था। दिल्ली में वही राजप्रासाद और 'दीवाने आम' तथा 'दीवाने ख़ास' मौजूद थे, परन्तु महान अकबर के वंशज अब केवल नामधारी बादशाह थे। दिल्ली का बादशाह कुछ दिन अङ्गरेज़ों की कम्पनी का पेन्शनख़्वाह रहा। अन्त में अब्दुल क़ादिर रोहिला ने उसको अन्धा कर डाला। तदनन्तर उसने मराठों की शरण ली और भारतीय मुग़ल सम्राटों का बल-वैभव सदा के लिए संसार से विदा हो गया। जब दिल्ली पर अङ्गरेज़ों का दख़ल हो गया, तो नामधारी बादशाहों के हाथ से रही-सही शक्ति भी छीन ली गई और उनका अधिकार शाही महलों की चहारदीवारी के अन्दर सङ्कुचित कर दिया गया। सन् १८५७ के विद्रोह में मुग़ल-वंश का अन्तिम सम्राट बन्दी बना कर ब्रह्मदेश भेज दिया गया और उसके दो पुत्रों को एक गोरे सिपाही ने गोली से मार डाला।

भारत

मुग़ल साम्राज्य का पतन होने पर प्रान्तों के कई मुसलमान शासकों ने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिए थे, परन्तु वे सभी मुग़ल-वैभव के भग्नावशेष मात्र थे और उदीयमान यूरोपीय शक्ति का विरोध करने की शक्ति

किसी में भी नहीं थी। अवध के नवाब वज़ीर सदा भोग-विलास में डूबे रहते थे और दिन-प्रतिदिन अङ्गरेज़ी कम्पनी के अधिकाधिक अधीन होते जाते थे। बङ्गाल के नवाब को अङ्गरेज़ प्लासी की लड़ाई में हरा चुके थे और उसकी गद्दी पर मीर जाफ़र और मीर क़ासिम आदि नवाब जो नाम-मात्र को बिठाए गए थे, वे कम्पनी के अधिकारियों के हाथ की कठपुतलियाँ थे। दक्षिण में निज़ाम और हैदरअली अवश्य प्रबल शासक थे, परन्तु उनका शासन भी प्राचीन ढङ्ग का था और उनकी सेना अङ्गरेज़ कम्पनी की सङ्गठित सेना के सामने सफलतापूर्वक टिकने के लायक़ न थी। कर्नाटक का नवाब भी अङ्गरेज़ों के चङ्गुल में फँसा हुआ था। १८वीं शताब्दी के अन्त में मैसूर, कर्नाटक, बङ्गाल और दिल्ली में मुसलमानों की राजशक्ति निःशेष हो गई थी। निज़ाम ने अङ्गरेज़ों की अधीनता स्वीकार कर ली थी और अवध के नवाबों का अन्त होने में अब गिनती के दिन बाक़ी थे।

अफ़ग़ानिस्तान

अफ़ग़ानिस्तान में घोर अराजकता फैली हुई थी। कभी कोई बादशाह होता था और कभी कोई। अफ़ग़ानिस्तान पर एक तरफ़ से रूस का दाँत लगा हुआ था और दूसरी ओर महाराज रणजीतसिंह का। अङ्गरेज़ों को भी यही धोखा रहता था कि कहीं रूस अफ़ग़ानिस्तान को जीत कर या उससे मित्रता करके भारतवर्ष पर धावा न कर दे और पञ्जाब को विजय करके फिर अङ्गरेज़ी राज्य पर न आ धमके। घरेलू अराजकता और तीन प्रबल शत्रुओं के भय ने इस देश को क्षत-विक्षत कर रक्खा था। रक्तपात, अशान्ति और लूट-मार वहाँ दैनिक घटनाएँ थीं। ईरान की भी दशा कोई अच्छी न थी। विज्ञान और वाणिज्य की उन्नति तो दूर रही, वहाँ राज्य का सँभालना भी बादशाहों के लिए कठिन हो रहा था; न उत्तम प्रबन्ध था और न सबल सेना। इसलिए उत्तर में रूस, दक्षिण में अङ्गरेज़ और पश्चिम में तुर्क ईरान को हड़पने का यत्न कर रहे थे।

ईरान

१८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत के सभी मुख्य-मुख्य प्रान्त अङ्गरेज़ों ने अधिकृत कर लिए थे। इसलिए ईरान की खाड़ी का महत्व अङ्गरेज़ों की दृष्टि में ख़ूब बढ़ गया था। ईरान के बादशाहों से तो अङ्गरेज़ों को कोई अधिक भय नहीं था। परन्तु डर इस बात का था कि कहीं रूस उस पर क़ब्ज़ा करके अङ्गरेज़ों के भारतीय व्यापार तथा साम्राज्य को धक्का न पहुँचा दे। दूसरा भय अङ्गरेज़ों को अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह ज़माशाह से था। उस समय अङ्गरेज़ मराठों तथा टीपू सुलतान से युद्ध कर रहे थे। उसी समय यह अफ़वाहें भी सुनी जाती थीं कि ज़माशाह भारत पर आक्रमण करने वाला है। यदि ऐसा होता तो अङ्गरेज़ों की कठिनता बेतरह बढ़ जाती। इसलिए वे चाहते थे कि ज़माशाह का बल और उत्साह दूसरी ओर लगा कर क्षीण कर दिया जावे। इसी अभिप्राय से अङ्गरेज़ों ने ईरान के शाह के पास एक निपुण राजदूत भेजा और ईरानी दर्बार में अपना प्रभाव बढ़ाना आरम्भ किया। अङ्गरेज़ दूत के बहकाने से ईरान के शाह ने अफ़ग़ान राज्य पर आक्रमण किया, जिसका फल यह हुआ कि ज़माशाह भारत पर आक्रमण न कर सका और टीपू सुलतान तथा मराठों को अङ्गरेज़ बारी-बारी से हरा सके। उधर ईरान के शाह को अङ्गरेज़ों ने विपुल आर्थिक सहायता दी, जिसके कारण ज़माशाह ईरान को क्षति न पहुँचा सका। इसके बाद अङ्गरेज़ों का प्रभाव ईरान में दिन-दिन बढ़ने लगा। यहाँ तक कि १८वीं शताब्दी के आरम्भ में व्यापार, सेना, अन्तर्राष्ट्रीय नीति आदि शासन के मुख्य अङ्ग अधिकतर अङ्गरेज़ों के हाथ में आ गए।

तुर्की और मिसिर आदि

तुर्की के ख़लीफ़े अभी काफ़ी बलवान थे। ईरान से ऑस्ट्रिया तक तथा मिसिर में उनका राज्य था, परन्तु यूरोपीय राजनीति तथा देश-भक्ति के आगे उनका टिकना कठिन हो रहा था। ईराक़, अरब, सीरिया आदि देश मुसलमान होते हुए भी तुर्कों के शासन को पसन्द नहीं करते थे और नाम-मात्र को तुर्की साम्राज्य में शामिल थे। बलगेरिया और सरविया आदि बलकान रियासतों की आबादी अधिकांश ईसाई थी, तुर्की शासक उन पर अनेक प्रकार के अत्याचार करते थे। जब कभी राजा और प्रजा में सङ्घर्ष हो जाता था, तो हज़ारों ईसाइयों को बलपूर्वक मुसलमान ही नहीं, किन्तु गुलाम बना लिया जाता था। निरन्तर धार्मिक और राजनैतिक

अत्याचारों से पीड़ित होकर ये राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-प्राप्ति की चिन्ता में थे। जब कभी इन पर ख़लीफ़े अमानुषिक अत्याचार करते थे, तो इसकी चर्चा सारे यूरोप में फैल जाया करती थी। यूरोप के दम्भी ईसाई राष्ट्रों के लिए तुर्की साम्राज्य सदैव आँख की किरकिरी बना रहा है। व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से क़ुस्तुन्तुनिया और मिसिर आदि देश बड़े महत्व के हैं। इसलिए यूरोप के प्रबल राष्ट्र सदा इस बात का मौक़ा ढूँढ़ते रहते थे कि तुर्की से युद्ध करने का तथा उस पर अपना आतङ्क जमाने का उनको कोई अवसर मिले। इस विषय में उनको तुर्की साम्राज्य की ईसाई प्रजा से बहुत सहायता मिला करती थी। ईसाई हमेशा किसी न किसी अधिकार की प्राप्ति के लिए आन्दोलन किया करते थे और बात-बात पर रूस, ऑस्ट्रिया आदि देशों को सहायतार्थ पुकारा करते थे। इस समय यूरोपीय राष्ट्र दिन-दिन उन्नत होते जाते थे। राजनीति, विज्ञान, भूमि-विज्ञान, वाणिज्य आदि में उनका सामना करने की तुर्कों में क्षमता नहीं थी। इसके अतिरिक्त १९वीं शताब्दी में यूरोपीय देशों में एक दूसरा बल उत्पन्न होने लगा। यह था राष्ट्र-प्रेम। फ़्रान्स, स्पेन, जर्मनी, ऑस्ट्रिया, इटली, बलगेरिया आदि देशों में राष्ट्रीयता की एक अपूर्व लहर फैल गई और प्रत्येक देश अद्भुत रूप से सुसङ्गठित होकर संसार की राजनैतिक रङ्गशाला में अपना खेल दिखाने को आ खड़ा हुआ। राष्ट्रीय भावों की जागृति के बाद प्रत्येक देशवासी अपने राष्ट्र को ममता की दृष्टि से देखने लगा और उसकी रक्षा तथा सम्मान-वृद्धि में प्राणों की आहुति कर देना अपना सौभाग्य समझने लगा। निर्बल और क्षीयमाण तुर्की साम्राज्य इस नवीन बल, ज्ञान आदि उत्साह के आगे कब तक टिक सकता था। नेपोलियन और ज़ार अलेक्ज़ेण्डर भी तुर्की को हड़पना चाहते थे, परन्तु उनकी मृत्यु के साथ ही साथ उनके आक्रमण का भय जाता रहा। परन्तु राष्ट्र-भावों के उदय के बाद स्थिति का स्वरूप और का और हो गया। जो पहिले एक शासक की नीति हुआ करती थी वह अब प्रत्येक देशवासी की नीति होने लगी। शासक की नीति या बल का अन्त उसके देहान्त के साथ ही हो जाया करता था, परन्तु सम्पूर्ण राष्ट्र की नीति का अन्त नहीं हो सकता था।

तुर्की पर आक्रमण

१९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बालकन देशों के ईसाई लोगों ने तुर्की शासन के विरुद्ध घोर उत्पात आरम्भ कर दिया। ख़लीफ़े अनियन्त्रित शासक थे और अन्य धर्मावलम्बी प्रजा को वे अपना ग़ुलाम समझते थे। लोकमत और प्रजासत्ता की शक्ति को उनका उन्मत्त दिमाग़ समझ ही नहीं सकता था। जब ईसाइयों ने स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन आरम्भ किया, तो ख़लीफ़ों ने उनका दमन करना शुरू किया। स्वातन्त्र्याभिलाषा की व्यापक लहर से चिढ़ कर तुर्की सरकार ने बलगेरिया के निवासियों का क़त्लेआम आरम्भ किया। अपने सहधर्मियों के सहायतार्थ रूस ने इस संग्राम में हस्तक्षेप किया और बालकन रियासतों की ईसाई प्रजा के अनुकूल सन्धि करवा दी। इस सन्धि के अनुसार तुर्की राज्य की सीमा कुछ सिकुड़ गई और जिन देशों में ईसाइयों की आबादी बहुत घनी थी, वे तुर्की राज्य से निकल गए। इस सन्धि में रूस का प्रधान भाग देख कर इङ्गलैण्ड से न रहा गया। अङ्गरेज़ समझने लगे कि यदि क़ुस्तुन्तुनिया पर रूसियों का अधिकार जम गया तो महान अनिष्ट हो जायगा। अङ्गरेज़ों को सदा इस बात की चिन्ता रहती है कि तुर्की, मिसिर, अरब, ईरान, ईराक़ तथा अफ़ग़ानिस्तान में किसी यूरोपीय राष्ट्र का प्रभाव या अधिकार न बढ़ जावे। ये स्थान भारतवर्ष के मार्ग में हैं और इसमें किसी गोरी जाति की प्रभुता बढ़ने से युद्ध के समय दुष्परिणाम का अन्देशा रहता है। इसीलिए रूस और तुर्की में सन्धि होने ही पाई थी कि इङ्गलैण्ड भी इसमें हस्तक्षेप करने को आ धमका और छल-बल तथा कौशल के द्वारा साइप्रस का टापू अपने अधिकार में कर लिया। यहाँ अङ्गरेज़ों की सेना रहने लगी और तुर्की तथा रूस की तरफ़ से भय जाता रहा। इसी समय स्वेज़ नहर, अदन और ईरान की खाड़ी पर अङ्गरेज़ अपना क़ब्ज़ा कर चुके थे, जिससे उनके तीन उद्देश्य पूरे होते थे। प्रथम सारे एशिया का व्यापार उनके हाथ में आ गया था, दूसरे भारत का मार्ग निष्कण्टक हो गया था और तीसरे मुसलमान मुल्कों पर उनका अधिकार जम गया था।

सर्वाङ्गीन पतन

राजनीतिक शक्ति के क्षय के अतिरिक्त मुसलमानों के धर्म, समाज तथा संस्कृति का भी पतन हो जाता था। वह जोश, उत्साह और उमङ्ग, जो ख़लीफ़ा अबूबकर या हारूँरशीद के समय में दिखाई देते थे, अब मुस्लिम-संसार से विदा होते जाते थे। चारों ओर नैराश्य, निरुत्साह और पतन का साम्राज्य था। अब न वह बल था और न वैभव। सारसेनिक-काल की उन्नत संस्कृति, विलास और आडम्बर में परिवर्तित होकर विलीन होती जाती थी। शक्तिशाली सम्राटों और प्रान्तिक शासकों के निर्बल उत्तराधिकारी इधर-उधर कोनों में छिपे हुए और विलास में डूबे हुए अपने दिन बिता रहे थे। अरब लोगों की विद्या-पिपासा, ईरान का कला-कौशल, अफ़ग़ान सैनिकों की वीरता, भारत के मुसलमान सम्राटों का ऐश्वर्य और भव्य भवन-निर्माण तथा विश्व-विजय की कामना अब केवल कहानियों का विषय बन गई थी। समस्त मुस्लिम-जगत क्षत-विक्षत, क्षीण और अवकीर्ण हो चुका था। भारत के मुसलमान स्वामी-हीन और निराश्रय हो गए थे और मुग़लों के दिनों को याद कर-कर के आँसू बहाते थे। एक समय वह था कि प्रत्येक मुसलमान, ग़रीब हो या अमीर, देश में उन्नत मस्तक करके चल सकता था। ग़रीब से ग़रीब मुसलमान बालक सिपहसालार और वज़ीरआज़म या बख़्शी-ख़ास बनने का स्वप्न देख सकता था। अब वे दिन कहाँ थे? मुग़ल सम्राट कभी अङ्गरेज़ों की पेन्शन पर गुज़र करता था और कभी मराठों की शरण लेता था। मुसलमान सैनिकों के लिए मराठों की सेनाओं में भरती होकर, या अङ्गरेज़ी कम्पनी के ग़ुलाम बन कर अपने सहधर्मियों को पराजित करने के सिवाय और कोई पेशा ही नहीं था। उनके देखते-देखते बादशाहों के ताज छीने जा रहे थे और बड़े-बड़े नवाबों की आबरू मिट्टी में मिलाई जा रही थी। दिल्ली के शाही महलों पर मराठों का धावा और फिर अङ्गरेज़ों का क़ब्ज़ा, अवध की बेगमों से उनकी सम्पत्ति का हरण, प्रजा-प्रिय टीपू का वध, नवाबों के वस्त्र और आभूषणों का सरे बाज़ार नीलाम—ये ऐसे भारी वज्राघात थे, जिससे मुसलमानों के हृदय चूर-चूर हो चुके थे। ऐसी अवस्था में कला-कौशल की उन्नति और धर्म-प्रचार का किसको ख़्याल आ सकता था? अब न ताज, महल और बुलन्द दरवाज़े बनाने वालों चतुर शिल्पियों की माँग थी और न उन्हीं महलों को सजाने के लिए कुशल चित्रकारों की दरकार। आतिश, ज़ौक़ और ग़ालिब जैसे कुशल कवि जीवन-निर्वाह के लिए इधर-उधर मारे मारे फिरते थे। न मुसलमान गायकों को कोई पूछता था, न नर्तकों को। मुग़लों के वैभव-काल में अफ़ग़ानिस्तान, ईरान और ख़ुरासान के महत्वाकांक्षी कुशल सैनिक मुग़ल सेना में भरती होने आया करते थे और मिर्ज़ा ग़यासबेग़ तथा असद ख़ाँ की भाँति अत्यन्त उच्च पदों पर पहुँच जाया करते थे। मुसलमानों के लिए वह समय ऐसा था कि एक अकिञ्चन और गृहहीन मुसाफ़िर की पुत्री महारानी बन सकती थी। १८वीं शताब्दी में मुस्लिम-उन्नति का यह द्वार बन्द हो गया था। नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली तथा हैदरअली बलपूर्वक इस दरवाज़े को तोड़ कर अन्दर अवश्य घुसे, परन्तु वहाँ टिकने न पाए। १९वीं शताब्दी में तो वे दिन स्वप्न हो गए। ख़ैबर का दर्रा तैमूर, बाबर, नादिरशाह और अब्दाली के उत्पातों का स्मारक-मात्र रह गया। पहले सिक्खों ने और फिर अङ्गरेज़ों ने इस वैभव-मार्ग को शायद सदा के लिए बन्द कर दिया।

मुग़ल साम्राज्य के पतन का प्रभाव सम्पूर्ण मुस्लिम-संसार पर पड़ा। वास्तव में जैसे भारतवर्ष वर्तमान ब्रिटिश साम्राज्य की अनमोल निधि है और भारत पर राज्य करने के कारण ही इङ्गलिस्तान का मस्तक संसार में उन्नत है, वैसे ही उस समय भारतवर्ष मुसलमानों का सर्वस्व था। अकबर और औरङ्गज़ेब समस्त मुस्लिम-जगत के गौरव थे और भारतवर्ष था, मुस्लिम सैनिक और कलाविज्ञों के पौरुष तथा चातुर्य की प्रयोगशाला। इसलिए मुग़ल राज्य के पतन का भयानक शब्द स्पेन तक सुनाई दिया और सब मुसलमान सन्न रह गए। तुर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में था ही क्या? यूरोप के उदीयमान और बर्द्धमान बल-विज्ञान के भय से तुर्की साम्राज्य काँपने लग गया था और यूरोपियन राष्ट्र उसको यूरोप का मरीज़ कहने लगे थे।

१८वीं शताब्दी में मुस्लिम-जगत क्षीणता के गहन तल में पहुँच चुका था। जीवन और जागृति कहीं

दिखाई न देती थी। चारों ओर सुषुप्ति और पतन का साम्राज्य था। अरबी संस्कृति नष्ट हो गई थी। कहीं-कहीं धनवानों का वैभव दिखाई देता था, परन्तु न इसमें वह सौन्दर्य था और न वह प्रौढ़ता थी। यह सब ऊजड़ आडम्बर था। विद्या एक प्रकार से मर चुकी थी। हारूँ-रशीद, महमूद ग़ज़नवी और अकबर जैसे विद्या-प्रेमी सम्राट संसार से विदा हो चुके थे। और उन्हीं के साथ विलीन हो गए थे, सादी, अलेबरूनी और अबुल फ़ज़ल जैसे धुरन्धर विद्वान। दो-चार विश्वविद्यालय जो बच रहे थे, वे भी धनाभाव और लोगों की उपेक्षा के कारण दिन-दिन और भी बिगड़े जाते थे। अराजकता के कारण न निर्विघ्न खेती हो सकती थी और न नगरों में वाणिज्य-व्यापार हो सकता था।

धार्मिक जीवन की भी यही दशा थी। मुहम्मद का एकेश्वरवाद नाना प्रकार के अन्धविश्वासों से ढकता जाता था। सूफ़ी लोग एक प्रकार से वेदान्ती थे, जिनको न क़ुरान से प्रेम था और न बाइबिल से द्वेष। मुल्ला लोगों ने धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता के कारण इस्लाम धर्म को संसार में अप्रिय बना दिया था और साधारण लोगों ने उसमें भूत-प्रेत, पूजा तथा तन्त्र-मन्त्र घुसा दिए थे। मुस्लिम सन्तों की क़ब्रों की लोग पूजा करने लगे थे और उनकी दरगाहें तीर्थ-स्थान बन गई थीं। सूक्ष्म और निरीह 'अल्लाह' लोगों की समझ में नहीं आता था। शेख़ और ख़्वाजा की सहायता से लोग उस तक पहुँचने की आशा करते थे। क़ुरान की आयतों का मन्त्रों की भाँति उपयोग होने लगा था। मद्यपान और अफ़ीम खाना ख़ूब प्रचलित था और मुसलमान वेश्याओं की संख्या दिन-दिन बढ़ती जाती थी। मक्का और मदीना में भी शुद्ध इस्लाम दुर्लभ हो गया था और हज करना ठगी तथा मक्कारी का साधन बनता जाता था। सारांश यह है कि इस समय का इस्लाम निर्जीव था।

(क्रमशः)

अज्ञात

[श्री० हज़ारीलाल जी वर्मा, 'रञ्जन']

जिस समय ऊपर से आकाश
स्वर्ग का अनुपम दिव्यालोक
विश्व पर फैलाए था; और
हृदय थे विगत सकल भव-शोक।

सलिल-गत शशि का मृदु प्रतिबिम्ब
कुमुद-कलियों के हासोल्लास—
युक्त मुख-चुम्बन को अज्ञात
छोड़ कर उतरा था आकास।

तुहिन-कण के शिशु-वृन्द अनेक
वही पथ पकड़े अनुकरणीय—
शीघ्रता, उत्कण्ठा से—चले
प्रकृति-अञ्चल छूने रमणीय।

निरे बच्चे ही थे, हो रहा
उदय था उनका जीवन-प्रात;
कुअवसर ही तुमने पाषाण
हृदय कर लिया अहो! अज्ञात।

उषा का दिखा पूर्व-अनुराग
कर लिया आकर्षित शिशु-मन;
किन्तु क्षण में ही फैला हाथ
हर लिया उनका जीवन-धन।

ईश्वरवाद की परीक्षा

[श्री० रमाशङ्कर जी मिश्र, एम० ए०, बी० एल०]

विषय-प्रवेश

हुत से विचारवान मनुष्य ईश्वर-भाव (Godidea) से मुक्त होना चाहते हैं। उनके विचार में इस भाव से मानव-विचार के विस्तार अथवा मनुष्य-जीवन के विकास में कोई मदद नहीं मिलती। ये ऐसे अनीश्वरवादी नहीं हैं, जिन पर धर्म-ग्रन्थों ने व्यंग्य किया है। ये वैसे लोग नहीं हैं, जो कार्लाइल (Carlyle) के मत से ईश्वर के विरुद्ध इसलिए होते हैं कि इनको अच्छे कामों से दुश्मनी रहती है, और ये वैसे लोग भी नहीं हैं, जिनका अभिप्राय ईश्वर को स्मृति-पट से हटा कर निःशङ्क भाव से दुराचार करना रहता है। जिनका उल्लेख हमने ऊपर किया है, उनके जीवन का उद्देश्य यही रहता है कि बुराई को समूल नष्ट करें। ईश्वरवाद के सिद्धान्त का विरोध वे इसलिए करते हैं कि उनके विचार में इससे दुराचार को प्रश्रय मिलता है; इससे बुराई का प्रश्न अधिक जटिल होता जाता है और दुराचार का रुकना एकदम असम्भव हो जाता है।

परन्तु ऐसे लोगों की संख्या अभी बहुत थोड़ी है और इन्हें बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना है। इनको केवल वंश-परम्परागत स्वाभाविक झुकाव तथा प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थों के ज़बरदस्त दबाव पर ही विजय नहीं पाना है, वरन् आजकल के रस्म-रिवाजों की अवहेलना करते हुए तथा लोगों के वाक्य-वाणों को सहते हुए अपने विचार पर दृढ़ रहना है। आजकल का साधारण मनुष्य भी निश्चयात्मक रूप से यह समझता है कि वह "ईश्वर" के सच्चे भाव से परिचित है। जब वह सुनता है कि उसके भाव को कोई मूर्खतापूर्ण कहता है, तो वह फ़ौरन कह बैठता है कि वह नास्तिक है, उसको ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार है। ईश्वर-भाव को जिन लोगों का मस्तिष्क स्वीकार नहीं करता, उनको आज के ईश्वरवादी घृणा की दृष्टि से देखते हैं और इनका मिलान मनुष्य-समाज के उन नीच नमूनों से करते हैं, जो "ईश्वर" को भूल कर मनमाने दुष्कर्म करने के लिए तैयार रहते हैं। इन अल्प संख्यक मनुष्यों की ओर से (जिनमें लेखक भी एक है) यह स्पष्ट रूप से कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि ईश्वरवादी बहुसंख्यक होते हुए भी वस्तु-स्थिति को बौद्धिक रूप से नहीं समझ सकते! जीवन तथा सदाचार के व्यावहारिक सिद्धान्तों का सच्चा परिचय वे नहीं करा सकते।

कार्य-कारण की समस्या

ईश्वरवाद के सिद्धान्त से संसार की उत्पत्ति तथा उसके विकास के समझने में कुछ भी मदद नहीं मिलती। आस्तिक (Theist) का यह दावा रहता है कि ईश्वरवाद के सिद्धान्त को न मानने से संसार-निर्माण अथवा विश्व-विकास का रहस्य कभी भी समझ में नहीं आ सकता। जैसे ही आप एक साधारण मनुष्य से निरीश्वरवाद पर अपना मत प्रकट करते हैं, वैसे ही वह आपसे पूछता है कि बिना ईश्वर के संसार अथवा मनुष्य की उत्पत्ति किस तरह हुई? उसकी दलील यह रहती है कि जिस तरह कुम्हार के बिना मिट्टी के बर्तन नहीं बन सकते, ठीक उसी तरह विश्व-निर्माता के बिना आप सांसारिक दृश्य भी नहीं देख सकते।

यह तो हुई साधारण ईश्वरवादी की दलील! अब आप ज़रा उच्च-शिक्षा पाए हुए ईश्वरवादी की दलील पर विचार कीजिए। ऐसा ईश्वरवादी इस बात को मानता है कि कार्य-कारण की शृङ्खला विश्व के विकास की पहेली को हल करती है। परन्तु उसे कार्य-कारण के सिलसिले से पूर्ण सन्तोष नहीं होता। उसका कहना यह होता है कि केवल कार्य-कारण की शृङ्खला से हमको संसार के वास्तविक कारण का पता नहीं लगता। इस कार्य-कारण के सिलसिले को किसी ने

अवश्य स्थापित किया है और उसी का नाम "ईश्वर" है। परन्तु "ईश्वर" को क़ायम कर देने से ही संसार के कारण की बौद्धिक आवश्यकता (Intellectual necessity) पूरी नहीं हो जाती। यदि कार्य-कारण के सिलसिले को एक कारण की ज़रूरत है, जिसे हम "ईश्वर" के द्वारा पूरा करते हैं, तब स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि "ईश्वर" जो एक 'कार्य' हुआ, उसका कारण क्या है ? इसका उत्तर ईश्वरवादी यह देता है कि 'ईश्वर' का कोई कारण नहीं है, वह सदा से है, स्वयंभू (Self-originated) है, अनादि है ; उसका कोई भी कारण नहीं है। परन्तु इससे हमको सन्तोष नहीं प्राप्त होता। यदि सब कार्यों को कारण की आवश्यकता होती है, तो ईश्वर भी एक कार्य है, उसका कारण क्या है ? यदि कोई कार्य ख़ुद-बख़ुद हो सकता है, तो हम इस बात को क्यों न मानें कि संसार ख़ुद-बख़ुद पैदा हुआ ? काल्पनिक कर्ता अर्थात् ईश्वर को गढ़ने की तो कोई ज़रूरत नहीं देख पड़ती।

हम देखते हैं कि ईश्वरवाद अथवा निरीश्वरवाद से संसार की उत्पत्ति के बौद्धिक कारण का पता नहीं चलता। परन्तु इस बात से घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है ; क्योंकि कार्य-कारण के सिलसिले में खोज करते-करते मनुष्य की विचार-धारा एक ऐसे स्थान पर पहुँचती है कि जिसके आगे बढ़ना असम्भव होता है। मि० हरबर्ट स्पेन्सर (Mr. Herbert Spencer) ने साफ़ कहा है कि हमारी बुद्धि कार्य-कारण के वास्तविक तथ्य को समझने में असमर्थ है। ईश्वरवाद का यह दावा, कि वह संसार की उत्पत्ति का वास्तविक कारण बतला सकता है, बिल्कुल ग़लत है।

बुराई की समस्या

केवल विचार की दुनिया में ही ईश्वरवाद से हमें किसी तरह की मदद नहीं मिलती, वरन् जीवन की समस्या भी इससे हल नहीं होती। वस्तुस्थिति की उलझन को सुलझाने में भी हमको ईश्वरवाद से कुछ मदद नहीं मिलती। ईश्वरवादी को दुनिया में कोई ख़राबी नज़र नहीं आती। इसका दृष्टिकोण ही कुछ विलक्षण होता है। दूसरी तरफ़ वे लोग हैं, जो ईश्वर अथवा उसकी कार्य-प्रणाली से जानकारी नहीं रखते, परन्तु वे जीवन का सच्चा अध्ययन करते हैं। वे अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा कहने में नहीं हिचकते। वे अपने तथा अपने भाई के सुधार में तल्लीन रहते हैं। उनको ईश्वर (अर्थात् प्रकृति का सञ्चालक तथा अधिष्ठाता) के सम्बन्ध में माथापच्ची करके समय नष्ट करने की फ़ुरसत नहीं रहती। वे अपने तथा अपने भाई के बाहु-बल पर भरोसा रखते हैं ; उनको प्रकृति के परे की अदृश्य शक्तियों (Unseen Supernatural Forces) पर भरोसा रखने की ज़रूरत नहीं रहती। ईश्वरवाद ठीक निरीश्वरवाद की तरह उत्पत्ति की पहेली को समझाने में असमर्थ है, परन्तु बुराई की समस्या हल करने में ईश्वरवाद केवल असमर्थ ही नहीं है, वरन् इसकी शिक्षा का फल प्रत्यक्ष-रूप से हानिकारक है। ईश्वरवाद की शिक्षाओं ने बुराई की समस्या को हल करने के बदले उसे और भी उलझा दिया है। इसका कहना है कि परम दयालु, महाज्ञानी तथा सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने संसार में अच्छाई तथा बुराई की सृष्टि अकारण की। यदि दुनिया में बुराई न होती तो ईश्वर पर विश्वास करने में अड़चन न पड़ती—कम से कम यह प्रश्न कोरा शास्त्रार्थ का ही विषय रह जाता और प्रकृति तथा जीवन के तथ्य को समझने में किसी तरह की कठिनाई न पड़ती। परन्तु चूँकि दुनिया में बुराई मौजूद है और ईश्वर के होने अथवा न होने के बारे में कोई अन्तिम राय क़ायम नहीं की जा सकती, तथापि हर विचारवान मनुष्य का इस समस्या के हल करने में यह आक्षेप रहेगा कि ईश्वर एक ऐसा सर्वशक्तिमान है, जो दुनिया को दूसरा ही रूप दे सकता था, परन्तु उसने दुनिया में बुराई का बीज डाल दिया; उसने इतिहास के पन्नों को ख़ून से रँगा और दुनिया की सूरत को डरावनी बना दी। जीन इञ्जीलो (Jean Ingelow) ने कहा है कि ईश्वर पर विश्वास करने में बुद्धि रुकावट नहीं पैदा करती, बल्कि जीवन करता है।

ईश्वरवादी की दृष्टि सदैव प्रकृति के सुहावने दृश्यों की ओर रहती है। प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य को वह ईश्वर के अस्तित्व का प्रधान सबूत मानता है। प्रकृति का सौन्दर्य तथा उसकी उदारता, उसके मनोहर दृश्य,

उसकी कार्यवाही के आश्चर्यजनक तरीक़े तथा अटल नियम; पृथ्वी, आकाश तथा समुद्र के चित्ताकर्षक दृश्य; चरागाह, फलों तथा खेतों में का चमत्कार; बनस्पति, कीड़े-मकोड़े तथा मानव-शरीर का विचित्र गठन; ऋतुओं के नियम-बद्ध परिवर्तन ; तारों का उगना और डूबना तथा समुद्र में तरङ्गों का उठना और विलीन होना; मनुष्य के दिल और दिमाग़ की शक्ति, कवि तथा तत्व-ज्ञानी का मानसिक उत्कर्ष, माता तथा मित्र का मधुर प्यार आदि ईश्वरवादी को चकित किए रहते हैं। वह इन्हीं ख़्यालों में मस्त रहता है और इन्हीं के कारण उसे ईश्वर की कल्पना में मदद मिलती है। वह एकाएक कह बैठता है—प्रभो, तेरी लीलाएँ अपरम्पार हैं! तूने ही सब कुछ बनाया है।

परन्तु ज़रा दूसरी तरफ़ नज़र डालिए। प्रकृति के काले तथा क्रूर कारनामों पर ग़ौर कीजिए। इनसे आपको जगतकर्ता के शैतान होने का प्रमाण मिलता है; उसके ज्ञानी होने की जगह मूर्ख होने का सबूत मिलता है। ज्वालामुखी का दृश्य, बेरहम तूफ़ान के कृत्य, बाढ़ और अकाल का कोप, प्लेग और ज़हर तथा बीमारी और मौत के कारनामों से आपको किस बात का प्रमाण मिलता है? प्रकृति के पल-पल में ख़ून से रँगे हुए दृश्यों से आपको क्या शिक्षा मिलती है? मानव-जीवन के शोक-जनक इतिहास पर ज़रा ग़ौर कीजिए। मनुष्य और प्रकृति के निरन्तर युद्धों पर नज़र डालिए; मनुष्य के तकलीफ़ों की गहराई का पता लगाइए। मानव-इतिहास के मथन का यही नतीजा निकलता है, जो थियोडोर पार्कर (Theodore Parker) ने कहा है :—

"हमारे जीवन पर एक रहस्य का पर्दा पड़ा हुआ है। चारों ओर से हम घिरे हुए हैं तथा हमारी शक्तियाँ बँधी हुई हैं। हमारी युक्तियाँ निष्फल जाती हैं और हमारे उपाय बिगड़ जाते हैं। हम वास्तविकता को स्वप्न-रूप में देखते हैं। हमारी सारी आशाओं पर पानी फिर जाता है। हमें कहाँ जाना चाहिए अथवा क्या होना चाहिए, इससे हम दूर रहते हैं!"

हमने कितनी यातनाएँ सहीं और कितनी तकलीफ़ें दूसरों को दीं? पशु-जीवन के प्रति हमारा बर्ताव कितना क्रूर रहा? मनुष्य ने मनुष्य पर कौन से अत्याचार नहीं किए? युद्ध तथा अपराध, अत्याचार तथा विद्रोह से आप क्या सीखते हैं?

आइए, ज़रा इतिहास के ख़ून से रँगे हुए पन्नों को उलटें। अमेरिका, अफ़्रिका, भारतवर्ष, अरमीनिया, क्यूबा, क्रीट, ग्रीस, रोम तथा अन्यान्य राष्ट्रों के इतिहास से हमको क्या शिक्षा मिलती है? गत यूरोपीय महासमर ने हमको कौन सी सीख दी? समर के भीषण दृश्यों को छोड़ कर आइए, ज़रा सभ्य राष्ट्रों की वास्तविक दशा का पता लगावें। ग़रीबों के महल्लों की गन्दगी, जेलख़ानों का कलङ्क, अस्पतालों के चीर-फाड़ के कमरों के भयानक दृश्य, बूचड़ख़ानों में क़साइयों की क्रूरता और बेज़बान जीवों की हत्या के दृश्यों से भी वही शिक्षा मिलती है। आज के सभ्य-जीवन में हज़ारों दुर्घटनाएँ रोज़ होती रहती हैं। रेलों की दुर्घटनाएँ, खानों में होने वाली भयानक दुर्घटनाएँ तथा लाखों तरह की होने वाली अन्यान्य भयङ्कर घटनाएँ क्या जगतकर्ता को अपराधी के रूप में पेश नहीं करतीं? इन दुर्घटनाओं की जवाब-देही भी विश्व के मूल कारण के ऊपर पड़ेगी। यदि आप इस तथ्य को मानते हैं कि विश्व का निर्माण ईश्वर ने किया है, तो यह भी मानना पड़ेगा कि दुनिया में दुख के नज़ारे भी उसी के कृत्य हैं।

यदि यह कहा जाय कि दो शक्तियाँ हैं; एक शक्ति से भलाई होती है और दूसरी बुराई पैदा करती है, जैसा कि ज़ोरैस्टर-मत (Zorastrianism) का सिद्धान्त था, तो हम बुराई की समस्या को कुछ हल कर सकते हैं। परन्तु आजकल का ईश्वरवादी एक परमेश्वर को मानता है, इसलिए हम बुराई का उत्तर-दायित्व मनुष्य अथवा शैतान के मत्थे नहीं मढ़ सकते। ईश्वर ही सब कुछ का निर्माण करने वाला है; सब चीज़ों की उत्पत्ति का वही आदि कारण है, तो बुराई का कारण भी वही सिद्ध हुआ। अब यदि यह कहा जाए कि इन सबके अन्त में भला ही होगा; ईश्वर जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है। साधन में यदि कुछ बुराई है तो कोई हर्ज की बात नहीं, आख़िरी नतीजा भला ही होगा। टेनिसन (Tennyson) ने भी ऐसा ही सुनहला स्वप्न देखा है। तब बात यह सिद्ध हुई कि ईश्वर का उद्देश्य भलाई है, परन्तु उद्देश्य तक पहुँचने के लिए उसको बुराई का भी

आश्रय लेना पड़ता है। क्या बुद्धि इस बात को स्वीकार करती है?

इस सिद्धान्त को मानने से एक अजीब उलझन सी पैदा हो जाती है। इसलिए या तो हमें यह मानना पड़ेगा कि ईश्वर दूसरे उपायों से काम करने में असमर्थ है और ऐसी हालत में उसके सर्वशक्तिमान होने पर बट्टा लगता है। जैसा कि डॉक्टर कॉन्वे (Dr. Conway) ने बतलाया है कि वह भले साधनों के ज़रिए भी अन्तिम भलाई तक पहुँच सकता था, नहीं तो हमको इस बात को मानने के लिए मजबूर होना पड़ेगा कि ईश्वर दूसरे साधनों द्वारा भी अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकता था, परन्तु उसने इसी तरीक़े को पसन्द किया। अर्थात् वह अच्छी शक्तियों का प्रयोग कर अपने अच्छे ध्येय तक पहुँच सकता था, परन्तु उसने बुरी शक्तियों का प्रयोग करना ही अच्छा समझा। ऐसी हालत में ईश्वर की सर्व-शक्तिमानता तो बच जाती है, परन्तु उसके प्रति मनुष्य के मधुर भाव पर ज़ोर का धक्का पड़ता है और उसका दयामय होना सन्दिग्ध हो जाता है। मज़हब का यह कथन कि ईश्वर अपने उपासकों पर उसी तरह दया करता है, जिस तरह पिता अपने बच्चों पर, मिथ्या प्रतीत होने लगता है। ईश्वर का व्यवहार यदि मनुष्य के प्रति देखा जाय तो हम पर उसके प्रति घृणा के सिवा दूसरा भाव दिखाई ही नहीं दे सकता। रिचर्ड जेफ़्रीज़ (Richard Jefferies) ने कहा है कि यह कहना सफ़ेद झूठ तथा मानव-जाति के विरुद्ध भारी अपराध है कि दुनिया में जो कुछ होता है, वह भले के लिए ही है, उद्देश्य हमेशा ज्ञानयुक्त तथा दयापूर्ण रहता है। मानव-जाति इतने भयानक कष्टों का शिकार है कि उसका वर्णन करना लेखनी की शक्ति के बाहर है। अधिक से अधिक जो एक निराशावादी इसके बारे में कह सकता है, वह मानव-समाज की यातनाओं की एक ऊपरी झलक मात्र है। बुद्धि रखने वाले प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है कि इस सत्य को मान ले। ज़रा सा भी सोचने से ही यह मालूम हो जाता है कि विश्व की कार्यवाही मानव-जाति के सुख के लिए नहीं हो रही है और यदि विश्व का कार्य-सम्पादन किसी मनुष्य (जिसकी शक्तियाँ महदूद नहीं रहतीं) द्वारा होता, तो मनुष्य-जीवन में इतना दुख नहीं दीख पड़ता। बुद्धि तथा हृदय रखने वाला मनुष्य विश्व का कार्य-सम्पादन कहीं ज़्यादा अच्छे तरीक़े से कर सकता था। इसलिए मनुष्य-जाति का यह कर्तव्य है कि वह विश्व का कार्य-सम्पादन अपने हाथों में ले ले और इस वहम को भूल जावे कि एक अदृश्य शक्ति है, जो विश्व का सञ्चालन कर रही है।

इस तरह ईश्वर अन्धकार में छिप जाता है और हमारे लिए वह एक ऐसी वस्तु हो जाती है, जिस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। जॉन एम० रॉबर्टसन (John M. Robertson) के विचार में हमारे नैतिक भाव से कल्पित ईश्वर के नैतिक भाव को समझने में बुद्धि असमर्थ है। क्योंकि प्रकृति की कार्य-प्रणाली कुछ ऐसे ढङ्ग की होती है, जिसका सञ्चालन करना कोई भी भला आदमी स्वप्न में भी नहीं सोच सकता। ईश्वरवादी का यह भाव कि परमेश्वर अपरम्पार प्रेम तथा ज्ञान का भण्डार है, उसके साधारण जीवन-प्रवाह में उसे कुछ भी मदद नहीं देता। वह अपने मित्र पर कुछ भरोसा रख सकता है, परन्तु ईश्वर पर नहीं। उसे कुछ भी नहीं मालूम कि दूसरे ही क्षण कौन सी आफ़त उस पर आ जाएगी। सिद्धान्त में वह ईश्वरवादी होते हुए व्यावहारिक जीवन में वह ठीक निरीश्वरवादी की तरह भविष्य के बारे में अन्धकार में रहता है। परन्तु वह सदैव इस बोझ से दबा रहता है कि हर काम के लिए जिसे वह भी दिल से बुरा समझता है, ईश्वर पर शिकायत न आने दे। सिद्धान्ततः वह दयामय ईश्वर पर भरोसा रखता है, पर वह दुखमय जीवन से घबरा कर कहता है—'दयानिधि तेरी गति लखि न परै!' परस्पर विरुद्ध बातों को न्याय-सङ्गत करने की लगातार चेष्टा से उसके नैतिक जीवन को धक्का पड़ता है। इस सिद्धान्त से केवल उसकी बुद्धि ही कलङ्कित नहीं होती, वरन् उसके नैतिक विकास में भी रुकावट पड़ती है। जिस नैतिक बन्धन से वह अपने को बँधा हुआ समझता है, उससे उसका ईश्वर मुक्त रहता है। इस बात के केवल ख़्याल से ही उसके नैतिक विचार डावाँडोल रहते हैं। इसी सिद्धान्त के फल-स्वरूप आज लाखों अत्याचारों तथा बुराइयों की लोग उपेक्षा कर जाते हैं और तरह-तरह की बेईमानियों तथा फ़रेबों की परवाह नहीं करते। यह सिद्धान्त की

बुराई एक प्रकार की छिपी हुई भलाई है, इसकी जड़ में ईश्वर है, जो सब कुछ भले के लिए करता है; नैतिक भावों पर तुषार डालता है।

तब क्या ?

परन्तु ईश्वरवाद को हटा देने पर रही क्या जाता है ? केवल एक आकस्मिक आविर्भाव (An emergence) जिसके मूल कारण का पता न ईश्वरवादी को है और न अनीश्वरवादी को। यह आविर्भाव बाहरी शक्ति के कारण नहीं होता, बल्कि यह स्वतन्त्रता-मूलक है। परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्ध न रखने वाले परमाणुओं (Atoms) के जुटने से दुनिया की शक्ल क़ायम होती है, जीवन-शक्ति (Vital energy) का विकास आहिस्ते-आहिस्ते होता है और अन्त में चैतन्य-जीवन (Conscious life) का प्रगटन होता है। इस प्रकार लाखों वर्षों के पशु-जीवन के पश्चात् मनुष्य का विकास हुआ है। मनुष्य के विकास के साथ ही उसके विचार करने तथा बातचीत करने की शक्ति का उदय हुआ। परन्तु पहले मनुष्य इन शक्तियों के होते हुए भी अपनी वास्तविक हालत तथा परिस्थिति से पूर्णरूप से अनभिज्ञ था। मनुष्य बहुत दिनों तक अनुभव तथा साहस के रास्ते पर अग्रसर हुआ। इस रास्ते में उसे तरह-तरह के झञ्झटों तथा ख़तरों का सामना करना पड़ा। अनुभव के स्कूल में इसने पग-पग पर भूलें कीं, कई बार भ्रान्त पथ पर चला, झूठे आदर्शों के पीछे दौड़ लगाई। परन्तु फिर अपनी भूलों का अनुभव करके पीछे की ओर लौटा। तरह-तरह के समाजों तथा सभ्यताओं का निर्माण किया। बिगाड़ा और फिर से उनका सुधार किया। मनुष्य ने हज़ारों ग़लतियाँ कीं, परन्तु आशा को सदैव सामने रक्खा। उसे यह आशा थी कि यदि संसार क़ायम रहा और यदि मनुष्य-जाति बनी रही, तो वह अवश्य संसार का सदुपयोग कर पूर्ण-जीवन को प्राप्त होगा। परन्तु अभी तक यह एक रहस्य ही है। यह रहस्य आशाजनक तथा मनोहर प्रतीत होता है, परन्तु साथ-साथ इसमें दुख और ख़तरे भी मौजूद हैं। परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी यह रहस्य उतना हास्यास्पद नहीं, जितना कि ईश्वर के दुर्लक्ष्य फ़रमान, जो प्रेम का दावा करते हुए भी अपने भक्तों पर दुखों का भरा हुआ थैला भी उलट देते हैं।

उपसंहार

तात्पर्य यह कि ईश्वरवाद से किसी को कुछ भी लाभ नहीं, सिवा उन लोगों के, जो अपने आपको धोखा देने के लिए तुले हुए हैं। विश्व के आदि कारण को समझने में इससे कुछ मदद नहीं मिलती और बुराई की समस्या को यह और भी अधिक जटिल कर देता है। यह बात भी सत्य नहीं है कि ईश्वरवाद से मनुष्य के हृदय में रक्षा का भाव रहता है और उसे इस बात का भरोसा रहता है कि मनुष्य के परे एक शक्ति है, जिसके पास आवश्यकता पड़ने पर प्रार्थना की जा सकती है। हो सकता है कि जो अपने आपको धोखा देने के लिए तुले हुए हैं, उनको ऐसे ईश्वर पर विश्वास रखने से, जो सांसारिक दृश्यों तथा घटनाओं से साबित किए हुए ईश्वर से एकदम जुदा है, सन्तोष प्राप्त होता हो; परन्तु ऐसे लोगों को, जो इन बातों को अच्छी तरह समझते हैं कि ईश्वर के उपाय हमारे उपायों से जुदा हैं, तथा उसके विचार हमारे विचारों से भिन्न हैं; जो इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि ईश्वर उनकी सारी प्रार्थनाओं की अवहेलना कर उन्हें दुख-सागर में डुबा सकता है, उनको कम से कम इस संसार में ईश्वर-वाद से कोई लाभ नहीं दीख पड़ता। उनको इस धारणा से कोई सन्तोष नहीं प्राप्त होता।

यदि ईश्वरवाद पर विश्वास रखने से यह बौद्धिक नतीजा भी निकले कि इसके द्वारा मनुष्य को रक्षा का भाव मिलता है, तब भी इसकी आवश्यकता बच्चे को होती है, न कि प्रौढ़ मनुष्य को। सम्भव है कि मानव-समाज को अपने शैशव-काल तथा किशोरावस्था में इस माया तथा भ्रम (Illusion) की ज़रूरत रही हो, परन्तु मनुष्य-जाति अब अपने पूर्ण जवानी की अवस्था पर पहुँची है—उस अवस्था पर, जबकि प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह स्वावलम्बी बने और अपने पैरों पर खड़ा हो। इसलिए इस बात की आवश्यकता है कि उसे ऊपर कहे हुए माया तथा भ्रम से मुक्त किया जाए। बच्चा अपने को उत्तरदायित्व से मुक्त पाता है, क्योंकि कुल जवाबदेही उसके माँ-बाप अथवा गुरु पर रहती है। परन्तु यह बात जवानों को शोभा नहीं देती। जवानी में कर्तव्यों का दायरा बढ़ता जाता है और प्रकृति, समाज तथा जीवन मनुष्यों पर उत्तरदायित्व

का बोझ बढ़ाते जाते हैं। ठीक इसी तरह मनुष्य-जाति के शैशव-काल तथा किशोरावस्था में संसार के कार्यों के सञ्चालन की कुल जवाबदेही एक कल्पित ईश्वर के मत्थे मढ़ दी जाती थी। परन्तु अब वह अपनी पूर्ण प्रौढ़ अवस्था पर पहुँची है, वह अब उत्तरदायित्व से भाग नहीं सकती; कल्पित ईश्वर के सिर पर वह जवाबदेही का बोझ नहीं रख सकती। इसाबेल एसमॉण्ड (Isabel Esmond) ने कहा है कि मनुष्य के लिए यह कभी भी लाभदायक नहीं हो सकता कि वह अपने कर्तव्य करने की शक्ति पर सन्देह करे। किसी ईश्वर के डर से नहीं, बल्कि इस बात से कि उसी शक्ति के द्वारा अपने जीवन को पूर्ण-रूप से सार्थक बना सके। मानवीय सभ्यता की उन्नति के साथ-साथ ईश्वरवाद के सिद्धान्त में भी परिवर्तन दीख पड़ता है। बात यह है कि अब थोड़े दिनों में ईश्वर का भाव मनुष्य के हृदय पर से एकदम हट जाएगा। मानव-समाज के विकास के इतिहास के अध्ययन से मनुष्य प्रकृति के परे की शक्तियों (The supernatural) पर से अपने ख़्याल को हटा रहा है। पहले लोग प्रकृति की शक्तियों (सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु, नदी-नाले, तूफ़ान, अग्नि इत्यादि) को देव-रूप देकर उसकी उपासना करते थे। इसके बाद 'भली शक्ति' (God Good) तथा 'बुरी-शक्ति' (Devil Evil) इन दो शक्तियों की उपासना होने लगी। परन्तु आज जब शैतान के मानवी स्वरूप का ज़िक्र आता है तो लोग हँस पड़ते हैं, पर ईश्वर के मानवी स्वरूप (Personal God) पर विश्वास रखते हैं। परन्तु जब शैतान के मानवी स्वरूप (Personal Devil) पर से आप अपना विश्वास हटाते हैं, तब ईश्वर के मानवी स्वरूप पर से विश्वास हटाने के लिए भी बुद्धि का तक़ाज़ा है। आज भी मानव-समाज का अधिकांश एक ईश्वर (Personal God) पर विश्वास रखता है। ईश्वर को मनुष्य रूप देकर वह उसकी पूजा करता है; मानवी दिमाग़ देकर वह उसको सुशोभित करता है। विलियम वैटसन (William Watson) ने कहा है कि नाम देकर हम रहस्य (Mystery) को अधिकतर तमसाच्छन्न करते हैं। क्या ही अच्छा होता कि "ईश्वर" शब्द और इसके साथ की जितनी अनाप-शनाप बातें हैं, उनसे हम अपने को मुक्त कर लेते—परमेश्वरनामी वहम से हम आज़ाद हो जाते—और विश्व की पहेली का सामना वीरता से करते; ईश्वर और शैतान के सिद्धान्तों को गढ़ कर पेचीदगी न पैदा करते। हम कर्नल इङ्गरसौल के इस मत से बिल्कुल सहमत हैं कि वस्तु-तत्व (Substance) नित्य है। संसार का न कोई आदि है, न अन्त। यह एक चिरस्थायी अस्तित्व है, सम्बन्ध अस्थायी वस्तु है, शरीर बनते हैं और बिगड़ते हैं, शक्लों में परिवर्तन होते हैं—परन्तु पदार्थ (Substance) अनन्त हैं। हो सकता है कि नक्षत्रों (Planets) की हस्ती बने और बिगड़े, तारे अमित आकाश में लोप हो जाएँ, हज़ारों सूर्य ठण्डे पड़ जाएँ; परन्तु वस्तु-तत्व का अस्तित्व क़ायम रहेगा। संसार के पहले कारण का पता लगाना मनुष्य के दिमाग़ की शक्ति के बाहर है।

हम अन्त में यह निवेदन कर देना ज़रूरी समझते हैं कि हमने ईश्वरवाद पर आक्षेप हँसी में नहीं किया है। हमें माता की गोद में ही ईश्वर-भक्ति की शिक्षा मिली है। बड़े होने पर बहुत दिनों तक हम परमेश्वर के सगुण रूप के उपासक रहे हैं। हमको ईश्वर के सगुण-रूप के चिन्तन से जो आनन्द मिलता था, वह आज तक याद है। परन्तु कल्पित ईश्वर के चिन्तन से आनन्द लेते रहने की अपेक्षा हम यह ज़रूरी समझते हैं कि आधुनिक समय में हमारा क्या धर्म होना चाहिए, उसकी ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करें। आज ईश्वरोपासना की जगह मनुष्य-पूजा ही हमारा मज़हब होना चाहिए। कल्पित ईश्वर का चिन्तन कर मानसिक सुख लेने के बजाय हमको मनुष्य-जाति की सेवा में दुख झेलते रहने पर आनन्दित होना चाहिए।

प्रकृति

क्षति

[श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

रात के आठ बज चुके हैं। अश्विनी-पुर ग्राम में एक छप्पर के नीचे अरण्डी के तेल का दीपक टिमटिमा रहा है। उस दीपक के क्षीण आलोक में गाँव के पटवारी साहब अपने काग़ज़ात खोले बैठे हैं और कुछ लिखा-पढ़ी कर रहे हैं। उनके आस-पास आठ-दस आदमी चुपचाप बैठे उनका मुँह ताक रहे हैं। पटवारी साहब की बग़ल में भरा हुआ हुक़्क़ा रक्खा है—बीच-बीच में पटवारी जी उसका एक कश लेकर पुनः अपने काम में लग जाते हैं।

हठात् उपस्थित लोगों में से एक बोल उठा—तो फिर जायँ क्या, दीवान जी? बता देते तो बड़ी मेहरबानी होती।

दीवान जी अपने काग़ज़ों की ओर दृष्टि लगाए हुए बोले—ज़मींदार दो-चार दिन में आने वाले हैं, उनसे सब पता लग जायगा।

"जमींदार न जाने क्या अनाप-सनाप बता दें।"

"अनाप-शनाप कैसे बता देंगे?"—पटवारी ने कहा।

"आपसे हमें ठीक हाल मिल जाता। जमींदार का हमें एतबार नहीं है।"—एक दूसरा व्यक्ति बोला।

"ठीक-ठीक हाल जानना चाहते हो तो कुछ ख़र्च करो। मुफ़्त में ठीक हाल जानना चाहते हो?"

"अरे दीवान जी, आप भी ऐसे समय में सताते हो। पैदावार कुछ नहीं हुई, भूसे के भाव अनाज बिक रहा है। लगान सब देना पड़ा है—पैसे का ठिकाना नहीं, ऐसे में आप भी तङ्ग करते हैं। हमेसा तो देते रहे हैं, एक दफ़े न मिला न सही।"

"न क्यों मिले?"—पटवारी ने कहा।

"इसलिए कि है नहीं।"

"नहीं है तो मौज करो—काहे को चिन्ता करते हो। जब हुई नहीं तो ज़मींदार को दोगे क्या और जब देना नहीं है तो चाहे जितना हो, तुम्हारी बला से।"

"मतलब यह है दीवान जी, कि अगर छूट इतनी हुई है कि हमें लगान देना अखरेगा नहीं, तब तो जैसे बनेगा देंगे ही और जो छूट नहीं हुई या कम हुई है, तो फिर लावेंगे कहाँ से?"

एक अन्य व्यक्ति बोल उठा—वाजिबी बात होगी तो करनी ही पड़ेगी, चाहे जैसे करें; परन्तु यदि गैर-वाजिबी हुई तो उसमें लड़ जायँगे।

एक तीसरे व्यक्ति ने कहा—वाजिबी बात में लड़ते भी तो नहीं बनता। अन्त में नुकसान उठाना पड़ता है।

चौथा व्यक्ति बोल उठा—"यही तो डर है भइया, और कोई हो तो लड़ भी जायँ, परन्तु जमींदार और सरकार के मुकाबिले में गैरवाजिबी बात पर लड़ाई मोल लेना ठीक नहीं है।" पटवारी जी ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। वे लोग कुछ देर तक मौन होकर प्रतीक्षा करते रहे कि कदाचित् पटवारी साहब वाजिबी तथा गैरवाजिबी बात पर अपने कुछ विचार प्रकट करें; परन्तु जब पटवारी साहब सनके तक नहीं, तो उनमें से एक बोला—इस बखत काम नहीं होगा भइया, चलो चलें। पटवारी जी हम लोगों पर नाराज हैं—चलो फिर किसी समय आवेंगे।

पटवारी साहब हुक़्क़े का कश लेकर खाँसते हुए बोले—चाहे जब आओ, पर इस बार ख़ाली हाथ आना नहीं, यह बताए देता हूँ। बेकार झकझक करने की मेरी आदत नहीं। लगान में छूट किसकी बदौलत हुई है, यह जानते हो? यह हम लोगों की बदौलत हुई है। हमसे पैदावार की रिपोर्ट माँगी गई थी। हमने जब लिखा कि पैदावार कम हुई और भाव सस्ता है, तब यह छूट हुई है। अगर हम लिख देते कि पैदावार ठीक हुई है, तो एक पैसा तो छूटता नहीं।

"यह तो सब आपकी ही दया का फल है, यह हमें मालूम है; हम भी तो आपको सदा मानते रहते हैं।

इस बार समय ख़राब पड़ गया है, इससे कहते हैं, नहीं तो कौन बड़ी बात थी, आपको भी खुश कर देते।"

"ख़ुश नहीं कर सकते तो सोलहो आने नाख़ुश भी तो न करो—जो जिससे देते बने, देओ। हम यह थोड़ा ही कहते हैं कि इतना ही लेंगे।"

एक व्यक्ति बोल उठा—अच्छी बात है, आपको भी कुछ न कुछ देंगे। अरे हाँ, वैसे जमींदार झूठ-सच बता कर अधिक मार ले जायगा, उससे तो बचेंगे।

पटवारी महोदय सिर हिलाते हुए बोले—अब तुमने समझदारी की बात कही है, मगर देने वाला हिसाब मैं ज़रा कम रखता हूँ। यहाँ तो पहले सामने लाकर रक्खो, फिर दूसरी बातचीत है।

"अरे तो क्या इतना एतबार भी नहीं है? हम कुछ लेकर भाग तो जायँगे नहीं।"

"तो अगर मुझे ही पहले दे दोगे तो मैं भी लेकर भाग नहीं जाऊँगा।"—पटवारी ने कहा।

"इस समय है नहीं, कल-परसों तक दे जायँगे।"

"तो कल-परसों बता देंगे, अभी जल्दी कौन पड़ी है।"

एक व्यक्ति घृणायुक्त हँसी हँसते हुए बोला—बड़े चट्टानिया हो दीवान जी, पुट्ठे पर हाथ ही नहीं धरने देते।

पटवारी महोदय मुस्करा कर सिर हिलाते हुए बोले—रात-दिन तुम्हीं लोगों के बीच में रहते हैं और यह सब तुम्हीं लोगों से सीखा है। अब तुम चट्टानिया बनाओ, चाहे जो बनाओ।

इतना सुन कर उपस्थित लोगों में परस्पर कुछ इशारेबाज़ी हुई। सबों ने टेंट से एक-एक रुपया निकाल कर पटवारी के सामने रक्खा। रुपए की खनकार सुन कर पटवारी साहब का जी ख़ुश हो गया, परन्तु ऊपर से उसी प्रकार गम्भीर तथा अन्यमनस्क बने रहे।

रुपए रख कर एक व्यक्ति बोला—लीजिए दीवान जी, यह आठ रुपए सँभालिए।

दीवान जी पहले आदमियों की ओर देख कर उन्हें गिन लिया कि आठ ही हैं—अधिक तो नहीं हैं, ऐसा न हो कि किसी ने रुपया न दिया हो। जब उन्हें सन्तोष हो गया कि आठ ही आदमी हैं, तो फिर रुपए उठा कर गिने और उन्हें भली-भाँति परख लिया।

एक व्यक्ति बोल उठा—रुपए सब ठीक हैं, कोई खराब नहीं है।

"देख लेना ठीक होता है, कई बार धोखा खा चुका हूँ। लोग काँसे के रुपए भेड़ जाते हैं।"

इस पर उपस्थित लोग बहुत हँसे। एक बोल उठा—तो तुम कौन गेहूँ बेच कर वसूल करते हो। गला दबा कर लेते हो, इससे भेड़ जाते हो।

"हूँ, गला दबा कर लेते हैं। वह बात बताते हैं कि सैकड़ों रुपए का लाभ होता है। अच्छा तो सुनो, इतनी छूट हुई है।"

यह कह कर दीवान जी ने बताना आरम्भ किया।

२

"रघुराजसिंह! ओ रघुराजसिंह?"—यह शब्द सुन कर एक युवक कृषक ने घूम कर देखा। एक वृद्ध लाठी लिए हुए उसी ओर धीरे-धीरे आ रहा था। रघुराजसिंह ठिठुक गया। वृद्ध के कुछ समीप पहुँचने पर रघुराजसिंह बोला—"काहे कामता काका, क्या है?"

कामता काका और निकट पहुँच कर बोले—हमने सुना है, कल पटवारी ने तुम्हें छूट का परचा बना कर दिया है। कितनी छूट भई है—हमें भी बता देते बचा।

"अरे काका, न कुछ छूट भई है—ऐसे ही हम लोगों को बहला दिया है।"

"किसने बहला दिया, पटवारी ने?"

"नहीं, सरकार ने!"

"सो कैसे?"

"छूट बहुत कमती दी है—नहीं के बराबर है!"

"हमने तो सुना छूट बहुत दी गई है।"

रघुराज कुछ चौंक कर बोला—किससे सुना?

"एक कॉङ्ग्रेस का आदमी कहता था।"

रघुराजसिंह बोला—कॉङ्ग्रेस का आदमी कहता था तो ठीक होगा। तो क्या पटवारी ने हम लोगों को उल्लू बनाया?

"पटवारी ने क्या बताया?"

"काका, हमने एक चिट्ठा खर्च किया है और तुम मुफ़्त ही में पूछना चाहते हो।"

"अरे बचा तो क्या हुआ? हमारी-तुम्हारी क्या बराबरी। हम रुपया कहाँ पावें, जो पटवारी को दें।"

"और कोई होता तो न बताते, पर तुम्हें बताए देते हैं। पाँच आने और तीन आने की छूट भई है।"

"बस !"

"पटवारी ने तो इतनी ही बताई है।"

"यह तो कुछ न हुआ, बच्चा ! कम से कम आठ आने होती तो कुछ बात थी। कॉङ्ग्रेस वाला तो कहता था, रुपए में बारह आने छूट है और चार आने की तहसील है।"

"तो उसकी बात पक्की होगी, काका।"

"जान तो ऐसा ही पड़ता है। कॉङ्ग्रेस वाले भला झूठ काहे को बोलेंगे ?"

"हमारे गाँव में तो कोई कॉङ्ग्रेस वाला है नहीं, जो उससे पूछ लें।"

"यहाँ से दो कोस पर तो रहते हैं—जाकर पूछ आओ।"

"हाँ काका, कहते तो ठीक हो—अभी जाता हूँ।"

"जाओ बच्चा ! अरे हाँ, ठीक-ठीक पता लग जाय तो कल से बैठें।"

रघुराजसिंह चल दिया। लगभग एक घण्टे के अन्दर वह उक्त ग्राम में पहुँच गया। वहाँ उसने पता लगा कर एक खद्दरधारी व्यक्ति से भेंट की। यह व्यक्ति पहले एक आवारा आदमी था, परन्तु कुछ दिनों से खद्दर धारण करके अपने को कॉङ्ग्रेस का आदमी प्रसिद्ध करता था—यद्यपि कॉङ्ग्रेस से और उससे कोई सम्बन्ध न था। बहुधा आस-पास के गाँवों में कॉङ्ग्रेस की ओर से जो सभाएँ हुआ करती थीं, उनमें यह व्यक्ति जाया करता था। अनजान ग्रामीण जब इससे कॉङ्ग्रेस की कोई बात पूछते थे, तो यह ख़ूब ज़टल-क़ाफ़िए उड़ाता था। ग्रामीण लोग इसकी बातें सच समझा करते थे। रघुराजसिंह ने उससे मिल कर पूछा—भला एक बात बता सकते हो ?

उस व्यक्ति ने बड़ी शान से कहा—पूछो !

"मालगुजारी की छूट की बाबत कुछ बता सकते हो कि कितनी छूट भई है।"

"अरे सब छूट ही छूट है।"

"हम समझे नहीं—खुलासा कहो।"

"खुलासा यह है कि गाँधी बाबा का हुकुम है कि ज़मींदार और सरकार को एक कौड़ी मत दो।"

"सो काहे ?"—रघुराजसिंह ने पूछा।

"कुछ पैदावार ही नहीं हुई।"

"सो तो नहीं हुई ; पर बिना कुछ दिए भी तो प्राण नहीं बचेंगे।"

"कुछ मत दो।"

"ज़मींदार सख़्ती करेंगे तब ?"

"गाँव भर एका कर लो—ज़मींदार सख़्ती करे तो तुम भी जवाब दो। ज़मीन किसान की है, ज़मींदार होते कौन हैं।"

"इसमें तो भइया बड़ी ख़राबी होगी।"

"ख़राबी को डरते हो तो जाकर घर बैठो, फिर काहे दौड़े आए। जो ज़मींदार माँगे सो चुपके से दे देना।"

"सो भी तो नहीं हो सकता। पास-पल्ले होता तो ऐसा भी करते।"

"यह भी नहीं हो सकता, वह भी नहीं हो सकता तो फिर हो क्या सकता है ?"

"हो यही सकता है कि थोड़ा-बहुत दे सकते हैं। परन्तु यह पता नहीं है कि कितनी छूट भई है। पटवारी भी ठीक से नहीं बताते—जमींदार भी ठीक न बतावेंगे। इससे तुमसे पूछने आए। तुम्हें पक्का हाल मालूम होगा।"

वह व्यक्ति कुछ देर तक सोच कर बोला—पटवारी ने कितनी बताई है ?

"पाँच आने और तीन आने !"

"बिल्कुल ग़लत है।"

"तो कितनी है ! हमसे अभी एक ने बताया कि बारह आने की छूट है।"

"सो तो हई है। बारह आने और नौ आने की छूट है। सो भी जो तुम्हारे पास हो और तुम देना चाहो तब ; नहीं तो इतना देने की ज़रूरत नहीं है। इससे अधिक ज़मींदार एक पैसा भी माँगे तो मत देना।"

"बहुत अच्छा ! आपने बड़ी दया की। हम तो बड़े असमञ्जस में पड़े हुए थे।"

"असमञ्जस में पड़ने का काम नहीं है। ज़रा हिम्मत रक्खो और गाँव भर एका करके काम करो। ज़मींदार तुम्हारा कुछ नहीं कर सकेगा।"

"अच्छी बात है।"—कह कर रघुराजसिंह धीरे-धीरे वहाँ से चल दिया।

३

एक सप्ताह पश्चात् ज़मींदार का कारिन्दा आ पहुँचा। चारों ओर गुड़ैत और सिपाही दौड़ने लगे। "लगान लाओ" की पुकार मचने लगी। दो दिन तक तो कारिन्दा कुछ नहीं बोला। जब तीसरे दिन भी कोई किसान लगान लेकर नहीं पहुँचा, तो उसका दिमाग़ गर्म हो गया। उसने गुड़ैत और सिपाहियों को डाँट बता कर कहा—"यह क्या बात है कि कोई सनकता तक नहीं। क्या गाँव में कोई नहीं है?"

सिपाही बोला—हैं तो सब लोग, पर कोई आता नहीं। कहते हैं, अभी हमारे पास लगान नहीं है।

गुड़ैत बोल उठा—लोग कहते हैं कि उन्हें यह ठीक पता नहीं है कि कितनी छूट हुई है। जब तक यह पता न लग जाय, तब तक लगान कैसे दें?

"तो यह पता क्या घर बैठे लग जायगा। यहाँ तक आवें तो।"

"डरते हैं!"

"क्यों?"

"यही मार-पीट को—और तो कोई बात है नहीं।"

"और इस तरह क्या मार-पीट से बच जायँगे? जाओ, ऐसे न आवें तो पकड़ कर लाओ। यह अच्छी दिल्लगी मचा रक्खी है।" गुड़ैत और सिपाही चले गए। थोड़ी देर पश्चात् दो किसानों को पकड़ कर लाए।

कारिन्दे ने पूछा—लगान लाए?

एक बोला—अभी तो नहीं लाए मालिक?

"क्यों?"

"अभी है नहीं।"

"यह हम कुछ नहीं जानते—हो चाहे न हो, लगान देना पड़ेगा।"

"यह भी पता नहीं है कि कितना देना है।"—दूसरा कृषक बोला।

"हाँ, यह तुमने मामले की बात कही। पटवारी ने नहीं बताया क्या?"

"पटवारी ने सब को थोड़े ही बताया है, जिसने रुपया दिया उसे बताया है।"

"हूँ! यह बात है? बहुत अच्छा किया। पहले पूरा लगान लेकर आओ, जितनी छूट होगी उतना हम वापस कर देंगे।"

कारिन्दे की यह बुद्धिमत्तापूर्ण बात सुन कर दोनों किसान भयभीत होते हुए भी मुस्करा दिए। कारिन्दा बोल उठा—क्यों, खीसें क्या निपोरते हो?

"अरे सरकार, यहाँ आधे का तो डौल है ही नहीं, आप कहते हैं पूरा लाओ। छूट निकाल कर बता देओ तो दो-चार दिन में उसका बन्दोबस्त करें।"

"दो-चार दिन में! और क्या! तो हम यहाँ छावनी डालने आए हैं, क्यों? हमारा यहाँ का ख़र्च कौन देगा?"

"जमींदार देगा और कौन देगा?"

"ज़मींदार पर तुम्हारे बाप का क़र्ज़ा चढ़ा है न, जो देगा?"

"अच्छा यह बताओ कि छूट कितनी है?"

"कुछ हमें भी दिलवाओगे, या सूखा ही टरकाने का इरादा है।"

"देना होता तो पटवारी ही से न पूछ लेते सरकार! पटवारी ने जब रुपया माँगा तो हमने उसे जवाब दिया कि हम अपने मालिक से पूछ लेंगे।"

"अच्छा तो चार आने और ढाई आने की छूट है। समझे?"

"यह तो बहुत कम है सरकार! इससे तो छूट न होती सो अच्छा था।"

"अब हम इसे क्या करें—यह कलक्टर साहब से जाकर कहो!"

"हमारे कलक्टर तो आप ही हैं।"

"इन बातों से तो काम चलेगा नहीं। लगान ले आओ जाकर, नहीं तो पछताओगे।"

"अभी तो सरकार लगान है नहीं।"

"क्यों शामत आई है। यह याद रखना, एकौ करम बाक़ी न रहेगा।"

"आप माँ-बाप हैं, जो चाहें करें।"

"सरकार हमने तो सुना था कि रुपए में बारह आने की छूट हुई है।"—दूसरा कृषक बोला।

कारिन्दा मुस्करा कर बोला—सोलह आने कहो, सोलह आने!

"जो सुना सो आपसे कहा—हमें तो ठीक हाल मालूम नहीं।"

"जब चाँद पर जूता बरसेगा तब ठीक हाल मालूम होगा, वैसे थोड़ा ही मालूम होगा। लाओ लगान निकालो।"

"लगान तो अभी है नहीं सरकार, दो-चार दिन में बैल-बधिया बेच कर देंगे।"

"ठीक-ठीक वादा करो कि कब दोगे तो आज छोड़ दें।"

"परसों तक दे देंगे, मुदा वही चार आने देंगे, बारह आने की छूट है। हमें इसका पता चल गया है।"

"कुछ घास तो नहीं खा गए हो? बारह आने की छूट! ऐसा अन्धेर है।"

"तो सरकार इससे अधिक का तो हमारे पास सुभीता नहीं है।"

"बहुत पिटोगे, यह याद रखना।"

"चाहे पिटवाओ, चाहे कटवाओ। तुम्हारी रैयत हैं।"

"अच्छी बात है, देखा जायगा।"—दोनों किसान उठ कर चल दिए। कारिन्दा बोला—"परसों पूरा लगान लेकर न आए तो अपनी ख़ैर न समझना।" दोनों कृषकों ने कोई उत्तर न दिया, चुपचाप चले गए।

४

पटवारी ने पाँच आने और तीन आने की छूट बताई। ज़मींदार का कारिन्दा चार आने और ढाई आने बताता है। इससे गाँव वालों ने यह निष्कर्ष निकाला कि दोनों बातें ग़लत हैं। यदि ठीक हो सकती है तो बारह आने वाली बात हो सकती है। एक वृद्ध महोदय पटवारी को गालियाँ देते हुए बोले—देखो तो ससुरे का पाजीपन, रुपया भी ले लिया, फिर भी ठीक बात न बताई।

एक दूसरा व्यक्ति बोला—यह अपने बाप को भी ठीक बात नहीं बता सकते—हम तुम काहे में हैं।

"ख़ैर, अब होना क्या चाहिए?"—एक अन्य व्यक्ति ने पूछा।

"हमारी सलाह में तो कुछ मत देओ।"

"तो नालिश हो जायगी।"

"बड़ा अच्छा है, नालिश में ठीक बात तो मालूम हो जायगी—अधिक तो नहीं ले सकेंगे।"

"फ़ायदा क्या होगा—ख़र्चा भी तो पड़ जायगा। इधर जो बचत छूट में होगी वह ख़र्चे में चली जायगी।"

"हाँ यह बात तो जरूर है। फिर?" इसी समय रघुराजसिंह आ गया। उसने लोगों को जमा देख कर पूछा—"क्या मामला है?"

एक ने उत्तर दिया—मामला क्या, यही सलाह हो रही है कि लगान देना चाहिए या नहीं।

"लगान नहीं दिया जायगा।" रघुराजसिंह ने दृढ़तापूर्वक कहा—"रुपए में चार आने लेने पर राज़ी हों तो दे दो, नहीं तो मत दो।"

इस पर रघुराजसिंह से लोगों ने तर्क-वितर्क किया। परन्तु रघुराजसिंह ने कहा—जो कुछ होगा, देखा जायगा; पर लगान चार आने से अधिक नहीं दिया जायगा।

"अच्छी बात है, यही तय रहा।"—दो-चार आदमियों ने एक स्वर से कहा।

* * *

"अरे दादा! डेरे में तो बड़ी बेतरह हो रही है।"—यह कहता हुआ एक सोलह-सत्रह वर्ष का लड़का रघुराजसिंह के पास आया।

रघुराजसिंह ने पूछा—क्या हो रही है?

"कारिन्दा खाल उड़वाए दे रहा है। मोहन चाचा को इतना पिटवाया है कि बेहोश पड़े हैं, मुँह से ख़ून बह रहा है।"

"सच?"

"सच्ची कहता हूँ दाऊ, तुम जाकर देख लो न!"

रघुराजसिंह की आँखें रक्तवर्ण हो गईं। उसने कहा—उन्हें लगान लेना है तो जाकर अदालत में दावा करें, पिटवाने का उन्हें कौन अधिकार है।

"यही बात मोहन चाचा ने भी कही थी। इस पर कारिन्दा बोला—'ऐसे हम ज़रा-ज़रा सी बात पर अदालत दौड़ें तो ज़मींदारी कर चुके।' तब मोहन चाचा ने कुछ और कहा, बस उसने गुड़ैतों को हुकुम दे दिया, उन्होंने मारते-मारते बेदम कर दिया।"

"इस कारिन्दे की मौत आई है।" रघुराजसिंह यह वाक्य समाप्त भी न करने पाया था कि बाहर से आवाज़ आई—"रघुराजसिंह!"

रघुराजसिंह ने पूछा—कौन है?

"हम हैं गुड़ैत, चलो जिलेदार साहब बुलाते हैं।"

गुड़ैत और सिपाही कारिन्दे को 'जिलेदार' कहा करते थे।

रघुराजसिंह ने कहा—"आते हैं।" यह कह कर वह अपने घर की एक कोठरी के भीतर घुस गया और थोड़ी देर पश्चात् धोती की फेंट कसता हुआ बाहर निकला। उसकी माता तथा पत्नी अवाक् होकर खड़ी ताकती रहीं।

रघुराजसिंह अकड़ता हुआ कारिन्दे के सम्मुख पहुँचा। कारिन्दे ने उसे देखते ही पूछा—लगान लाए?

रघुराजसिंह ने कहा—नहीं।

यह कह कर उसने अपने चारों ओर देखा। एक ओर मोहन चाचा पड़े कराह रहे थे। दूसरी ओर दो आदमी गोला-लाठी बने पड़े थे। तीसरी ओर एक आदमी पक्की चट्टान पर, जो धूप के कारण जल रही थी, खड़ा किया गया था। वह शीघ्रतापूर्वक एक पैर उठाता था, दूसरा धरता था और कष्ट के कारण चिल्ला रहा था। एक आदमी दोनों हाथ बाँध कर नीम से लटकाया गया था। यह दृश्य देख कर रघुराजसिंह की आँखों में ख़ून उतर आया।

कारिन्दे ने डपट कर कहा—देखते क्या हो, लगान निकालो, नहीं यही दशा तुम्हारी भी होगी।

"मेरी ऐसी दशा करने वाला, अभी इस पृथ्वी पर नहीं जन्मा है जिलेदार साहब।"

"हाँ! यह घमण्ड है?"

"घमण्ड नहीं, परमात्मा का भरोसा है।"

"अच्छी बात है!" यह कह कर कारिन्दे ने गुड़ैतों की ओर देख कर कहा—"इन्हें बाँध कर उलटा लटका दो।"

गुड़ैत और सिपाही रघुराजसिंह की ओर बढ़े, परन्तु इधर रघुराजसिंह उछल कर कारिन्दे की छाती पर चढ़ बैठा और जब तक सिपाही उसके पास पहुँचे, तब तक उसने धोती की फेंट में से एक बड़ा चाक़ू निकाल कर कारिन्दे साहब की छाती में घुसेड़ दिया। कारिन्दे साहब दो-चार बार हाथ पैर फटफटा कर ठण्डे हो गए। यह दशा देखते ही गुड़ैत तथा सिपाही तो भागे। इधर उपस्थित कृषकों ने रघुराजसिंह से कहा—अरे भइया, यह क्या गजब किया—अब सब लोग फाँसी......।

रघुराजसिंह बोल उठा—कदापि नहीं। मैंने अकेले यह काम किया है और अकेले ही इसका फल भुगतने को तैयार हूँ, और किसी का बाल न बाँका होने दूँगा।

"परन्तु यह काहे किया भइया?"

"यदि एक-दो आदमी की जान जाने से गाँव भर का कष्ट कटता हो, तो कोई हर्ज की बात नहीं। मुझे फाँसी होगी तो हो जाय, पर गाँव भर तो दुख से छुटकारा पाएगा। यह हरामज़ादा गाँव भर को दिक करता।"—यह कह कर रघुराजसिंह चल दिया?

एक ने पूछा—अब चले कहाँ?

"थाने पर जाता हूँ।"

यह कह कर रघुराजसिंह अकड़ता हुआ चल दिया। सब लोग अवाक् होकर उसकी ओर ताकते रह गए।

मेरा प्रेम

[श्री० लक्ष्मीनारायण जी अग्रवाल]

जिस प्रकार है प्रेम मीन का निर्मल जल से,
जिस प्रकार है प्रेम शूर का युद्ध-स्थल से,
जिस प्रकार है प्रेम परस्पर नीर-क्षीर का,
जिस प्रकार है प्रेम धरा पर वीर-धीर का,
जैसे अलि-कुल कमल से, करता जग में प्रेम है।
वैसे ही, उससे अधिक, मेरा उस पर प्रेम है॥

पुष्प

[श्री० लक्ष्मीनारायण जी अग्रवाल]

कहाँ गई वह सुमन तुम्हारी सरस सुवास?
लीन हो गया कहाँ आज नीरव मृदु हास?
क्या आता है याद तुझे अब वह उद्यान?
मृदु टहनी में जहाँ खिला था कर रस पान।
बना हुआ था बाग़ में, फूलों का सिरताज जब।
कहाँ गया सौरभ सुखद, औ' तेरा अभिमान अब?

नारी-जीवन

[श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या—२९

[पत्र वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

कहूँ क्या क्यों अब तक
हो सका नहीं इस विधि से कार्य,
कहती हो तुम ठीक बहुत हैं
पथ में बाधाएँ अनिवार्य ;

किन्तु बात यह है—भारत की
ललनाएँ हैं मूर्ख-अजान,
जग की ललनाओं में भाषा—
भेद, स्थान का भेद महान।

मिल पातीं वे नहीं इसीसे,
एक साथ होकर कुछ काम
होता नहीं समझ पड़ता है
सबको बस यह—विधि है वाम।

उठा न क्यों होगा विदुषी
ललना-जन में यह भव्य विचार?
पर परिणत वे कर न सकी हैं
उसे कार्य में किसी प्रकार।

घबड़ाने की बात नहीं है
होगा धीरे-धीरे काम,
जो विचार उठते हैं उनका
होकर ही रहता परिणाम।

पैदा होगी कोई ललना
ऐसी प्रतिभावती विशेष,
जिसके महा तेज से फीका
पड़ जावेगा स्वयं दिनेश।

जो सङ्गठित करेगी सारी
ललनाओं को सरलतया,
उनमें लावेगी नवीन वह
भाव और उत्साह नया,

एक पताका के नीचे फिर
करके एकत्रित उनको
उन पर जादू करके, करके
पौरुष-पाठ-पठित उनको।

आधी दुनिया नर-समाज से
युक्ति-सहित वह लेगी छीन,
स्थापित उनका राज्य करेगी
जो हैं जग में बहु विधि दीन।

उसी समय होगा ललनाओं
की उन्नति का शुभ आरम्भ
तब टूटेगा नर-समाज की
स्वीय श्रेष्ठता का सब दम्भ।

उसी सङ्गठन से भारत-
ललनाओं का होगा शुभस्थान,
वे होंगी तन से बलिष्ठ,
प्रतिभामय, सहित आत्म-सम्मान,

हस्तामलक समान सभी भू-
मण्डल तब उनको होंगे,
परिचारक सम जग के सारे
तत्व प्रबल उनको होंगे।

स्थल में, जल में और पवन में
गति होगी उनकी निर्बाध,
पूरी हुए बिना न रहेगी
उनकी कोई उत्तम साध।

बहिन, सुनाती हूँ मैं तुमको
अब अपना आगे का हाल,
धीरे-धीरे चली वहाँ से
मैं, था बुरा हृदय का हाल।

चली गई जब बहुत दूर मैं,
कई पुरुष आए तब पास,
कहने लगे—"तुम्हारे हित तो
खुला हमारा है आवास।"

ये थे वही वृद्ध-सम्मुख जो
थे मुझको धिक्कार रहे,
उससे तनिक दूर आने पर,
मुझ पर तन-मन वार रहे।

कहा एक ने—"मूर्ख वृद्ध है,
मूल्य तुम्हारा क्या जाने,
बड़ा कुटिल था, वह देता था
तुम्हें कष्ट नित मनमाने,

दूर हो गया अब वह सारा
कष्ट तुम्हारा, साथ चलो,
कष्ट दूर करने को हमने
था धिक्कारा, साथ चलो।"

उनमें से नवयुवक मुझे एक
भोला-भाला दीख पड़ा,
कहता कुछ था नहीं, देखता
था मुझको चुपचाप खड़ा।

उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में
थी अनुकम्पा की छाया,
उसके मुख पर दीख न पड़ती
थी दुर्जनता की माया।

उससे मैंने कहा कि "भाई
आश्रय दो मुझको इस काल",
उसने कहा—"बहिन, मुझको है
अति दुख देख तुम्हारा हाल।

चलो हमारे घर को तुम तो
वहाँ मिलेगा सब आराम,
बाँका बाल न होगा, होंगे
अगर नहीं मुझसे विधि वाम।"

❀ ❀ ❀

पत्र-संख्या—३०

[बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,

तुम्हारा पत्र प्राप्त कर
बहुत हुआ मुझको सन्तोष,
उज्ज्वल है ललना-भविष्य, हैं
यद्यपि वे सब अभी सदोष।

ईश्वर करे तुम्हारा कहना
हो जावे अक्षरशः सत्य,
सत्य न क्यों होगा, रह सकता
एक दशा का क्या सातत्य ?

पर शङ्का है मुझे अभी कुछ,
तब नर-नारी का सम्बन्ध
कैसा होगा ? दोनों होंगे
अपने-अपने मद में अन्ध;

होंगे उनमें युद्ध परस्पर
होगा नर-नारी का नाश,
क्या होगा मैं—सोच न सकती
तुम्हीं मुझे देना सुप्रकाश।

बहिन, तुम्हारा भाग्य प्रबल था
जो सज्जन से भेंट हुई,
पर क्या मालुम अभी कि तुमसे
कैसे जन से भेंट हुई।

तुम पर क्या बीती होगी, मैं
कर न सकी इसका अनुमान,
रहता लगा हर समय मेरा
अब तो उसी ओर है ध्यान।

एक पत्र में पा सकती हूँ
बहुत तनिक सा मैं तो हाल,
अस्तु प्रकट होने दो मुझ पर
शनैः-शनैः घटना-जञ्जाल।

जो रुचिकर है उसका पाना
शनैः-शनैः ही है उत्तम,
श्रेष्ठ वस्तुएँ मिलतीं जग में
शनैः-शनैः उस पर भी कम।

बहिन, सुनाती हूँ मैं तुमको
अब अपना आगे का हाल,
नौकर ने कर दरबानों को
डाला मदिरा से बेहाल।

अधिपति जी को बुला भेजने
के पहले ही मैं उस रात,
घर से बाहर निकल गई चुप
ज्ञात न हुई किसी को बात।

तुरत रेलगाड़ी के द्वारा
बाहर हुए नगर से हम,
यों दुष्टों से पिण्ड छुड़ा कर
आई मेरे दम में दम।

भासित हुआ मुझे विपत्ति से
पा जाना यों छुटकारा,
मानो मैंने ग्रहण किया हो
उड़ करके नभ का तारा।

जो कि असम्भव था वह सम्भव
ईश्वर ने कर दिखलाया,
अथवा सच्ची पवित्रता ने
वह उपाय था सिखलाया।

हो उद्देश्य पवित्र, न साधन
हो पवित्र तो हानि नहीं,
करना हो अपवित्र काम, मन
हो पवित्र तो हानि नहीं।

जहाँ न होता है विवेक, मन
की पवित्रता जहाँ नहीं,
कितना पावन कार्य क्यों न हो
फल मिलता कुछ वहाँ नहीं।

अब थी आधी रात, अकेले
थे डब्बे पर दोनों हम,
चलती शीतल पवन हर रही
थी नौकर के तन का श्रम।

पा अवसर उपयुक्त, समुत्तेजित
वह हुआ, बढ़ा आगे,
नीचों के मन के बन्धन बस
होते हैं कच्चे धागे।

उनको लज्जा नहीं, भय नहीं,
पवित्रता का ध्यान नहीं
अपर-हिताहित के विचार का
उनके मन में स्थान नहीं।

बोला वह—"अब करो कामना
पूरी प्रिये हमारी तुम,
मेरी रानी सदा रहोगी,
हो प्राणों से प्यारी तुम।"

मैंने कहा—"अभी ठहरो तुम,
आगे देखा जावेगा।"
उसने कहा कि "इससे अच्छा
समय और कब आवेगा।"

"द्विविधा में दोऊ गए—माया मिली, न राम !!"

सी० आई० डी० विभाग में स्त्रियाँ

लन्दन की मेट्रॉपोलीटन पुलीस के चीफ़-कमिश्नर को होम सेक्रेटरी ने सी० आई० डी० विभाग में कुछ युवती स्त्रियों के रखने की सरकारी स्वीकृति दे दी है। ये युवतियाँ सर्वसाधारण की पोशाक में सी० आई० डी० विभाग का कार्य किया करेंगी।

इधर कुछ वर्षों से वहाँ के अनेक प्रान्तीय पुलीस-विभागों में औरतें ख़ुफ़िया पुलीस का कार्य कर रही हैं। सी० आई० डी० विभाग के अधिकारी अपने कमिश्नरों पर इस बात के लिए ज़ोर डालते रहे हैं कि वे सरकार से कह कर इस विभाग में कुछ आवश्यक योग्यता वाली स्त्रियों के रखने का नियम करा लें। इङ्गलैण्ड के बाहर दूसरे देशों में भी पुलीस-विभाग में स्त्रियों के रखने की पद्धति है।

एक बार एक सी० आई० डी० विभाग में कार्य करने वाली स्त्री ने कहा कि हम लोगों को अब तक अपने ओष्ठ रँगने या पाउडर प्रयोग करने के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं मिला। वास्तव में हम लोगों को सर्वसाधारण की ही तरह कपड़े आदि पहनने के लिए अधिक उत्साहित किया जाता है। सब ख़ुफ़िया अफ़सरों की तरह हम लोगों को भी कपड़ा वग़ैरह के लिए भत्ता मिलता है।

उपर्युक्त बात बतलाने वाली स्त्री उमर में २३ या २४ वर्ष से अधिक की न होगी। उसे अपने कार्य में पूर्ण उत्साह था। पहले वह सरकार के गृह-विभाग में कार्य करती थी, परन्तु सरकार की तरफ़ से यह विज्ञप्ति निकलने पर कि पुलीस के कमिश्नर सी० आई० डी० विभाग में २२ से ३५ वर्ष तक की अवस्था वाली स्त्रियों को ६ महीने के ट्रायल पर नियुक्त कर सकते हैं, उसने सी० आई० डी० विभाग में जगह के लिए आवेदन-पत्र भेजा।

६ महीने के ट्रायल के बाद, एरिया सुपरिण्टेण्डेण्टों के द्वारा डिवीज़नल ख़ुफ़िया-इन्सपेक्टर की असिस्टेण्ट कमिश्नर के पास सिफ़ारिश पहुँचने पर या तो उस स्त्री की नियुक्ति हो जाया करेगी या 'पुलीस-कार्य के लिए अयोग्य' कह कर उससे इस्तीफ़ा दे देने के लिए कह दिया जायगा।

पुरुष-वेष में ख़ुफ़िया पुलीस (सी० आई० डी०) विभाग की एक उच्च पदाधिकारिणी अमेरिकन महिला।

स्त्री ख़ुफ़िया-पुलीस का मुख्य कार्य सी० आई० डी० विभाग को औरतों की जाँच आदि के कार्य में सहायता पहुँचाना होगा। बहुत सी बातें स्त्री, स्त्री से प्रकट कर देती है, परन्तु पुरुष-ख़ुफ़िया के प्रश्न करने पर वही बात प्रकट करने में वह सङ्कोच करती है।

साथ में केवल एक वारण्ट-कार्ड

एक ख़ून के मामले में स्त्री-ख़ुफ़िया के कारण इस बात का पता लग गया कि रसोई के बर्तन पुरुष द्वारा माँजे गए थे, क्योंकि यदि वे ही बर्तन किसी स्त्री द्वारा माँजे गए होते, तो वे बर्तनों के पास ही रक्खी हुई एक विशेष वस्तु द्वारा साफ़ किए गए होते और उस हालत में वे अधिक साफ़ भी होते। सम्भवतः पुरुष उस विशेष वस्तु द्वारा बर्तन साफ़ करने का उपाय ही नहीं जानता। स्त्री-ख़ुफ़िया ही इन बातों का रहस्य समझ सकती थी, पुरुष-ख़ुफ़िया ने इस ओर ख़्याल ही न किया होता।

पुरुष-वेष में पुलीस-विभाग की एक उच्च पदाधिकारिणी अमेरिकन महिला।

कहीं-कहीं सी० आई० डी० अफ़सरों के लिए स्त्री-ख़ुफ़िया अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित होगी। रात्रि के क्लबों में वे बहुत अच्छा कार्य कर सकेंगी। अभी तक पुरुष-ख़ुफ़िया को अपना रूप बदल कर वहाँ जाना पड़ता था, जिसे चालाक पुलीस-कमिश्नर प्रायः पहचान जाता था। अब स्त्री-ख़ुफ़िया हो जाने से भविष्य में पुरुष-ख़ुफ़िया के साथ कोई आकर्षक युवती ख़ुफ़िया भी चली जाया करेगी।

उनके पास हथकड़ियाँ या रिवॉल्वर नहीं रहेंगे, केवल एक वारण्ट-कार्ड रहेगा, जैसा कि सर्वसाधारण की पोशाक में रहने वाले अफ़सरों के पास रहता है।

लन्दन के मेट्रॉपोलीटन पुलीस-केन्द्र की प्रत्येक पुलीस-चौकी में कम से कम एक औरत सी० आई० डी० अफ़सर रहा करेगी। इन स्त्री-सी० आई० डी० अफ़सरों की एक केन्द्रीय संस्था भी रहेगी, जोकि सी० आई० डी० विभाग की केन्द्रीय संस्था से संयुक्त रहेगी। थोड़े समय के बाद एक स्त्री चीफ़ ख़ुफ़िया इन्स्पेक्टर नियुक्त की जायगी, जिसकी मातहत में चार स्त्री-ख़ुफ़िया इन्स्पेक्टर रहेंगी। कोई भी स्त्री-ख़ुफ़िया "वायुयान सेनाओं" में अपना कार्य न करेगी। हत्या की घटना के अवसर पर, सम्भव है, चीफ़ ख़ुफ़िया इन्स्पेक्टर या सुपरिण्टेण्डेण्ट के साथ घटनास्थल पर जाना पड़े।

इन नई स्त्री-ख़ुफ़ियों के लिए यार्ड में एक विशेष कमरा बनवाया जा रहा है।

स्त्री-ख़ुफ़िया विभाग का उद्घाटन, अभी ६ महीने के ट्रायल पर किया जा रहा है, परन्तु आवेदन-पत्र भेजने वाली स्त्रियाँ इसे स्थायी समझ चुकी हैं।

—संयोगिता देवी मेहता

*　　*　　*

भारतवासियों का स्वास्थ्य

वास्तव में देखा जाय तो आजकल संसार में, भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है, जो स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का पूर्ण-रूप से पालन न करने के कारण, सब से अधिक पतितावस्था में है। शारीरिक अयोग्यता, अस्वस्थता, अकाल-मृत्यु, बाल-मृत्यु तथा अनेक प्रकार के भयङ्कर रोग इसे खाने के लिए मानो मुँह फैलाए बैठे हैं। भारतवर्ष की मृत्यु की अधिकता संसार से बढ़ी-चढ़ी है। इसके कई कारणों में असाध्य रोगों तथा खान-पान सम्बन्धी नियमों की अनभिज्ञता मुख्य हैं और इसका एकमात्र कारण विद्या का अभाव है। अविद्या के कारण इस देश के अधिवासी साधारण से साधारण नियमों को भी नहीं जानते। हमने देहात में देखा है कि गर्मी की प्रचण्ड दोपहरी में किसान तालाबों या गढ़ों का मैला तथा सड़ा पानी पी लेते हैं। इसी तरह खाने की चीज़ों, स्वच्छता की ओर भी वे

कम ध्यान देते हैं। बहुधा वे ग़रीबी या लोभवश सड़े अन्न भी खा लेते हैं। कभी-कभी तो वे केवल आलस्य-वश और जान-बूझ कर ख़राब अन्न खा लिया करते हैं। खाने के समय बर्तन की स्वच्छता की ओर भी वे बहुत कम ध्यान देते हैं। और मुश्किल तो यह है कि बताने और समझाने पर भी वे इन बातों पर ध्यान नहीं देते।

हिन्दुस्तान में साधारणतया मकान स्वास्थ्य-सम्बन्धी सिद्धान्तों पर दृष्टि रखते हुए नहीं बनाए जाते। न तो उनमें रोशनदान ही रहते हैं और न वे प्रतिदिन साफ़ ही किए जाते हैं। हवा की तो उन मकानों में गुञ्जायश ही नहीं होती। हमेशा देखा जाता है कि मकान के कोने में या पिछले हिस्सों में सड़ी-गली चीज़ें फेंकी जाती हैं। ये चीज़ें दुर्गन्ध फैलाती हैं और उनसे नाना प्रकार के विषैले जीव-जन्तु उत्पन्न होते हैं; जो मनुष्य के शरीर में प्रवेश करके रोग उत्पन्न करते हैं। भारतवर्ष के रस्म-रिवाज भी लगभग ऐसे ही हैं, जिनके कारण भारतीयों का लक्ष्य स्वच्छता की तरफ़ बिलकुल नहीं जाने पाता। मकानों में रोशनदान का न होना, पड़ोसियों का गन्दी हालत में रहना, सील के कारण जीव-जन्तुओं का पैदा होना, उसी में बाल-बच्चों का पैदा होना, मकान के अन्दर ही पाख़ाने का होना और उन पाख़ानों की सफ़ाई की तरफ़ ध्यान न देना तथा गन्दे पानी के निकलने का मार्ग न होना, इत्यादि बातें इतनी भयानक हैं कि इनमें ज़रा भी असावधानी हुई कि मनुष्य रोग-ग्रस्त हो जाता है।

यह तो हुई देहातों की बात, अब क़स्बों और शहरों को लीजिए। शहरों में तो यह समस्या और भी बड़ी ही जटिल हो गई है। आबादी की बहुलता के कारण शहरों की स्वास्थ्य-सम्बन्धी दशा बहुत ख़राब रहती है। खचा-खच मनुष्यों का भरना, जगह एवं पानी का अभाव, स्वच्छ वायु एवं पर्याप्त रोशनी की कमी, मैली-कुचैली गलियाँ, छोटे पाख़ाने और उनमें जाने वालों की बहुतायत, गन्दगी की अत्यधिकता, मनुष्यों और गाड़ियों का बारम्बार आवागमन, बिना रोक-टोक का व्यभिचार, ये बातें शहरों में विशेष हानिप्रद हैं। गाड़ियों की आमद-रफ़्त से धूल उड़ना, वस्तुओं के उच्छिष्ट भाग का सड़कों पर सड़ना, ख़राब सड़कें, कोनों और नालियों में वस्तुओं का सड़ना आदि बातें मानवीय जीवन के लिए कितनी हानिप्रद हैं, यह बताने की आवश्यकता नहीं। इसीलिए मनुष्य को अपनी एवं अपने पड़ोसी की स्वास्थ्य-सम्बन्धी हालत पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। अपने तथा अपने चारों ओर रहने वालों की भूलों को ढूँढ कर उनको दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे उत्तम स्वास्थ्य के साधन सुलभ हों। गाँवों और क़स्बों में म्युनिसिपैलिटियाँ नहीं होतीं, इसलिए वहाँ यदि स्वास्थ्य के नियमों एवं साधनों की ओर ध्यान न रहे तो कोई बात नहीं। किन्तु शहरों में तो म्युनिसिपैलिटियाँ होती हैं, फिर भी सफ़ाई में कमी रहती है, यह आश्चर्य का विषय है। और तो और, कहीं-कहीं म्युनिसिपैलि-टियों के आस-पास भी सफ़ाई नज़र नहीं आती।

स्थानीय अधिकारियों का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे जनता में विद्या का प्रचार करें और हानिकर वस्तुओं एवं सिद्धान्तों की ख़राबियों से उन्हें परिचित करें, जिससे जनता की शारीरिक और मानसिक उन्नति हो। इसके लिए बॉयस्कोपों, मैजिक लालटेनों, प्रदर्शि-नियों द्वारा स्वास्थ्य के सिद्धान्तों को, मनोरञ्जक तरीक़े से जनता को सप्ताह में दो बार बताते रहना चाहिए, जिससे वह उन नियमों को भूल न जाय और उन पर चले। दूसरा उपाय यह भी है कि ऐसी सामाजिक संस्थाएँ (Social Service Leagues) क़ायम हो जायँ, जो जनता में स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का प्रचार करें एवं उपरोक्त विषयों पर भाषण आदि दें। इससे भी बहुत-कुछ सुधार हो सकता है। डॉक्टरों का भी यही प्रधान कर्तव्य होना चाहिए कि जब वे बीमारों के मकानों पर जायँ, तो उचित औषधि देने के अतिरिक्त उन्हें भविष्य में पालन करने के लिए स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों को भी समझा दें, जिससे वे आगे के लिए उस बीमारी तथा अन्य होने वाली बीमारियों से बचें। यह बात मानी हुई है कि डॉक्टर चाहे कितना भी चतुर हो, परन्तु जब तक जनता उत्साह के साथ उसके बताए हुए नियमों को न मानेगी, तब तक लाभ होने की आशा नहीं की जा सकती। जनता को इस योग्य होना चाहिए कि वह अपने सुधार की सूचनाएँ स्वतः अधि-कारियों को दे। और अधिकारियों का प्रधान कर्तव्य यह होना चाहिए कि वे उन सूचनाओं से लाभ उठा कर

उनके अनुसार कार्य करें। धर्म और आचार-विचार की इसमें सहायता लेना व्यर्थ है।

स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों के उल्लङ्घन से बड़े शहरों में बाल-मृत्यु की संख्या बहुत बढ़ रही है। भारतवर्ष में बीस लाख के लगभग बच्चे प्रत्येक वर्ष मर जाते हैं, जिनकी औसत प्रत्येक एक हज़ार मील पर १६७·६ होती है। ब्रिटेन की बाल-मृत्यु प्रत्येक एक हज़ार मील पर ८३ है।

भारत के शहरों में बालकों की मृत्यु का अङ्क इससे भी ज़्यादा बढ़ा हुआ है। सन् १९२१ की रिपोर्ट के अनुसार भारत के बड़े-बड़े शहरों की बाल-मृत्यु का विवरण निम्न-लिखित है :—

	प्रत्येक एक हज़ार मील पर
बम्बई	५५६
कलकत्ता	३८६
कानपुर	५८०
अहमदाबाद	३४८
नागपुर	३५८
बनारस	३१६
लखनऊ	३३१
मद्रास	२८२
कराची	२५६

अब ज़रा इङ्गलैण्ड के दो-एक शहरों से इस संख्या का मिलान कीजिए।

लन्दन	८६
बोस्टन	१०४
बरमिङ्घम	१८३
मैनचेस्टर	१११
लिवरपूल	११७

इन अङ्कों के देखने से पता चलता है कि इस सम्बन्ध में अन्य देशों की अपेक्षा भारतवर्ष की कितनी गिरी हालत है। अथवा अन्य देशों की अपेक्षा यहाँ मानव-जीवन का कितना भयङ्कर बलिदान हो रहा है। मनुष्योचित तेज एवं उत्साह तो इस देश में मानो रहा ही नहीं। इस समय कुछ शहरों में सेवा करने वाली संस्थाएँ बच्चों के हित के लिए तत्परता से कार्य कर रही हैं। बाल-हितकारिणी संस्थाएँ (Child's Welfare League), 'मैटरनिटी होम्स' (Maternity Homes) आदि भी उपर्युक्त कार्य में अपना हाथ बँटा रहे हैं। भारतीय जनता का यह प्रधान कर्तव्य है कि वह अपने देश की आर्थिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी दशा के अनुसार इस भयङ्कर एवं उत्तरोत्तर अभिवृद्धि पाती हुई इस मृत्यु-संख्या को कम करने की चेष्टा करें। इसके लिए डॉक्टरी जाँच, स्वच्छ भूमि, हलका एवं शीघ्र पचने वाला भोजन, मामूली कसरत, ताज़ी हवा, साफ़ मकान इत्यादि बातों की मुख्य आवश्यकता है। और इनमें बहुत से विषय ऐसे हैं, जिनका सुधार जनता स्वयं कर सकती है। अस्तु।

अब थोड़ा सा स्त्रियों की भयङ्कर दशा का भी अवलोकन कीजिए। शहरों में स्त्रियों की मृत्यु-संख्या अत्यन्त बढ़ी हुई है। हमारी महिलाओं की इस गिरी हालत का प्रधान कारण पर्दे की प्रथा है। इसी गन्दी प्रथा ने उन्हें निस्तेज और कमज़ोर बना रक्खा है। इस प्रथा का प्रधान सहायक अँधेरा एवं सील वाला मकान है, जिसमें स्त्रियों का सम्पूर्ण जीवन व्यतीत होता है। भारतीय स्त्रियों को स्वच्छ वायु का सेवन दुर्लभ है, इससे उनकी शरीर-वृद्धि रुक जाती है। कम उम्र में विवाह होना और शीघ्र ही माता बन जाना, बच्चों के लालन-पालन की अनभिज्ञता, जनन-विद्या के ज्ञान की कमी आदि बातें ऐसी हैं, जिनसे स्त्रियों की अस्वस्थता की वृद्धि होती और उनकी मृत्यु-संख्या दिन-प्रतिदिन वृद्धि पा रही है। परन्तु दुख तो इस बात का है कि स्त्रियों की यह दुरवस्था देखते हुए भी पर्दा-प्रथा के प्रेमी उसके समर्थन में एड़ी-चोटी का पसीना एक किए जा रहे हैं!

हम ऊपर कह चुके हैं कि भारतीय जनता प्रतिदिन गन्दा पानी पीती है, बदबूदार मकानों में रहती है, भोजन बहुत कम पाती है, ऐसी दशा में मृत्यु-संख्या यदि बढ़ जाय तो क्या आश्चर्य है!

हिन्दुस्तान की औसत उम्र २३·५ वर्ष है। जापान की ४४·५ और इङ्गलैण्ड की ५३·५ वर्ष है।

सन् १८८५ से १९१० तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में जन्म, मृत्यु और जीवित-संख्याओं का औसत इस प्रकार है:—

पैदाइश-संख्या ...	३·६४ प्रति सैकड़ा
मृत्यु-संख्या ...	३·०८ " "
जीवित-संख्या ...	·५६ " "

सन् १९११ से १९२१ तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में जन्म, मृत्यु और जीवित-संख्या का औसत इस प्रकार है :—

पैदाइश-संख्या	...	३·६९ प्रति सैकड़ा
मृत्यु-संख्या	...	३·४१ " "
जीवित-संख्या	...	·२८ " "

सन् १८८९ से १९२१ तक जीवित जनता की औसत-संख्या ·४८ प्रति सैकड़ा है।

सन् १९२४ में भारतवर्ष के प्रदेशों की पैदाइश और मृत्यु-संख्या का औसत इस प्रकार है :—

प्रदेश	पैदाइश	मृत्यु
देहली	४२·४३ ...	३३·९७
बङ्गाल	२९·५ ...	२५·६
बिहार और उड़ीसा ...	३५·७ ...	२९·१
आसाम	३१·०४ ...	२७·३
संयुक्त-प्रान्त... ...	३४·७२ ...	२८·२९
पञ्जाब	४०·१ ...	४३·४
पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश	२७·० ...	३१·०
मध्य-भारत और बरार	४४·१८ ...	३२·५९
मद्रास	३४·६ ...	२४·५
कुर्ग	२१·१२ ...	४१·०६
बम्बई	३५·६० ...	२७·६३

इसके अतिरिक्त भारतवर्ष में मृत्यु-संख्या के बढ़ने का दूसरा भी कारण है। यहाँ प्लेग, हैज़ा, इन्फ़्लुएन्ज़ा, क्षय आदि भयङ्कर रोग समय-समय पर अपना प्रभाव दिखाते रहते हैं। सन् १९१८ में अकेले इन्फ़्लुएन्ज़ा से लगभग ७० लाख मनुष्य नष्ट हो गए थे। प्लेग और हैज़ा तो प्रत्येक वर्ष हानि पहुँचाते ही रहते हैं। जब तक स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का सम्यक् पालन नहीं होगा, तब तक मृत्यु की बढ़ती हुई संख्या में कमी नहीं हो सकती। हमारा इस समय महत्वपूर्ण कर्तव्य यह होना चाहिए कि स्वास्थ्य के नियमों पर स्वयं चलें और अन्य लोगों को भी चलाने का प्रयत्न करें। परन्तु इससे कर्तव्य का अन्त नहीं होता। हमारे साथ ही साथ सरकार को भी भारत के स्वास्थ्य की अपने स्वास्थ्य की तरह चिन्ता करनी चाहिए।

इस समय सरकार का कर्तव्य है कि लोगों को मद्य और रोगों से बचाए। शराब का शरीर पर भारी असर पड़ता है। इसी से रोगों की वृद्धि होती है। गरम मुल्कों में तो यह बहुत ही हानिकारक है। मद्यपान की रोक तो सरकार का मुख्य ध्येय एवं प्रमुख नीति होना चाहिए। इसके साथ ही रोगोत्पत्ति के कारणों की रुकावट भी सरकार का प्रारम्भिक कर्तव्य है। यदि हम भारतवर्ष की तन्दुरुस्ती का मिलान अन्य देशों से करते हैं, तो निराश होकर हमें कहना पड़ता है कि सरकार का ध्यान भारतवर्ष के स्वास्थ्य पर कुछ नहीं है। सरकार की ओर से दवाख़ाने बहुत ही कम हैं। गाँवों में तो बिल्कुल ही नहीं हैं। यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिए कि भारतवर्ष की तीन चौथाई आबादी गाँवों में ही है। ऐसी दशा में सरकार को इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। यह कान में तेल डाल कर सोने का समय नहीं, न यह कह देने का समय है कि बजट में गुञ्जाइश नहीं। यद्यपि थोड़ा-बहुत प्रबन्ध सरकार की ओर से है अवश्य, परन्तु उसमें बहुत वृद्धि की आवश्यकता है। जनता के हितार्थ सेवा-सदनों की तरह श्रीमान लोगों ने कई दवाख़ाने खोल रक्खे हैं, जो अच्छा कार्य कर रहे हैं।

—दीनानाथ व्यास, विशारद

* * *

चुम्बन

चुम्बन की प्रथा अनेक देशों में प्रचलित है। भारतवर्ष में भी यह रिवाज कम नहीं है। परन्तु पश्चिमी देशों में तो इसका चलन बहुत ही अधिक है। भारतवर्ष में अधिकतर बच्चों का ही चुम्बन करते हैं। बड़े होने पर पति-पत्नी के अलावा चुम्बन करना अच्छा नहीं समझा जाता है। परन्तु यूरोप और अमेरिका में चुम्बन करना शिष्टाचार माना जाता है। स्त्री-पुरुष एक-दूसरे से मिलने पर या अलग होने पर एक-दूसरे को चुम्बन करते हैं। पिता पुत्री का और भाई बहिन का गाल चूम लेता है।

मॉल (Moll) ने चुम्बन की व्याख्या अदमनीय रति-विषयक आवेग किया है। लुबक (Lubbock) का कथन है कि चुम्बन से प्रेम की प्राकृतिक भाषा प्रतिभात होती है। स्टर्न (Stern) की राय में चुम्बन का विकाश प्रेम के चिह्न-रूप में हाल में ही हुआ है।

वह चुम्बन को एक कला मानता है और जिसका सीखना उसके निकट आवश्यक है।

चुम्बन सार्वभौमिक प्रथा नहीं है। कई देशों में इसके कई रूप हैं। जैसे पीठ पर हाथ फेरना, मस्तक सूँघना और हाथ मिलाना आदि। भारतवर्ष में किसी समय गुरुजनों द्वारा अपने से छोटों के मस्तक सूँघने की प्रथा प्रचलित थी। न्यूज़ीलैण्ड की मयारी (Madri) जाति, टहटियन, पापुअन और ऑस्ट्रेलियन जातियाँ तथा अमेरिका में एस्किमो (Eskimo), फ्रुजियन्स (Fuguans) जातियाँ भी चुम्बन के रूप में प्रेम प्रकट नहीं किया करतीं। नाइगर कोस्ट की जेकरियो जाति अपने शिशुओं को प्यार करते समय उनके गालों पर मुँह रगड़ देती है। एस्किमो भी प्रेम करते समय चुम्बन का व्यवहार नहीं करते, किन्तु सूँघते हैं या नाक रगड़ देते हैं। चटगाँव (आसाम) की पार्वतीय जातियाँ 'मुझे चूमो' ये स्थान पर 'मुझे सूँघो' कहती हैं। पोलीविशयन लोग गालों पर ओठ रखने के बजाय नाक पर रखते हैं। मलय पेनिनसुला (Malay Peninsula) भर में चुम्बन प्रचलित नहीं है। सुमाली (Somalis), टस्मिनयर (Tasmanians) और गायना (Guinea) के इण्डियन्स भी चुम्बन से अनभिज्ञ हैं। नॉर्थ अमेरिकन इण्डियनों का चुम्बन ओठों को गालों पर धीरे से रख देना मात्र होता है, न कोई शब्द और न कोई गति। इस प्रकार लगभग आधा संसार चुम्बन से अनभिज्ञ है। प्रेम प्रकट करने की रीति चुम्बन के अतिरिक्त एक-दूसरे को गले लगाना या हृदय से लगाना भी है।

इङ्गलैण्ड में चुम्बन का सब से अधिक प्रचार है। वहाँ पार्लामेण्ट के उम्मेदवार कभी-कभी चुम्बन देकर या लेकर वोट संग्रह करते हैं। सन् १७८४ में डेवनशायर की डचेस ने, जो एक सुन्दरी युवती थी, फ़ॉक्स के लिए एक बक़रक़स्साब को चुम्बन देकर उससे वोट डलवाया था। फ़ॉक्स की इस निर्वाचन में विजय हुई थी और भला होती क्यों न?

इधर हाल में पार्लामेण्ट के स्त्री-उम्मेदवारों ने और पुरुष उम्मेदवारों की स्त्रियों ने चुम्बन दे-देकर वोट प्राप्त किए हैं। गत शताब्दी में एक उम्मेदवार ने वोट-दाताओं की पत्नियों का चुम्बन मुँह में गिन्नी रख कर किया था, फल-स्वरूप पार्लामेण्ट की मेम्बरी से हटा दिया गया था।

होरेशियो फ्रिजगिग ने वोटरों के बच्चों को चूम-चूम कर वोट प्राप्त किए थे। सर जॉन गनजोनी, जो एक सुन्दर अविवाहित नवयुवक था, चुम्बन द्वारा ही वोट प्राप्त किए थे।

परन्तु इधर कुछ लोग वहाँ चुम्बन के विरुद्ध भी हो चले हैं। कई चुम्बन-विरोधिनी सभाएँ भी स्थापित हुई हैं। इङ्गलैण्ड के कुछ डॉक्टरों की राय में बच्चों का चुम्बन करना एकदम रोक देना चाहिए। डिपथिरिया बीमारी के बाहुल्य का कारण वे चुम्बन को बताते हैं। उनकी राय में चुम्बन के कारण प्रति वर्ष सैकड़ों शिशु काल के ग्रास होते हैं।

आजकल यूरोप में स्त्रियाँ और उनकी नक़ल पर उतारू हमारे देश की स्त्रियाँ लिपस्टिक और पाउडर का अपने चेहरों पर प्रयोग करती हैं। लिपस्टिक से ओंठ रँगे जाते हैं। कुछ अमेरिकन डॉक्टरों ने लिपस्टिक और पाउडर के व्यवहार के विरुद्ध आवाज़ें बुलन्द की हैं। उनका कहना है कि इनमें विष के जराग्रु होते हैं। पाउडर लगाई हुई स्त्री का चुम्बन करना मानो हज़ारों बीमारियों के कीटाणुओं को अपने शरीर में प्रवेश कराना है। इन डॉक्टरों की राय में एक चुम्बन में ४०,००० बैक्टीरियाँ (कीड़े) होते हैं।

चुम्बन गालों या ओठों पर लिया जाता है। साधारणतया यूरोप में चुम्बन ओठों पर लेते हैं। वहाँ तो चुम्बन कला का रूप धारण कर रहा है। विरोध होने पर भी इसका चलन दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है। वीयना नगर की सिटी-कौन्सिल ने तोतों के चुम्बन के विरुद्ध क़ानून बना दिया है, क्योंकि वहाँ इससे कई मृत्युएँ हो गई थीं। उधर तोतों के चुम्बन का प्रचार बहुत है। अमेरिका, फ्रान्स और ऑस्ट्रिया में चुम्बन-विरोधिनी अनेक संस्थाएँ हैं। प्राचीन काल में यूनान में यह नियम था, कि जो पुरुष किसी स्त्री को पब्लिक में चुम्बन करेगा, वह मृत्यु-दण्ड पावेगा। रूस में भी किसी समय इसी प्रकार का नियम था। किसी समय कॉलोन (Cologne) नगर में ऐसे ही एक नियम के कारण सैकड़ों स्त्री-पुरुष अग्निदेव के ग्रास हुए थे।

—वंशीधर मिश्र, एम० ए०, एल्-एल्० बी०

* * *

आदर्श-विवाह

श्री० महावीरप्रसाद जी पोद्दार और श्रीमती कमलकुमारी देवी। पोद्दार जी अभी नवयुवक हैं, परन्तु बड़े साहित्य-प्रेमी तथा सुधार-प्रेमी हैं। आपने अभी हाल में अपना विवाह हाथरस-निवासी सेठ लक्ष्मणदास की कन्या सौ० कमलकुमारी से किया है। विवाह सुधारपूर्ण ढङ्ग से हुआ है। रूढ़ियों को पास भी नहीं फटकने दिया। पोद्दार जी ने अपने माता-पिता तथा बन्धु-बान्धवों के घोर विरोध करने पर भी विवाह के पहले स्वयम् कन्या को देख कर विवाह के लिए उसकी अनुमति प्राप्त कर ली थी। विवाह में पर्दा-प्रथा का आश्रय कदापि नहीं लिया गया, और न कुछ दहेज़ लिया गया। केवल २१) रु० में समस्त विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ। विवाह के समय वर-वधू दोनों खद्दर के कपड़े पहने हुए थे। पोद्दार जी के पिता का नाम लाला गोपीराम है। पोद्दार जी कानपुर के निवासी हैं।

पर्दा उठ कर ही रहेगा !

मैं पर्दे में कभी नहीं रही। मैं उतनी ही स्वतन्त्र रही हूँ, जितनी कि कोई अङ्गरेज़-कन्या रहती है—शायद उससे भी अधिक, क्योंकि हर एक अङ्गरेज़ कुमारी को विदेश में एक दूकान चलाने की स्वतन्त्रता नहीं रहती। परन्तु मैं तो हिन्दुस्तान में पैदा हुई और यहीं मेरा पालन-पोषण हुआ। मैं पर्दा-प्रथा के गुण-दोषों से परिचित हूँ, जिसके कारण करोड़ों भारतीय महिलाएँ देश के दैनिक जीवन से पृथक रहती हैं, और मेरी धारणा है कि अन्त में पर्दा उठ कर ही रहेगा।

कहा जाता है कि भारतवर्ष में पर्दे में रहने वाली कुछ स्त्रियाँ राजनैतिक जीवन में महत्वपूर्ण भाग लेती हैं। यह बात सामान्यतया तो नहीं होती; परन्तु कभी-कभी ऐसा होते देखा गया है। अपने-अपने पति और पुत्रों के द्वारा वे इस क्षेत्र में अपना प्रभाव दिखा सकती हैं, और कदाचित् एक अङ्गरेज़ युवती की अपेक्षा कहीं अधिक, जिसे यदि जीवन-पर्यन्त नहीं तो लगभग ३० वर्ष की अवस्था तक अविवाहित रहना पड़ता है।

कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी हैं, जो पर्दे में न रहते हुए भी इतना शान्त जीवन व्यतीत करती हैं मानो वे पर्दे ही में हों। बाधाएँ उन्हें कष्टदायक नहीं होतीं और वे उनसे मुक्त होने का भी प्रयत्न नहीं करतीं। यदि सच पूछा जाय तो उन्हें उनके अस्तित्व का बोध नहीं होता। यात्रा करते समय वे यथासम्भव एकान्त में रहना चाहती हैं। सामाजिक नियम और अपने संस्कारों के कारण उन्हें सबके सामने खुले-मुँह रहने में लज्जा जान पड़ती है। अपने दैनिक जीवन में वे अपने मित्रों से स्वतन्त्रता-पूर्वक मिलती-जुलती हैं, परन्तु वास्तविक स्वतन्त्रता को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करतीं।

आप जानते हैं कि पर्दे का आजकल बहुत थोड़ा महत्व रह गया है। कदाचित उस समय उसकी आवश्यकता थी, जब कि हिन्दुस्तान पर मुसलमानों के विजय प्राप्त करने के समय उसका आविर्भाव हुआ था। उस समय उच्च जाति की हिन्दू स्त्रियाँ अपनी रक्षा के लिए पर्दे में रहने लगीं, पर अब तो यह एक खोखली प्रथा रह गई है, और भावी पीढ़ियों के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि इसका अन्त हो जाय। भविष्य में हिन्दुस्तानी स्त्रियों को मानसिक, नैतिक और शारीरिक विकास का अवसर मिलना चाहिए।

यह एक सन्तोष का चिन्ह नहीं है कि इतनी स्त्रियाँ अपने जीवन और कार्यों को अपने कुटुम्ब के पुरुषों के हाथ में छोड़ कर सन्तुष्ट रहें। इसका तो यही आशय हुआ कि पर्दा-प्रथा ने एक पराधीन स्त्री-जाति की उत्पत्ति की है, जिसमें अपनी बेड़ियों को देखने और तोड़ डालने का साहस अभी तक नहीं है। पर्दे में रह कर वे किसी भी विषय अथवा व्यक्ति के सम्बन्ध में अपना मत नहीं स्थिर कर सकतीं। वे संसार को दूसरे की आँखों से देखती हैं और जीवन का अनुभव दूसरों से प्राप्त करती हैं।

यदि पर्दा-प्रथा के नियम कुछ कम सख़्त कर दिए जायँ, तो बहुत सी स्त्रियाँ, जोकि अभी अपनी स्वतन्त्रता के लिए तड़प रही हैं, फ़ौरन बाहर निकल आएँ। जिन्हें पर्दे के आश्रय में रहना रुचिकर प्रतीत होता है, वे तो अभी भी उसका स्वागत करेंगी, परन्तु उनके बाल-बच्चे बड़े होकर इस प्रथा को एक जीर्ण प्रथा मानने लगेंगे, और एक-दो पीढ़ियों के बाद उन्हें उसकी बेड़ियों में जकड़े रहना कभी भी अच्छा न लगेगा।

इस सुधार का एकमात्र उपाय शिक्षा ही है। पहिले की अपेक्षा आजकल कन्या-शालाओं और कॉलेजों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई है और हिन्दुस्तानी युवतियाँ इङ्गलिस्तान में शिक्षा प्राप्त करने के लिए अधिकाधिक संख्या में जाने लगी हैं। कभी शायद कोई युवती स्वदेश को लौटने पर फिर अपनी इच्छा से पर्दे में रहना पसन्द करे, परन्तु साधारणतया ऐसा होने नहीं पाता और पिता अथवा पति का दबाव ही इसका कारण हो सकता है। धीरे-धीरे जब मेरे समान अधिकाधिक लड़कियाँ स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने लगेंगी तो और बहुत सी उनका अनुकरण करेंगी।

सुधार धीरे-धीरे होना चाहिए। यही एक उपाय है, जिससे बिना किसी अनिष्ट परिणाम के उदाहरण द्वारा पर्दा-प्रथा का अन्त किया जा सकता है। यदि उसे अचानक उठा देने का प्रयत्न किया जायगा, तो भारतवर्ष की सामाजिक व्यवस्था उलट-पलट हो जायगी और स्त्री-जाति कहीं की न रहेगी। क्योंकि सैकड़ों वर्षों तक

प्राधन्य में रहने के पश्चात उनमें स्वतन्त्र विचार का माद्दा नहीं रहा। वैसे पूछा जाय तो अङ्गरेज़ युवतियाँ भी नहीं जानतीं कि अचानक प्राप्त की हुई स्वतन्त्रता का सदुपयोग कैसे किया जाय। जब पहले-पहल मकान छोड़ कर वे बाहर निकलती हैं और नए जीवन और नए वातावरण में उनका कोई पथ प्रदर्शक नहीं होता, तो कभी-कभी उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है।

यह सत्य है कि हिन्दुस्तान में पुरुष-जाति पर्दे के पक्ष में है, और भारतीय परिवार में उन्हें प्रधान समझा जाता है, अतः इस सुधार होने के पहले उन्हें ही शिक्षित करना आवश्यक है। पर्दे में रहने वाली स्त्रियाँ भी, जैसा कि मैं कह चुकी हूँ, प्रभाव द्वारा बहुत कुछ कर सकती हैं, पर अपने आप वे कुछ नहीं कर सकतीं। वे जो कुछ करती हैं, सब पुरुषों द्वारा। एक स्वतन्त्र भारतीय युवती का दायित्व बहुत बड़ा है, उसे अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग इतनी उत्तम रीति से करना चाहिए कि दूसरे पिताओं को वह रुचिकर प्रतीत हो और वे अपनी पुत्रियों को भी स्वतन्त्रता प्रदान करें।

पर्दा उठ जाने पर भारतीय स्त्री-सुधारकों की संख्या बढ़ जायगी। इङ्गलिस्तान के समान भारतवर्ष में भी स्त्रियों और बालकों से सम्बन्ध रखने वाली अनेक समस्याएँ हैं, जिन्हें केवल स्त्रियाँ ही हल कर सकती हैं।

—(महाराजकुमारी) ललिता देवी (बर्दवान)

* * *

आध्यात्मिक शिक्षा

विचार और मस्तिष्क

आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों और छात्रियों को चाहिए कि इस विषय को आरम्भ करने से पहले अपनी शक्तियों को सुरक्षित रक्खें। विचारों में पवित्रता और जीवन में सादगी इसका प्रधान आधार है। ब्रह्मचर्य पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। क्योंकि वीर्य शरीर का राजा है। इसके नष्ट हो जाने पर शरीर रूपी दुनिया में अँधेरा छा जाता है। यही वह प्राकृतिक प्रकाश है, जोकि सब प्रकार के ज्ञान और विद्याओं के प्राप्त करने के लिए बहुत आवश्यक है। आज ब्रह्मचर्य के अभाव से ही भारत में सब प्रकार की दुर्बलताएँ आ घुसी हैं। हर काम में सफलता प्राप्त करने के लिए शारीरिक और मानसिक मज़बूती अत्यावश्यक है और यह मज़बूती वीर्य-रक्षा के बिना नहीं प्राप्त हो सकती। जो अपने को नहीं सुधार सकता, वह दुनिया में कुछ भी नहीं कर सकता और जो ख़ुद को सुधार लेता है, मानो उसने सारे संसार का सुधार कर लिया। जो स्वयं अपना मालिक है, अर्थात् आत्म-बल द्वारा अपने शरीर की दुनिया में राज्य करना जानता है, वही दुनिया के साम्राज्य का भी शासन कर सकता है। जिसने अपने स्वास्थ्य की रक्षा और जीवन-निर्वाह करने का ठीक उपाय नहीं सीखा, वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं। इसलिए अपने पशुत्व को दूर कर, मनुष्यत्व की सच्ची शिक्षा प्राप्त करने के लिए सब से पहले अपना सुधार करना अत्यावश्यक है। इसलिए अपनी कमज़ोरियों, ख़राबियों, बुरी आदतों को हटा कर सदाचारी बनने का रास्ता अख़्त्यार करना चाहिए। आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने वाले उम्मीदवारों को सब से पहले ऊपर लिखी बातों पर पूरा ध्यान देना चाहिए। ज्ञान की खेती करने के लिए दिल-रूपी खेत को सब से पहले साफ़ कर लेना चाहिए।

आध्यात्मिक शिक्षा का सम्बन्ध विचार और मस्तिष्क से है, इसलिए सब से पहले इसी पर विचार करना चाहिए।

तुम एक छोटी सी दौड़ के लिए अपने आपको तैयार करना चाहते हो और चिरकाल से तुम्हें दौड़ने का अभ्यास नहीं है। ऐसी अवस्था में तुम अभ्यास के लिए पहले ही बीस मील दौड़ने न लगोगे। एक छोटे बालक को पढ़ना सिखलाने के लिए पहले ही एक कठिन वैज्ञानिक पुस्तक आरम्भ नहीं कराई जा सकती। इतने पर भी हम देखते हैं कि प्रयुक्त क्रियाओं के उत्तरोत्तर ज्ञान की प्राप्ति और तैयारी के बिना ही लोगों को इनसे भी कहीं ज़्यादा मुश्किल कामों पर लगा दिया जाता है।

शुरू में अपनी किसी बहुत मनभाती चीज़ को लो। एक मिनिट के लिए उसे अपनी आँखों के सामने रक्खो; उसे अपनी कल्पना में देखने की कोशिश करो। अगर तुम्हें ऐसा करने में सफलता न हो तो एक घण्टे के क़रीब और ठहर जाओ और फिर दुबारा कोशिश करो।

इन उपायों से मस्तिष्क की शक्ति क्रमशः बढ़ जायगी। रोज़ अभ्यास करने से मस्तिष्क को फैलाया जा सकता है और इसके द्वारा ऐसे-ऐसे काम कराए जा सकते हैं, जिनका करना पहले असम्भव था।

मस्तिष्क को एक अति सूक्ष्म यन्त्र, या एक 'डायनामो' (गति-जन्य-विद्युद्यन्त्र) समझिए। बिजली पैदा करने वाले एक साधारण डायनामो की भाँति मस्तिष्क विचार पैदा करता है। इस यन्त्र की बनावट को समझने की आवश्यकता है; क्योंकि शरीर-शास्त्रियों का सिद्धान्त है कि मस्तिष्क के ख़ास-ख़ास हिस्से ख़ास-ख़ास काम करते हैं। यह भी माना गया है कि अगर मस्तिष्क को निकम्मा छोड़ दिया जाय, तो इसमें धीरे-धीरे अकर्मण्यता आ जाती है। यहाँ तक कि अगर मस्तिष्क के ख़ास भागों की ओर भी ध्यान न दिया जाय, तो वे भी निर्बल और निकम्मे हो जाते हैं।

मानव-मस्तिष्क दो गोलार्धों का बना है। इन दोनों के बीच एक बहुत गहरी दरार है। उसके बड़े भाग में श्वेत तन्तुमय पदार्थ का एक मोटा स्तर है। इस द्रव्य की तहें या गाँठें सी बन रही हैं। यह सारा का सारा शिराओं और रक्तवाहिनी नाड़ियों की बनी हुई एक सूक्ष्म झिल्ली से ढँका है। यह झिल्ली कोष-समूह पर ठहरी हुई है।

मस्तिष्क का यह भाग अनुभव, इच्छा, बुद्धि और आवेगों का स्थान है। इस भाग को नुक़सान पहुँचने से मानसिक शक्तियों के प्रकट करने की क्षमता नष्ट हो जाती है। मस्तिष्क का दूसरा भाग अबुद्धिपूर्वक काम करने वाले स्नायुओं (Involuntary Muscles) को और मन तथा शरीर की चेष्टाओं को नियम में रख कर उनकी रक्षा करता है। यही अनाविष्कृत मन (Sub-Conscious mind) का स्थान है। इसके लिए सब से अधिक युक्तिसिद्ध स्थान यही प्रतीत होता है। कारण यह कि अनाविष्कृत मन निश्चय ही एक अबुद्धिपूर्वक काम करने वाला है। अगर इसकी अवस्था प्रकट होने की न हो तो संसार की सारी इच्छा-शक्ति भी इसे प्रकट नहीं कर सकती। इसलिए इच्छा या आवेग पर इसका बहुत कम दारमदार है। प्रतिदिन काम करने वाले मस्तिष्क के लिए कोई दूसरा व्यापार अपने ज़िम्मे लेने के बिना ही अपने निजी व्यापार का ख़याल रखने का ही बहुत पर्याप्त काम है।

मस्तिष्क की निचली सतह से नाड़ियों के बारह जोड़े निकलते हैं। इन्हें अङ्गरेज़ी में क्रेनियल नर्वज़ अर्थात् कपाल की नाड़ियाँ कहते हैं। प्रत्येक जोड़ा शरीर को कुछ ज्ञान देता है। यह ज्ञान मस्तिष्क-रूपी यन्त्र में उसी प्रकार उत्पन्न होता है, जिस प्रकार कि डायनामो में बिजली की धाराएँ उत्पन्न होती हैं। नाड़ियों का एक जोड़ा गन्ध का बोध कराता है। दूसरा जोड़ा देखने के तन्तु हैं। तीसरा जोड़ा आँख की पुतलियों को हिलाता है। चौथे और पाँचवें जोड़े का सम्बन्ध मुख-मण्डल की त्वचा, निचले जबड़े के पट्ठों और जीभ के साथ है। छठा जोड़ा उन पट्ठों से मिला है, जो आँख की पुतलियों को बाहर की ओर फिराते हैं। सातवाँ जोड़ा मुख-मण्डल के पट्ठों को नाड़ियाँ देता है। आठवाँ जोड़ा कानों के लिए है। नवाँ जोड़ा मिश्रित नाड़ियाँ हैं, जिनकी सहायता से हम स्वाद लेते हैं। यह कण्ठ को भी नाड़ियाँ देता है। दसवाँ जोड़ा बड़े महत्व की मिश्रित नाड़ियाँ हैं। ये नाड़ियाँ कण्ठ, नाली, फेफड़े, हृदय, आमाशय और पित्ताशय से सम्बन्ध रखती हैं। ग्यारहवाँ जोड़ा सञ्चालिका नाड़ियों का है। ये नाड़ियाँ गर्दन को विशेष पट्ठे प्रदान करती हैं। बारहवाँ जोड़ा जीभ से वास्ता रखता है।

अब हमें अपने विचार-यन्त्र का स्पष्ट ज्ञान हो गया। आरम्भ करने के लिए इस ज्ञान का होना बहुत लाभदायक है; क्योंकि कोई भी इञ्जीनियर किसी ऐसे यन्त्र को चलाने की कोशिश नहीं करता, जिसकी बाबत वह बिल्कुल जानकारी नहीं रखता। मानसिक एकाग्रता, जिसे मानसिक चिकित्सा भी कहते हैं, शरीर को किस प्रकार प्रभावित करती और कोष-समूहों (दैहिक उपादान) की कैसे मरम्मत कर सकती है, यह बात मस्तिष्क-केन्द्र के साथ इस प्रत्यक्ष व्यवस्था से बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है।

नाड़ियों का प्रत्येक जोड़ा मस्तिष्क के दिए हुए सन्देश को पहुँचाता है। परिणाम का पैदा करना स्वभावतः इस सन्देश पर ही निर्भर है। जिस यन्त्र से हमें काम लेना है, वह हमारे पास है। इसके वैज्ञानिक अङ्गों को हमने भली-भाँति समझ लिया है। अब हमें देखना यह है कि विचार किस प्रकार कार्य करता है और मानसिक एकाग्रता का विचार पर क्या प्रभाव पड़ता है।

इच्छा का ख़ास स्थान कहाँ है, यह जानना ज़रूरी है। मन की एकाग्रता के लिए इसका महत्व और भी बढ़ जाता है; क्योंकि इच्छा के बिना सम्भवतः मनुष्य मन को एकाग्र नहीं कर सकता। इच्छा विचार-रूपी काल की स्वामिनी है। इस कठिनता को हल करने की सब से अच्छी युक्ति यह है कि इच्छा-शक्ति को विश्वात्मा का अंश मान लिया जाय। इससे हमारा मतलब मनुष्य-शरीर के उस (आत्मिक) अंश से है, जिसका कभी नाश नहीं होता। हमें पुनर्जन्म के सिद्धान्त को केवल एक कल्पना ही नहीं समझना चाहिए। ऐसे बहुत से मनुष्यों का हाल सुनने में आया है, जिन्हें पूर्व-जन्म की बातें याद थीं। उनमें से कितने ही दो-दो, तीन-तीन जन्मों की याद रखते थे।

यही विश्वात्मा का अंश या इच्छा-शक्ति मस्तिष्क को गति देती है। यही इस बात का निश्चय करती है कि उत्पादित विचार का क्या परिणाम होगा और इसमें कितनी सामर्थ्य होगी। कई एक जन्मों में से गुज़र जाने के बाद इस बात का निश्चय करना कि प्रत्येक जन्म में क्रमशः हम कहाँ तक उन्नति कर सकेंगे, हमारे ही अधीन रहता है। अगर हमारी कामना हो तो विश्वात्मा के अंश के सहयोग से हम एक ही जन्म में इतनी उन्नति कर सकते हैं, जितनी कि अन्य प्रकार से कहीं शताब्दियों में जाकर होगी।

—ज्ञानमल्ल हंसराज (जैन)

* * *

अर्वाचीन भारतीय ग्रामीण-समाज

ग्राम प्रधानतः कृषकों का निवास-स्थान है। वहाँ कतिपय व्यवसायी तथा कुछ इतर जीविका के लोग रहते हैं। परन्तु उनका भरण-पोषण कृषकों के द्वारा ही होता है। पशु-पालन-विधान भी कुछ लोगों की जीविका का साधन है। ग्राम का प्रातःकालीन दृश्य अति रम्य तथा चित्ताकर्षक होता है। ग्रामीण जन प्रतिदिन प्रत्यूष-काल में निद्रोत्थित होकर अपने-अपने काम में तल्लीन हो जाते हैं। उस समय प्रकृति की शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु सर्वत्र घ्राणगोचर होती है। द्रुम-काननों में पक्षी का मधुर कलरव अन्तःकरण को प्रफुल्लित कर देता है। शस्य से परिपूर्ण क्षेत्र बहुत ही सुन्दर दीख पड़ते हैं। नव-पल्लवित आम्र वृक्ष अतिशय मनोहर तथा सुहावने प्रतीत होते हैं। देहात में निरन्तर शान्ति का साम्राज्य विराजमान रहता है। दीन-हीन कृषक-गण अहर्निश स्वकर्त्तव्य में सम्बद्ध रहते हैं। वे कृषि के लिए नित्य जाज्वल्यमान सूर्य की निष्ठुर किरणों को सहते हैं। वर्षा तथा शीत से अप्रतिहत होकर वे सदैव कृषि-सम्बन्धी कार्य में कटिबद्ध रहते हैं।

धनी-मानी व्यक्तियों की अवस्था कृषि-जीवियों की अपेक्षा सर्वथा भिन्न है। यदि वे आलस्य के प्रतिनिधि कहे जायँ, तो इसमें कुछ अतिशयोक्ति नहीं होगी। किसी कार्य को वे स्वयं नहीं करते। उनका प्रत्येक कार्य सेवकों के द्वारा ही सम्पादित होता है। सुबह की मनोविनोदक एवं स्वास्थ्यप्रद वायु-सेवन से बढ़ कर इनको शयनागार में लेटे रहना हितकर मालूम होता है। वे ख़ुद अकर्मण्य होकर अपने अमूल्य समय को भोग-विलास तथा क्रीड़ा-कौतुक में व्यतीत करते हैं। धन-सम्पत्ति के गर्व में चूर रह कर वे आजन्म निरक्षर बन कर जीवन-यापन करना उचित समझते हैं। यूरोप तथा अमेरिका के प्रायः सभी समृद्ध पुरुष भी साक्षर होते हैं।

देहात में आजकल अनर्थ हो रहा है। अनर्थ ही नहीं, भीषण दुर्भिक्ष पड़ गया है। अगणित नर-नारी भूखों मर रहे हैं। अनेक को शाम का शाम उपवास करना पड़ता है। अधिकांश लोग प्रचुर ऋण-ग्रस्त हो गए हैं, जिसका परिशोध करना उन लोगों के लिए असम्भव है। आर्थिक सङ्कट से बाध्य हो, वे अपनी स्थावर सम्पत्ति को बेचते हैं। घृत और दुग्ध आदि पौष्टिक पदार्थ को वे धन के लोभ से दूकानदारों के हाथ सौंपते हैं। आर्थिक ह्रास से वे विवश हो, अपनी सन्तान को पर्याप्त शिक्षा नहीं दे सकते। अनेक कुशाग्र बुद्धि वाले बालकों को केवल प्राथमिक शिक्षा ही समाप्त करके उच्च शिक्षा पाने से वञ्चित रहना पड़ता है। धनाभाव उनको पद-पद पर उन्नति के मार्ग में अग्रसर होने से दूर करता है। सब व्यापार से बढ़ कर कदाचित कृषि ही सर्वोपरि परिश्रम-सापेक्ष है, तथापि कृषकों की दशा शोक-जनक तथा नैराश्यपूर्ण है। मज़दूरों को तो नारकीय यातना का उपभोग करना पड़ता है। वे आनन्द-नदी के पुनीत कूल पर कभी नहीं पहुँचते। उनकी वेश-भूषा

ही उनकी आन्तरिक दुर्दशा का परिचायक है। उदर-पूर्ण भोजन पाते ही वे स्वर्ग-सुख का अनुभव करने लगते हैं। उनके धूलि-धूसरित बाल-बच्चे क्षुधार्त होकर सदैव आर्त-निनाद करते रहते हैं। दुख-दैन्य के हेतु देहात में कई स्थानों में चोरी-डकैती भी होती है, जैसा कि एक कुशल नीति-विशारद का कथन है :—

बुभुक्षितः किं न करोति पापम्, क्षीणा जना निष्करुणा भवन्ति।

देहात की सारी भयावह परिस्थिति का वर्णन करना असम्भव है। ग्रामीण जनों को वाह्य जगत से तनिक भी सम्बन्ध नहीं रहता। वे संसार के नवीन आविष्कार तथा अनुसन्धान को कुछ भी नहीं जानते। अनेक जन केवल घर में बैठ कर कूप-मण्डूकी जीवन का आनन्द लेते हैं। समाचार-पत्र भी कोई-कोई पढ़ते हैं। देहात में सामान्यतः शिक्षित सभा-समितियाँ भी नहीं रहतीं।

वहाँ के समाज में अनेक वीभत्सपूर्ण रीति-रिवाजें बद्धमूल हो गई हैं। उन सबों का उन्मूलन करना परम प्रयोजनीय है। विवाह तथा श्राद्ध में लोगों को परिमाण से अधिक व्यय करना पड़ता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जातियों के लिए अनेक क्रिया-कलाप हैं, जिनका करना उनके लिए शास्त्र-निषिद्ध समझा जाता है। देहात में जाति-पाँति का भेद-भाव अधिक मात्रा में पाया जाता है। डोम-चमार आदि जातियाँ किसी धार्मिक पूजा-अर्चा में योगदान नहीं दे सकतीं। दूषित जल के पीने में ग्रामीणों को कोई आपत्ति नहीं रहती, परन्तु अछूत से स्पर्श किया जल को वे अपवित्र समझ कर नहीं पीते। यदि कोई पुरुष अछूतों की सङ्गति में रहता है अथवा उपर्युक्त सामाजिक नियम का उल्लङ्घन करता है, तो उसका जातीय बहिष्कार होता है। बहुत जगह बाल-विवाह तथा वृद्ध-विवाह की कुप्रथाएँ प्रचलित हैं। ज्योंही बालिका पाँचवें वर्ष में पदार्पण करती है, त्योंही उसके माता-पिता उसके विवाह के लिए आयोजन करने लगते हैं। किन्तु ऐसा आचरण करके अपनी निर्बोध सन्तान पर कुठाराघात करते हैं। पञ्चवर्षीया बालिका दाम्पत्य जीवन का क्या सुख अनुभव कर सकती है?

समाज में महिलाओं का स्थान अत्यन्त निन्द्य है। वे सर्वथा पराधीन तथा पददलित हैं। उनको आजन्म सख़्त परदे के भीतर परिवेष्टित रहना पड़ता है, जिसके फल-स्वरूप वे अपने को आततायियों के अत्याचार, अनाचारों से रक्षा नहीं कर सकतीं। सदा एक ही स्थान में रहते-रहते स्त्रियों का स्वभाव कलहप्रिय हो जाता है। वे छोटी-छोटी बातों में भी विवाद-मग्न हो जाती हैं। उनमें सन्तान को सुचारु रूप से पालन-पोषण करने का सामर्थ्य नहीं रहता। बच्चों को शौर्य-उत्पादक कथा-कहानियाँ कहने के बदले वे भूत-प्रेतात्मक कहानियाँ कहती हैं। उनका कान वे कपोल-कल्पनाओं से भर देती हैं। इसका प्रतिफल यह होता है कि बच्चे बुज़दिल निकलते हैं। मनुष्य का चरित्र बाल्यकाल ही में निर्मित होता है। अपरिपक्वावस्था में लोगों के भीतर अपने माता-पिता के गुणावगुणों का सूत्रपात होता है। प्रौढ़ वयस्क मनुष्य को कितना ही उच्च आदर्श क्यों न दिखलाया जाय, परन्तु वह उसका शीघ्र अनुकरण नहीं कर सकता। अतएव हमारी कुलाङ्गनाओं के लिए शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध होना नितान्त आवश्यक है। खेद है कि जिस समाज में एक समय सीता तथा सावित्री सदृश सती-साध्वी स्त्रियाँ उत्पन्न हुई हों, आज उसी समाज की कुल-कमलाएँ इस पाशविक दशा में रहें! अनेक भारतीय इस बीसवीं शताब्दी में भी एकदम पीछे पड़े हैं। उनकी असभ्यता के विषय में एक बात का उल्लेख करना अप्रासङ्गिक न होगा। एक बार एक सम्भ्रान्त व्यक्ति ने मुझसे प्रश्न किया कि तुम कौन सी किताब तथा क्या पढ़ते हो? मैं इस प्रश्न को सुन कर असमञ्जस में पड़ गया और उनको किसी प्रकार सन्तुष्ट करके उनसे छुट्टी पाई। हमारा सुधार कृषि में, समाज में तथा अन्यत्र तभी होना सम्भव है, जब कि शिक्षा का घर-घर में प्रचार हो जाय। पाश्चात्य देशों के लोग जो इतने सभ्य तथा समुन्नत हुए हैं, उसका प्रमुख कारण शिक्षा है। हर्ष की बात है कि इस बार आगामी गोल-मेज़ परिषद के लिए निःशुल्क अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का प्रस्ताव रक्खा गया है। यदि यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया तो जनता का असीम उपकार होगा।

—प्रकाशचन्द्र दत्त 'सहिष्णु'

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह !

["पागल"]

छठा खण्ड

७

इस दफ़े मैंने अन्नदाता जी के कमरे में प्रवेश करते ही देखा कि उन्हें कुछ झपकी सी आ गई है और वह कोच पर आँखें बन्द किए हुए पड़े हैं। उनके आराम में विघ्न पड़ने के डर से मैं अँगूठे के बल भीतर आया और एक दूसरे कोच की आड़ में फ़र्श पर चुपके से बैठ गया। गोल कमरे की रङ्गरेलियों में मुझे कुछ दिलचस्पी न थी और बदन भी मेरा उस वक्त कुछ ऐसा टूट रहा था कि एकान्त पाकर मुझसे अब ज़्यादा देर तक बैठा न रहा गया। वहाँ से न मुझे अन्नदाता जी दिखाई पड़ते थे और न वही मुझे देख सकते थे। इसलिए मैं वहीं फ़र्श पर लेट गया। और तरह-तरह के विचारों में चक्कर खाता हुआ धीरे-धीरे सो गया।

स्वप्न में मेरे हृदय पर और भी वज्राघात होने लगा। जो भ्रम उन दिनों मुझे ख़ून के आँसू रुला रहा था, वही अब अपना प्रत्यक्ष रूप धारण करके मेरे कलेजे को सौ-सौ टुकड़े करने लगा। मैं मानो अपनी चित्रशाला में बैठा हुआ किसी चित्र के बनाने का बेकार प्रयत्न कर रहा था! मेरी बेकली मेरे ध्यान को इस तरह तितर-बितर कर देती थी कि क्षण भर के लिए भी उसे मैं अपने चित्र पर जमा नहीं पाता था। मैं अपनी बेताबी को सँभाल न सका और अन्त में घबड़ा कर मैंने हाथ से कूची फेंक दी और सरोज के दर्शनों के लिए उसके पास दौड़ा। परन्तु आह! उसकी सूरत देखते ही मेरी लालसाओं पर पाला सा पड़ गया। सूरत वही थी, मगर उस पर प्रेम की वह ज्योति न थी, जिस पर मेरा हृदय-पतङ्ग बार-बार न्योछावर हो जाने के लिए मँडराया करता था। दृष्टि में प्रेम और आत्मीयता की वह चिनगारी न थी, जो मेरे हृदय के प्रेम-बारूद को प्रज्वलित करती थी। और न उसमें वह आकर्षण ही था, जो लाख बार भागने पर भी मुझे घसीट कर उसके चरणों पर गिराता था। हाय! वह ज्योति कहाँ गई? वह चिनगारी क्या हुई? उस आत्मीयता को किसने छीना, जो मेरी थी? सूरत उसकी थी तो थी, परन्तु ये चीज़ें तो मेरी ही थीं। यही मेरा बचा-खुचा धन था। सर्वस्व लुट जाने पर भी मैं केवल इतने ही पर अभिमान किए हुए था। मेरे विदीर्ण हृदय का बस यही एक सहारा रह गया था। हाय! क्या संसार और समय ने आज इसे भी छीन लिया? अरे! स्त्री-हृदय! जिसकी इतनी भक्ति, जिसके लिए इतना त्याग और जिस पर प्राण और हृदय दोनों ही आजन्म न्योछावर किए गए, फिर भी अन्त में तू स्त्री-हृदय ही निकला? जिसकी लाठी उसकी भैंस? विश्वास नहीं हुआ। मैंने डरते-डरते उसकी ओर फिर देखा, उसने भी मुझ पर निगाह डाली। परन्तु हाय! उसकी दृष्टि वैसी ही पड़ी, जैसे किसी अपरिचित वा ऐसे जन पर पड़ती है, जिससे कुछ सरोकार न हो। मेरा कलेजा सूख गया। उसने पूछा—"कहिए!" आह! प्रश्न में भी कुछ उत्सुकता न थी और न आवाज़ ही में कोई व्यग्रता थी। मैं और मुर्दा हो गया। हताश होकर उत्तर दिया—"कुछ नहीं।"

एकाएक दृश्य बदला और मैंने अपने को सरकार साहब के आराम-कमरे में पाया। सरोज तकिए से पत्र निकाल कर उसे फाड़ने जा रही थी। मैंने झपट कर उसका हाथ पकड़ लिया। वह मुझ पर कड़ी निगाह डालती हुई बोली—कौन?

"क्या नहीं पहचानती?"

"हाथ छोड़ो।"

"इसे मत फाड़ो।"

"तुमसे मतलब?"

"तुम्हारी कुशलता।"

"हुश!"

उस वक्त मेरे भ्रम ने अपने सम्पूर्ण वेग से मेरे हृदय को झकझोर दिया। मेरी रही-सही आशा भी हाय! बुझ गई। ऐसी दुरवस्था में उसका एक-एक शब्द कलेजे में तीर की तरह बेधने लगा। मैं तिलमिला उठा। आँख खुल गई। देखा, कमरे के रोशनदान से सुबह की सफ़ेदी आ रही है और सामने धर्मावतार साहब लाल-लाल आँखें किए मुझे अपनी छड़ी से कोंच-कोंच कर जगा रहे हैं। वह ग़ुस्से में मुझे गालियाँ भी देते जा रहे थे, मगर मुझे अपने अपमान पर कुछ भी ध्यान न था। क्योंकि जागते ही स्वप्न को अब स्वप्न जान कर मुझे मानो मेरा खोया हुआ धन मिल गया और मैं अपने दिल को ढाढ़स देता हुआ, अपनी आशा की टूटी हुई लड़ियों को फिर गूँथने लगा। फिर भी उनकी बड़बड़ाहट मैं सुनने से बाज़ न रहा, जिसका मतलब यह था कि मैं अन्नदाता जी की सेवा करने के लिए यहाँ भेजा गया था, मगर मैं इस तरह छिप कर क्यों सो गया कि किसी को पता भी न चल सका।

दूसरे दिन शाम को धर्मावतार के मकान पर जब सरकार साहब आए और संयोग से मैंने अपने सम्बन्ध में इन दोनों की कुछ ऊटपटाँग बातचीत सुनी, तो मैं और चक्कर में पड़ गया। धर्मावतार बिगड़ कर कह रहे थे—आख़िर जल्दीबाज़ी का नतीजा आपने देख लिया न? मैं कहता था कि यह गूँगा अभी रङ्गमहल में ले जाने के क़ाबिल नहीं है, मगर आपने माना नहीं।

सरकार साहब सर खुजाते हुए बोले—अगर इसकी जगह पर कोई दूसरा मिल जाता, जो जल्दी राह पर लाया जा सके, तो क्या कहना था।

"मगर यह भी कुछ ख़बर है कि जो गूँगा और बहिरा दोनों होता है, उसे ईश्वर इतनी बुद्धि नहीं देते कि वह मनुष्य की तरह कोई भी नई बात अपने बुद्धि-बल से कर सके। ये लोग मनुष्य के रूप में निरे पशु होते हैं, पशु। इनको राह पर लाने के लिए चाहे कोई हो, उतना ही समय चाहिए जितना किसी जानवर के साधने के लिए दरकार है। समझे हज़रत!"

"मगर उस बर्मी गूँगे को जल्दी हटाने की फ़िक्र भी तो करना चाहिए, वरना बाद को उसका दूर करना भी मुश्किल हो जायगा। क्योंकि अन्नदाता जी की उस पर कृपा-दृष्टि बहुत बढ़ती जाती है।"

जिस खिड़की के नीचे मैं खड़ा हुआ यह बातें सुन रहा था, उधर अँधेरे में मैंने किसी के आने की आहट सुनी। इसलिए मुझे चुपके से वहाँ से हट जाना पड़ा। मैं उस वक्त से बराबर यही सोचता रहा कि या ईश्वर, रङ्ग-महल में मुझसे कौन सी चूक हो गई है, जिसके लिए मैं निकम्मा ठहराया जाता हूँ। और मुझे उसकी शिक्षा की ज़रूरत बताई जाती है। मुझसे अन्नदाता जी के पास बैठने के लिए कहा गया था। इसके बदले में उन्हें सोया हुआ जान कर मैं भी ख़ुद सो गया, तो इसमें किसी का क्या नुक़सान हुआ, मेरी समझ में यह न आया। मैं कोई ख़िदमतगारी के काम पर तैनात नहीं था कि सोते वक्त अन्नदाता जी के हाथ-पैर दबाता।

उस दिन रात को जैसे ही मैं खाना खा चुका, वैसे ही धर्मावतार मेरे कमरे में आए और इशारों में कहा कि तुम अपना सामान बाँधो और यहाँ से चलो। मैं डरा कि कल रात को सो जाने के अपराध में क्या मैं यहाँ से निकाला तो नहीं जा रहा हूँ? हाय! तब क्या यहाँ इतने दिन झक मारने पर भी सरोज के मिलन से वञ्चित रहना पड़ेगा? मगर जब धर्मावतार ने अपने नौकरों के सरदार से कहा कि आज कलकत्ते से एक मेहमान आ गए हैं और उनकी सेवा में जमुनियाबाग़ की कोठी के जमादार की तैनाती हो गई है, इसलिए गूँगे को उसकी एवज़ी पर अब जमुनियाबाग़ में रहना पड़ेगा। तुम इसको मय सामान के वहाँ पहुँचवा दो; तब मुझे वहाँ से अपने हटाए जाने का कारण मालूम हुआ।

मेरे पास सामान ही क्या था, जो कुछ था उन्हीं का दिया हुआ। उसमें एक तकिया अलबत्ता ज़रूरी था, जिसके भीतर मैं छिपा कर अपनी डायरी रक्खे हुए था। थोड़ी देर के बाद मुझे सरदार एक किराए के इक्के पर जमुनियाबाग़ में पहुँचा गया। वह स्थान बड़ा ही डरावना, निर्जन और शहर से बाहर था। बाग़ के बीच में फूस का छाया हुआ एक छोटा सा बङ्गला था। बीच के कमरे में कुछ गद्देदार कुर्सियाँ थीं। उसी की देख-रेख मेरे सुपुर्द हुई। सरदार के लौट जाने पर फिर मुझे किसी आदमी की सूरत वहाँ दिखाई न पड़ी। इस तरह एकान्त में लाकर मुझे रखने की बात खटकी और मैं बहुत ही सशङ्कित होकर वहाँ वक्त काटने लगा।

एकान्त तो मुझे ख़ूब मिला। मगर घबड़ाहट इस

बात की ज़रूरत थी कि या ईश्वर मुझ पर क्या होने वाला है। सुबह को बाग़ के चारों तरफ़ घूम-घाम कर मैंने इस बात का इतमीनान कर लिया कि मेरे आने-जाने पर कोई दृष्टि नहीं रखता है। फिर भी मैं दिन भर बङ्गले ही में पड़ा रहा। खाने की जिन्स वग़ैरह, जो कम से कम दो सप्ताह के लिए काफ़ी था, रात ही को मेरे साथ सरदार यहाँ रख गया था। इसलिए इसके लिए भी मुझे कहीं बाहर जाने की ज़रूरत न पड़ी। दिन जैसे-तैसे निर्विघ्न कटा। परन्तु सन्ध्या होते ही मुझे एक विचित्र घटना का सामना करना पड़ा।

बाग़ में मोटर की घड़घड़ाहट सुन कर जब मैं बङ्गले से बाहर निकला, तो देखा कि धर्मावतार महोदय अपनी मोटर पर अकेले बैठे हुए मुझे अपने पास आने का इशारा कर रहे हैं। उनके हुकुम के बमूजिब मैंने बङ्गला बन्द करके चाभी उनको दी और वह मुझे अपने साथ मोटर पर बिठाल कर एक तरफ़ चल दिए। इधर-उधर दूर तक चक्कर लगा कर वे फिर शहर में घुसे। ऐसा करने में मैंने एक बात ताड़ी कि एक सड़क से वह कई दफ़े आए और जब-जब उस जगह पहुँचते थे, तब-तब उनकी मोटर धीमी हो जाती थी। मगर भोंपू बेहिसाब बजने लगता था। आख़िरी चक्कर में उनकी दृष्टि के साथ मेरी भी नज़र ऊपर को उठ गई। देखा, सामने के कोठे पर एक स्त्री मुस्कराती हुई झाँक रही है। इसके क़रीब आध घण्टे के बाद, जब मोटर घूम-घाम कर घाट के एक मन्दिर के पास पहुँची, जहाँ दर्शन और पूजन करने के लिए आई हुई औरतों की कुछ भीड़ सी लगी हुई थी, मैंने उसी स्त्री को, जो कोठे पर से झाँक रही थी, मोटर की रोशनी में मन्दिर की सड़क पर जाती हुई देखा। क्योंकि अब शाम की अँधियाली गहरा गई थी। उसके साथ कई औरतें थीं, मगर बिजली की रोशनी पड़ते ही वह ख़ास तौर से झिझक कर बिल्कुल सड़क के सामने आ गई थी। मोटर खट से रुक गई और वैसे ही धर्मावतार महोदय ने मुझे उसकी तरफ़ इशारा करके उतरने को कहा। शायद उनका मतलब यह रहा हो कि जाकर देखूँ कि उसे चोट तो नहीं लगी या उसे सामने से हटा दूँ। ख़ैर, कुछ भी हो, मगर जब तक मैं उतरूँ, तब तक वह वहाँ से भाग कर फिर अपने गरोह में मिल गई।

मोटर थोड़ी दूर चल कर एक मैदान में खड़ी हुई। धर्मावतार ने मेरे हाथ में एक ख़त देकर इशारा किया कि इसे उस स्त्री को चुपके से दे आओ। अब तो मेरे रोंगटे खड़े हुए। मुझे हिचकिचाते हुए देख कर उन्होंने मुझे झट एक रुपया दिया। मैं नौकर के रूप में था, इसलिए मेरे लिए ज़्यादा आना-कानी करना अपना भण्डा फोड़ना था। विवश होकर मैं ख़त लिए उतरा। वैसे ही उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और इशारों से बताया कि अपने कपड़े उतार डालो और इन कपड़ों को पहनो, जो उनकी बेग में हैं। यह कह कर उन्होंने एक बेग मोटर से निकाल कर मेरे सामने रख दी। मैंने बेग खोल कर देखा तो मेरे होश उड़ गए। क्योंकि उसमें सब ज़नानी पोशाक के सामान थे।

(क्रमशः)

(*Copyright*)

तुमसे—

[श्री० 'व्यथित हृदय']

पिरो डाल शैशव-गुलाब का जीवन के डोरे में हार,
ले आई हैं अभी धूल से पङ्खड़ियाँ कलियाँ सुकुमार।
वह अतीत जिसके रेखा की है धुँधली छाया संसार,
खेल रहा उस भोलेपन में भावुकता का लेकर प्यार।

माया की किरणों ने उस पर बिछा न पाया अपना जाल,
नहीं डाल पाया मधुकर ने लोलुपता का हिय में माल।
रागों-अनुरागों से वञ्चित है अमोल निधियों का ढेर,
उसे तोड़ लो इस बेला में, अभी विहँसने में है देर।

अभिशाप और लज्जा

सात करोड़ संख्यावाली अछूत जातियाँ तो हमारे समाज की कलङ्क हैं ही; इनके अतिरिक्त अन्य जातियाँ भी हैं, जो इस अभागे समाज के लिए अभिशाप और लज्जा के रूप में हैं। इन जातियों में बिहार प्रान्त की एक राजवाड़ जाति भी है। हाल में ही उक्त राजवाड़ जाति के कुछ प्रतिनिधियों ने महात्मा गाँधी के पास अपने दुखों की कहानी लिखी है, जिसका आशय इस प्रकार है:—

"हम लोग बिहार प्रान्त के गया, पटना, मुँगेर और पलामू ज़िलों में रहते हैं, और हमारी आबादी लगभग एक लाख की है।

"प्रान्त की सब से अधिक निर्धन और निरक्षर जातियों में हमारी जाति की गणना है, तथा हम लोगों के साथ अछूतों की भाँति व्यवहार किया जाता है।

"हम लोगों के जाति वाले प्रायः मज़दूर हैं, उन्हें अपनी कोई ज़मीन नहीं है। यहाँ तक कि प्रति सहस्र एक आदमी के पास भी एक एकड़ ज़मीन नहीं है।

"हम लोग इसलिए दबा कर रक्खे जाते हैं कि हमसे मज़दूरी कराने वाले कम से कम मज़दूरी पर अधिक से अधिक काम लें।"

इन शिकायतों के अतिरिक्त राजवाड़ जाति की अन्य शिकायतें भी हैं, जिनमें बेगार, बालकों तथा स्त्रियों के प्रति दुर्व्यवहार, ज़मींदारों के अमलों के अत्याचार, कम मज़दूरी तथा सरकार एवं उच्च जातियों के द्वारा दिए गए कष्टों की चर्चा है।

बालकों के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा गया है कि ६-७ वर्ष के होते ही वे अपने माता-पिता के मालिकों के गुलाम हो जाते हैं। उनसे सारा दिन गाय-भैंस आदि चराने का काम लिया जाता है और रात को उन्हें ख़राब से ख़राब मौसम में भी अपने घर भेज दिया जाता है। ज़मींदारों के अमले पुरुषों को न पाने पर औरतों और बच्चों से काम लेते हैं, और इस बात की परवाह नहीं करते कि औरतों के काम करने पर उनकी बहुत सी व्यक्तिगत पारिवारिक कठिनाइयाँ उपस्थित हो सकती हैं। यहाँ तक कि पुरुषों की अनुपस्थिति में उनके बदले कभी-कभी स्त्रियों को १५-२० मील तक अपने मालिकों का बोझ ढोना पड़ता है। और यदि वे किसी कारण काम करने से इनकार करती हैं, तो उन्हें गालियाँ सुननी पड़ती हैं तथा उनकी मर्यादा पर आक्रमण किया जाता है। राजवाड़ जाति की मज़दूरी भी कम है और सारे दिन काम करने पर उन्हें तीन सेर धान दिया जाता है। सब से बड़ी बात तो यह है कि उनके बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए पाठशालाओं में जाने नहीं दिया जाता, और ज़मींदारों के द्वारा मास्टरों को उन्हें पढ़ाने से रोका जाता है। जहाँ कहीं भी चोरी हुई हो और यदि वहाँ या आस-पास में राजवाड़ जाति के लोगों की आबादी हुई, तो सर्व-प्रथम इन लोगों पर ही सन्देह किया जाता है तथा पुलीस पहले-पहल यहीं पहुँचती है। १५ वर्ष से अधिक हुए जब से राजवाड़ जाति के लोगों के साथ ज़रायम-पेशा जातियों के नियम और क़ानून व्यवहार में लाए जाते हैं। इस कारण इनकी सब से बड़ी असुविधा यह है कि यदि वे अपने बालक-बालिकाओं का विवाह किसी दूसरे ज़िले में करना चाहें, तो उन्हें आज्ञा नहीं मिलती अथवा अधिकारियों

तथा ज़मींदारों के द्वारा उनके पथ में इतनी कठिनाइयाँ उपस्थित कर दी जाती हैं कि वे ऐसा करने से विवश हो जाते हैं।

राजवाड़ जाति की कष्ट-कथा का यह संक्षिप्त परिचय है। महात्मा जी ने इस सम्बन्ध में अपनी टीका करते हुए कॉङ्ग्रेस कार्यकर्त्ताओं को इनके सम्बन्ध में कार्य करने का आदेश दिया है। हमारी समझ में साधारण रीति से इस आदेश का कुछ विशेष परिणाम न होगा। हम तो महात्मा जी तथा कॉङ्ग्रेस के अन्य नेताओं से इस बात की अपील करेंगे कि जिस प्रकार खद्दर-विभाग की एक पृथक व्यवस्था कर दी गई है और वह व्यवस्था पृथक होते हुए भी कॉङ्ग्रेस का एक प्रधान एवं आवश्यक अङ्ग बनी है; उसी प्रकार अछूतों अथवा राजवाड़ जाति की भाँति अन्य गुलाम जातियों के भीतर कार्य करने वालों के एक पृथक सङ्घ का निर्माण कर दिया जाय और जिस भाँति खद्दर एवं चर्ख़ा-सङ्घ के कार्यकर्त्ता अपनी सारी शक्ति केवल उसी काम में लगाते हैं, उसी भाँति अछूतों में कार्य करने वाले कार्यकर्त्ताओं की टोलियाँ केवल उनके ही सङ्गठन एवं कष्ट-निवारण में अपना सारा समय एवं सारी शक्ति लगा दें। अछूतों तथा अन्य पीड़ित जातियों की संख्या हमारी समझ में सारे देश के मुसलमानों की संख्या से अधिक होगी। इससे स्वाभाविकतः यह निष्कर्ष निकलता है कि अछूतों का प्रश्न हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के प्रश्न से भी अधिक महत्वपूर्ण है और इसलिए अधिक परिश्रम एवं त्याग चाहता है। और इस कारण कॉङ्ग्रेस को इस समस्या के हल करने के लिए व्यावहारिक रूप से कार्य-क्षेत्र में उतरना पड़ेगा।

परन्तु कॉङ्ग्रेस के ही भरोसे यह महत्वपूर्ण कार्य छोड़ना बुद्धिमानी न होगी। कॉङ्ग्रेस कुछ अथवा अधिक व्यक्तियों की सम्मिलित शक्ति का एक समूह है। वह समूह देश के एक विशेष राजनीतिक विचार की संस्था है। हमें तो अछूत जातियों तथा राजवाड़ जाति की भाँति अन्य पीड़ित जातियों के सङ्गठन, सुधार एवं पीड़ा-निवारण के लिए साधारण रूप से प्रत्येक समाज-सुधारक और विशेष रूप से प्रत्येक हिन्दू-धर्मावलम्बी के सहयोग एवं साहाय्य की आवश्यकता दीख पड़ती है। ज़मींदारों से भी हमें विशेष रूप से इस बात की अपील करनी है कि वे अपने को समय के अनुरूप करें। प्रत्येक मनुष्य, जहाँ तक मानवी अधिकारों का प्रश्न है, का स्वत्व बराबर है और मनुष्य का मनुष्य के साथ नीच-ऊँच का भेद-भाव करना केवल सांसारिक ही नहीं, वरन् नैतिक एवं धार्मिक नियमों की मर्यादा के भी विरुद्ध है। हमारा विश्वास है कि अछूत तथा राजवाड़ जाति, अथवा उसकी भाँति अन्य जातियों का जैसा सुन्दर सङ्गठन और सुधार स्वयं ज़मींदारों अथवा अन्य उच्च जातियों के द्वारा हो सकता है, वैसा लाखों कॉङ्ग्रेस संस्थाएँ नहीं कर सकतीं। वे जातियाँ ज़मींदारों के अधीन और रात-दिन ज़मींदारों तथा अन्य उच्च जातियों के प्रत्यक्ष-स्पर्श में रहती हैं। इस कारण जितना अधिक ज़मींदार अथवा उच्च जाति के लोग उनके सुख-दुख को समझ सकते हैं, उतना कदाचित् अन्य लोग अथवा बाहरी कार्यकर्त्ता नहीं समझ सकते। इस सम्बन्ध में एक और भी आवश्यक बात ध्यान देने योग्य है। वह यह कि स्वयं ज़मींदारों अथवा अन्य उच्च जाति के लोगों के द्वारा थोड़े से थोड़े समय और परिश्रम में अधिक से अधिक रूप में जिस प्रकार परिस्थिति बदली जा सकती है, कॉङ्ग्रेस के बाहरी कार्यकर्त्ताओं के द्वारा उतनी सफलता नहीं मिल सकती। इतना ही नहीं, ज़मींदारों अथवा ऐसी अन्य उच्च जातियों के द्वारा, जिनके साथ इन पीड़ित जातियों का व्यावहारिक सम्बन्ध है, सुधार की शिक्षा एवं साहाय्य तथा सहानुभूति पाने से पारस्परिक जातीय सद्भावनाएँ बहुत सुन्दर हो जायँगी। हम इस बात पर विशेष रूप से इसलिए ज़ोर देना चाहते हैं कि बाहरी कार्यकर्त्ताओं के प्रचार से सम्भव है इन पीड़ित जातियों में प्रतिकार के भाव उत्पन्न हों। यह प्रतिकार का भाव जातीय एवं राष्ट्रीय निर्माण के लिए घातक है, इसलिए प्रचार-कार्य करते हुए इस महत्वपूर्ण बात पर विशेष रूप से ध्यान देना उचित है। प्रतिकार मानवी भावनाओं के विकास का प्रतिरोधक है, अतः इसके स्थान पर पूर्णतया सात्विक भाव उत्पन्न करने का प्रयत्न ही श्रेयस्कर है! ज़मींदारों और अन्य उच्च जातियों को यह स्पष्ट बात भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि पीड़ित जातियों के प्रतिकार के भावों से सब से अधिक कष्ट एवं हानि उन्हें ही होगी।

* * *
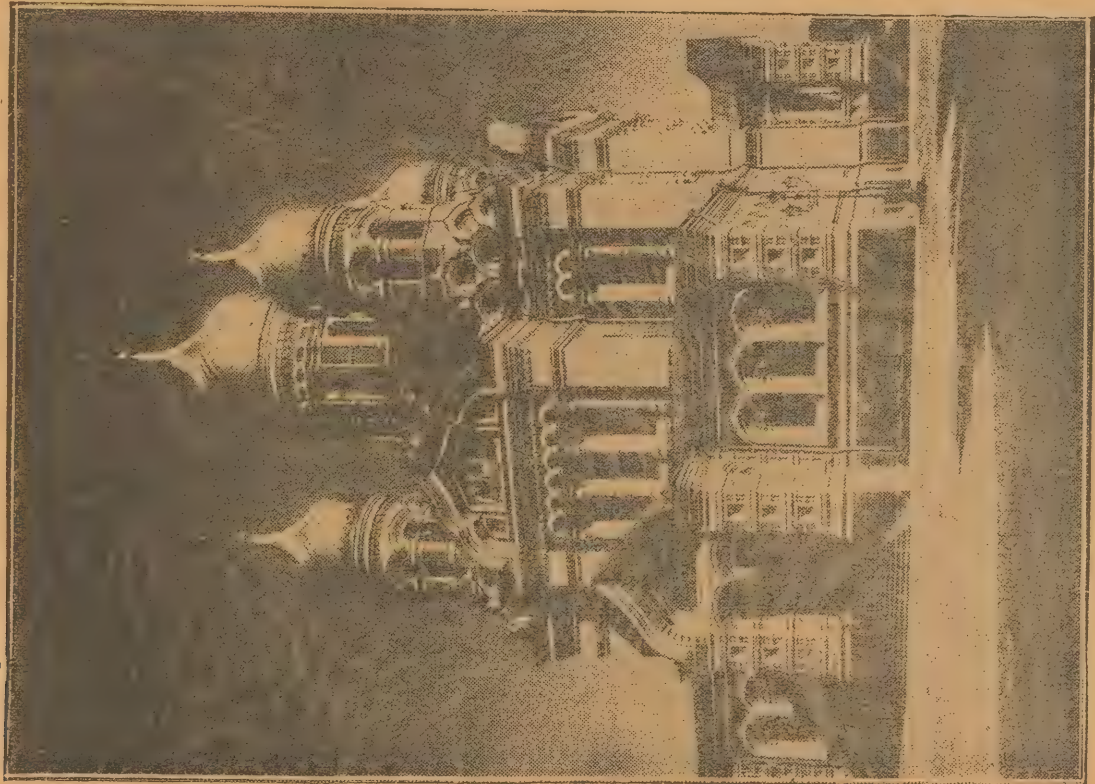
रूस का एक प्राचीन गिर्जाघर—जो समय की प्रगति के कारण अपने प्रभुत्व को अक्षुण्ण न रख सका ! आजकल इसमें रूसी-मज़दूरों के क्लब का हेड-क्वार्टर बनाया गया है।
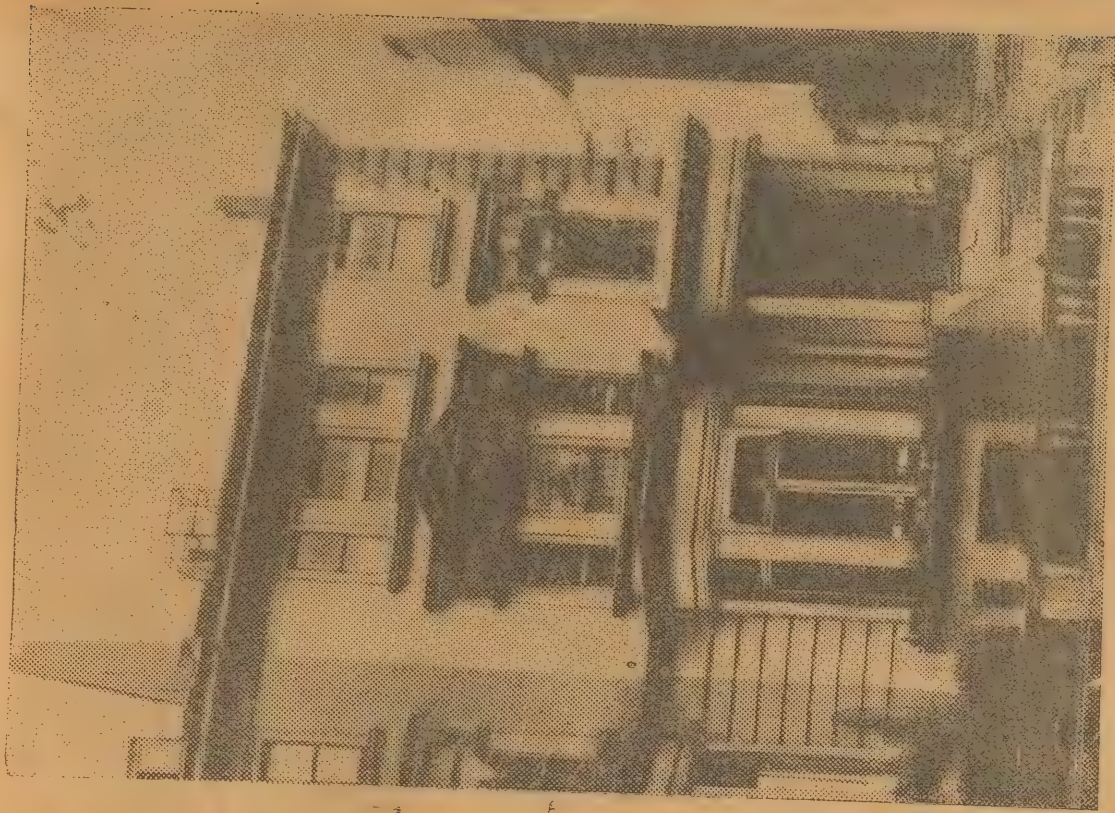
नम्बर ३१, बेलसाइज़ पार्क रोड, लन्दन में अवस्थित सुप्रसिद्ध "आर्य-भवन"—जिसे भारतीय आगन्तुकों की सुविधा के लिए श्री० रामगोपाल जी मोहता तथा श्री० घनश्यामदास जी बिड़ला ने बनवाया है।

कराची कॉङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी के दफ़्तर के कतिपय प्रमुख कार्यकर्त्ता—बाँईं ओर से बैठे हुए—श्री० शिवदास वी० माणिक, स्वामी गोविन्दानन्द, डॉ० ताराचन्द जे० लालवानी और श्री० गुलराज मल। बाँईं ओर से खड़े—श्री० डी० डॉ० चौधरी, श्री० गोपालदास एम० लालवानी, श्री० शिवराम चायन।

गाँधी अस्पताल (हरचन्दराय-नगर, कराची) के ऑफ़िस-इञ्चार्जों का ग्रूप
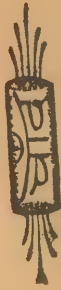
इन अभागे सिरों की दो कहानियाँ हैं । जन-साधारण का कथन है कि ये बर्मी-विद्रोही अङ्गरेज़ सैनिकों के द्वारा एक मुठभेड़ में मारे गए थे और मरणोपरान्त उनकी लाशों से उनके सिर काट कर सड़कों पर प्रदर्शित किए गए थे । सरकार का वक्तव्य है, कि एक विवेकशून्य अधिकारी के द्वारा पहचान के निमित्त ये सिर लाश से काट कर नगर में भेजे गए थे ! सचाई चाहे जो कुछ भी हो, पर यह बात सत्य है कि मध्यकालीन ऐतिहासिक बर्बरता का यह रोमाञ्चकारी दृश्य देख, सहस्रों आत्माएँ काँप उठी थीं, सहस्रों आँखें गीली हो गई थीं और हज़ारों हृदय मूक-घृणा एवं विवश-प्रतिकार के भावों से नाच उठे थे !!!

भारतीय रियासतों की पीड़ित प्रजावर्ग के स्वत्वों के निमित्त अनवरत उद्योग करने वाले प्रमुख कार्यकर्ताओं का एक सामूहिक चित्र। बैठे हुए बाँईं ओर से—
श्री० मनीशङ्कर त्रिवेदी, डॉक्टर सुमन्त मेहता, श्री० अमृतलाल ठक्कर, श्रीयुत रामानन्द चटर्जी (सभापति), प्रोफ़ेसर अभयङ्कर,
श्री० अमृतलाल सेठी, श्री० बी० बी० त्रिवेदी और श्री० पी० एल० चुद्गर।

बाल-सभा, आगरा के प्रमुख कार्यकर्ता । बाँई ओर से—श्री० मूलचन्द मित्तल, श्री० गौरीशङ्कर शर्मा, श्री० रमनलाल जी ।

श्रीमती उषावती राय—जमशेदपुर टाउन कॉङ्ग्रेस कमिटी की प्रधाना ।

राष्ट्रीय एकता के शहीद श्री० गणेशशङ्कर जी विद्यार्थी के शव-दाह के समय का कारुणिक दृश्य ।

श्री० गोकुलचन्द्र जी—जिन्होंने 'मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक' के लिए ४०,०००) रु० का दान दिया था। इस वर्ष भी आपने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को १०,०००) रु० का दान दिया है!

श्री० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए०, जिन्हें इस वर्ष "आस्तिकवाद" नामक दर्शन-शास्त्र की सर्वोत्कृष्ट पुस्तक लिखने के लिए १,२००) रु० का पुरस्कार दिया गया है।

स्वर्गीय बाबू मङ्गलाप्रसाद जी—जिनकी पुण्य-स्मृति में, 'श्रीमङ्गलाप्रसाद पारितोषिक' प्रत्येक वर्ष हिन्दी के किसी एक विषय के सर्वश्रेष्ठ लेखक को दिया जाता है।

जापान के परराष्ट्र सचिव

जापान के वर्तमान सम्राट

सम्राट् मेजी

जापान-नरेश और ड्यूक ऑफ़ ग्लोस्टर की भेंट

ड्यूक ऑफ़ ग्लोस्टर मृगों को हरित तृण खिला रहे हैं
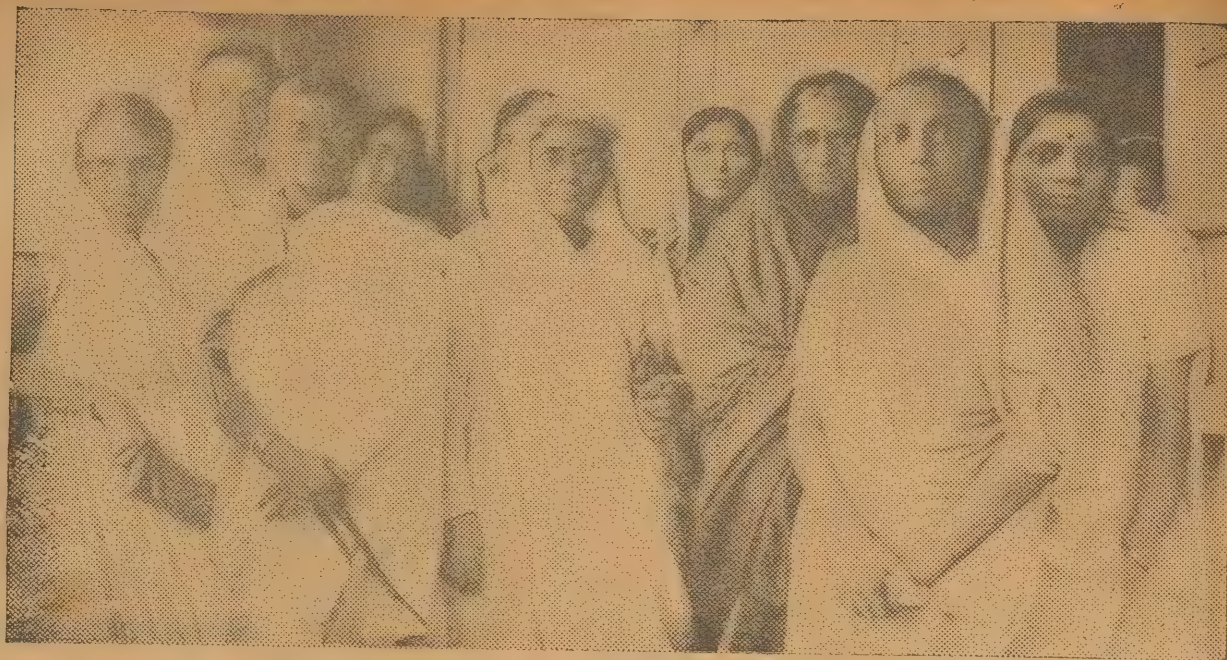
बम्बई के महिला-ऐक्य-समिति (Women's Unity Club) की कुछ प्रमुख सदस्याएँ। इस सभा का एकमात्र उद्देश्य जात-पाँत के भेद-भाव को हटा कर विभिन्न जाति की महिलाओं में एकता का प्रचार करना है। श्रीमती कैप्टेन (बीच में खड़ी हुईं) इस क्लब की अन्यतम कार्यकर्त्री हैं और यह संस्था आप ही के प्रयत्नों का प्रत्यक्ष फल है।
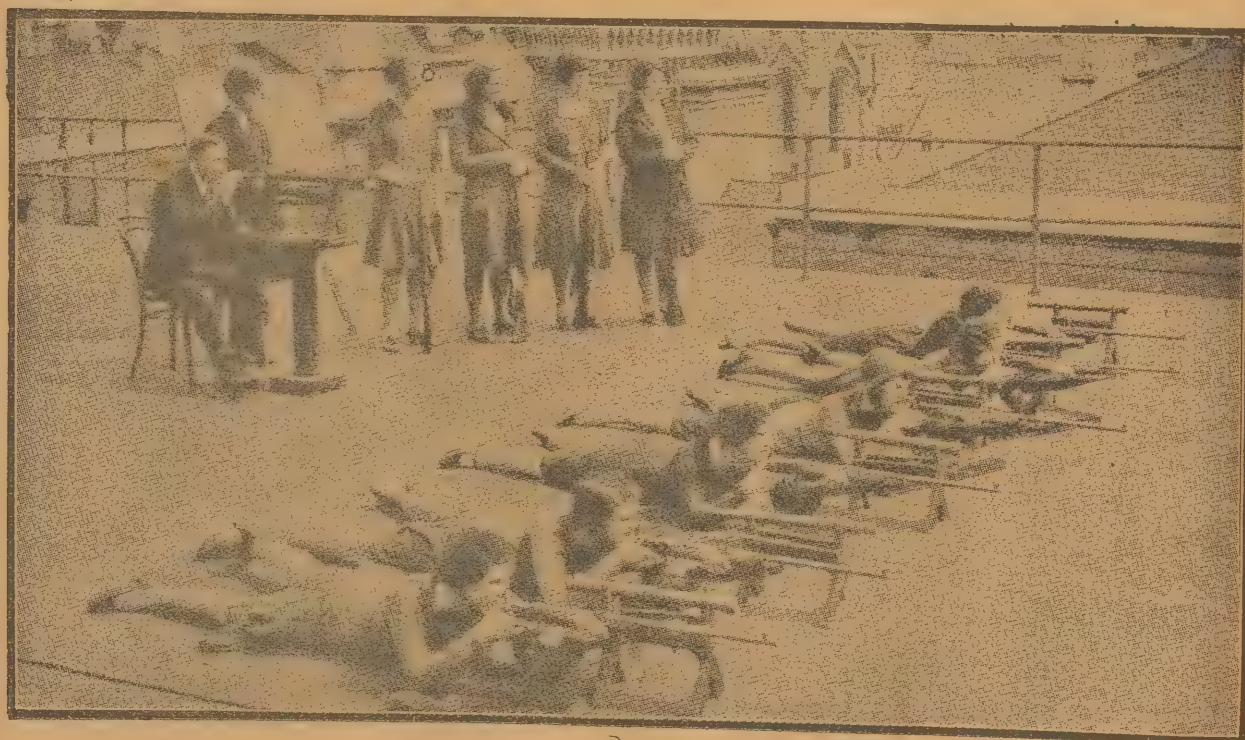
लन्दन की महिलाएँ आजकल फ़ौजी कार्य बड़े मनोयोग से सीख रही हैं। इस चित्र में पाठक देखेंगे कि महिलाएँ बन्दूक़ तथा राइफ़ल द्वारा निशाना लगाना सीख रही हैं। इनको फ़ौजी शिक्षा देने के लिए कई सुयोग्य फ़ौजी अफ़सरों की नियुक्ति हुई है। इस चित्र में पाठक एक शिक्षक महाशय को भी देखेंगे, जो महिलाओं को निशानेबाज़ी की शिक्षा दे रहे हैं।

अन्धों की समस्या

हाल में ही अमेरिका के न्यू-यार्क नगर में संसार भर के अन्धों की संस्थाओं के विशेषज्ञ-प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ था। उक्त सम्मेलन के लिए अमेरिका के प्रेज़िडेण्ट हूवर ने भारत के तीन प्रमुख विशेषज्ञों को आमन्त्रित किया था। उनके नाम श्री० पी० एन० वेङ्कटराव, मि० सी० जी० हण्डरसन और श्री० ए० के० शाह हैं। श्री० पी० एन० वेङ्कटराव मैसूर-शिक्षा-विभाग के सदस्य तथा अन्धों के अखिल भारतीय कार्यकर्त्ता-समिति के मन्त्री हैं। आप अन्धों की समस्या में विश्व-प्रसिद्ध विशेषज्ञ हैं। श्री० सी० जी० हण्डरसन अखिल भारतीय अन्धा-सहायक-समिति के प्रधान हैं और श्री० ए० के० शाह कलकत्ता के अन्धों के स्कूल के प्रिन्सिपल हैं।

न्यू-यार्क में संसार भर की 'अन्धा-सहायक-समितियों' के विशेषज्ञों के सम्मेलन का प्रमुख उद्देश्य था—

(१) संसार भर के अन्धों के सम्बन्ध में कार्य करने वालों की अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना बढ़ाना।

(२) इन विशेषज्ञों को अन्य सभ्य देशों की कार्य-प्रणाली से परिचित कराना, जिसके द्वारा वे अपने-अपने देशों में इन नए अनुभवों का उपयोग कर सकें।

न्यू-यार्क में उक्त विशेषज्ञों के सम्मेलन की एक तात्कालिक सफलता यह हुई है कि भविष्य में एक स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय समिति स्थापित की जायगी, जिसके द्वारा अन्धों के सम्बन्ध में नए आविष्कार एवं प्रयोगों तथा अन्धापन दूर करने के नए उपायों से प्रत्येक देश के कार्यकर्त्ता परिचित कराए जायँगे।

हम न्यू-यार्क के उक्त सम्मेलन को आशा की दृष्टि से देखते हैं। साथ ही हम अमेरिका की सरकार के इस महत्वपूर्ण कार्य की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते, जो वह अन्धों के सम्बन्ध में कर रही है। अमेरिका के प्रेज़िडेण्ट श्री० हूवर महोदय का सारे देशों के विशेषज्ञों को स्वयं आमन्त्रित करना इस बात का द्योतक है कि अमेरिका की सरकार संसार के एक विशेष पीड़ित मनुष्य-समाज की सेवा के निमित्त कितनी दिलचस्पी ले रही है—उस पीड़ितों विशेष मनुष्य-समाज की सेवा के निमित्त, जिनकी संख्या आज हमारे अभागे देश में १५ लाख है और जिनकी चिन्ता हमारे देश की विदेशी केन्द्रीय सरकार को नहीं है।

न्यू-यार्क के उक्त सम्मेलन में श्री० वेङ्कटराव ने भारत के अन्धों की दयनीय एवं मर्मस्पर्शी कहानी कहते हुए कहा कि भारत के एक प्रान्त में अन्धों के इतने स्कूल हैं कि अधिकारी उन अभागों की आवश्यकताएँ और उनकी उन्नति के साधन का निरीक्षण करने के लिए एक विशेष अफ़सर की नियुक्त कर सकते हैं। इस प्रकार एक ही क्या, प्रत्येक प्रान्त में अन्धों के लिए विशेष अफ़सरों की नियुक्ति वाञ्छित एवं अनिवार्य है। परन्तु यह कार्य तभी सम्पन्न हो सकता है, जब केन्द्रीय सरकार स्वयं इस कार्य में दिलचस्पी ले तथा अन्धों और यदि सम्भव हो तो अन्य अपाहिजों, जैसे गूँगे और बहरों, के निमित्त स्वतन्त्र विभाग खोले जायँ, जिनमें आविष्कारों के लिए भी समुचित प्रबन्ध रहे। इस कार्यक्रम की सफलता के लिए सब से आवश्यक बात यह है कि केन्द्रीय सरकार स्थानीय सरकारों के मन्त्रियों के हाथ से यह महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व स्वयं ले ले। आजकल अन्धों का प्रश्न स्थानीय सरकार के मन्त्रियों के हाथ में है। देश के शासन-विधान के अनुसार ये मन्त्री व्यवस्थापिका सभा के उत्तरदायी नहीं हैं। इन्हें अधिकारी-विभाग (Executive Department) के अधीन और उनकी अनुमति पर कार्य करना पड़ता है। इसलिए यह बात स्वाभाविक ही है कि इन अभागे प्राणियों के उचित मानवी अधिकारों का संरक्षण उस सीमा तक नहीं होता, जहाँ तक होना आवश्यक था।

इस अभागे देश में आज एक-दो, दस-बीस, सौ-हज़ार नहीं, वरन् १५ लाख प्राणी अन्धे हैं। इनका सङ्गठन कर तथा इन्हें शिक्षा और अन्य व्यवस्थाओं से पूर्णतः उपयोगी बना कर राष्ट्र का बहुत कुछ हित सम्पन्न किया जा सकता था! पर राष्ट्र अपना होते हुए भी—हमारी सरकार अपनी नहीं है। भारत का यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य है।

* * *

उपहासजनक अभिज्ञता

विगत १४वीं जुलाई को बम्बई हाईकोर्ट में चीफ़-जस्टिस और मि० जस्टिस बार्लो के इजलास में इस मनोरञ्जक प्रश्न पर क़ानूनी बहस छिड़ी, कि क्या एक महिला के कन्धे पर हाथ रखना उसकी मर्यादा का अपमान करना है? यह क़ानूनी प्रश्न नदियाद के डॉक्टर बालूभाई भट्ट की उस अपील के सम्बन्ध में था, जिसमें उन्हें नदियाद म्युनिसिपल महिला-अस्पताल की प्रधान डॉक्टर कुमारी अहल्याबाई सामन्त की मर्यादा अपमानित करने के कारण अहमदाबाद के सेशन्स जज ने एक वर्ष कठिन कारावास का दण्ड दिया था।

कुमारी अहल्याबाई के कथनानुसार घटना वाली रात को १२ बजे के समय डॉक्टर बालूभाई कुमारी अहल्याबाई के मकान पर आए और उन्हें अपने साथ नदियाद में प्रसूतिका सम्बन्धी एक आवश्यक मामला निरीक्षण करने को कहा। राह में जब वे दोनों मोटर पर जा रहे थे, डॉक्टर बालूभाई ने कुमारी अहल्याबाई के कन्धों को अपने हाथ से पकड़ कर उन्हें चूम लिया। इस पर कुमारी अहल्याबाई मोटर से कूद कर पास ही एक पेड़ पर चढ़ गईं और वे ४५ मिनट तक उस पेड़ पर चढ़ी रहीं, जबकि एक राही ने उनका उद्धार किया। इसी मामले पर अहमदाबाद के सेशन्स जज ने डॉक्टर बालूभाई को एक वर्ष कठिन कारावास का दण्ड दिया।

डॉक्टर बालूभाई के मुक़दमे की अपील में हाईकोर्ट के सम्मुख बहस करते हुए सफ़ाई-पक्ष के वकील श्री० भूलाभाई ने कहा कि यह मामला पूर्णतः आविष्कार किया हुआ है। आगे चल कर आपने कहा कि मोटर गड्ढे में आ गई थी और इस कारण "बैलेन्स" ठीक करने के लिए अभियुक्त ने कुमारी अहल्याबाई के कन्धे पर हाथ रक्खा। इस पर सबूत-पक्ष के वकील ने चीफ़-जस्टिस से कहा—"भारतीय भावों के अनुसार अभियोक्ता के कन्धे पर हाथ रखना उसकी मर्यादा का अपमान करना है.........।" चीफ़-जस्टिस ने सबूत-पक्ष के वकील का उत्तर देते हुए कहा—"मेरे विचार से केवल हाथ के स्पर्श मात्र से किसी स्त्री की मर्यादा का अपमान नहीं होता।" अन्त में डॉक्टर बालूभाई भट्ट का दण्ड घट कर केवल २०० रुपए जुर्माने के रूप में रह गया।

इस स्थान पर दो बातें विचारणीय हैं। पहली बात यह कि भारत के एक प्रसिद्ध प्रेज़िडेन्सी के सब से बड़े न्यायालय का सब से बड़ा न्यायाधीश "हिज़-मैजिस्टी" के जिस 'क़ानून और शान्ति' द्वारा स्थापित देश अथवा प्रान्त के न्याय-विभाग का सब से बड़ा विधायक है, वह उस देश अथवा प्रान्त की स्त्रियों की मर्यादा नहीं समझ सकता। वह इतनी साधारण बात भी नहीं समझ सकता कि किसी पुरुष के द्वारा किसी पराई स्त्री के कन्धे पर हाथ देना, उसकी मर्यादा का अपमान करना है। और यदि वह इतनी साधारण बात भी नहीं समझ सकता तो उसके हाथ में सारी प्रेज़िडेन्सी के न्याय का भार सौंपना न्याय का उपहास करना है। हिज़ लॉर्डशिप की यह अभिज्ञता भारत के अधिकांश न्यायालयों एवं न्यायाधीशों के इस देश-सम्बन्धी भयानक अज्ञान का द्योतक है। हम नहीं जानते इसके मूल में हमारा दुर्भाग्य है अथवा भारत में ब्रिटिश-शासन की कृपा (?)!

दूसरी बात डॉक्टर बालूभाई भट्ट के दो सौ रुपए जुर्माने के सम्बन्ध में है। हमें इस बात से भी कोई सम्बन्ध नहीं, कि डॉक्टर बालूभाई दोषी थे अथवा निर्दोष। हमें तो यहाँ केवल इसी बात पर विचार करना है कि चीफ़-जस्टिस महोदय तथा मि० जस्टिस बार्लो ने कुमारी अहल्याबाई के कन्धे पर हाथ रखने के कार्य को, अभियुक्त द्वारा वासना की ओर अग्रसर होना बतलाते हुए भी, डॉक्टर बालूभाई की सज़ा घटा कर दो सौ रुपए कर दिए। हमें हिज़ लॉर्डशिप-दि-चीफ़-जस्टिस के इस न्याय पर कोई आश्चर्य नहीं है। यदि इस प्रकार का मुक़दमा इङ्गलैण्ड में होता तो कदाचित अभियुक्त चेतावनी देकर ही छोड़ दिया जाता।

* * *

एक अनुकरणीय बिल

असोसिएटेड प्रेस के अनुसार बङ्गाल प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के सदस्य श्री० जे० एन० बसु प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा में कलकत्ते के व्यभिचार से सम्बन्ध रखने वाला एक उपयोगी बिल उपस्थित

करने वाले हैं। कहते हैं कि वसू महोदय ने सरकार की स्वीकृति के लिए इस बिल के उपस्थित करने की सूचना सरकार को दे दी है। बिल का आशय यह है :—

(१) व्यभिचार-गृह ग़ैर-क़ानूनी बना दिए जायँ और ऐसे गृहों के मालिकों और प्रबन्धकों को क़ानूनी दण्ड दिए जायँ। साथ ही वेश्यावृत्ति के लिए किराए पर अपने मकान देने वालों को भी क़ानूनी दण्ड मिले।

(२) १६ वर्ष से अधिक अवस्था वाले अथवा वाली, उन व्यक्तियों को, जो जानते हुए दूसरे की वेश्यावृत्ति की आय पर अपना निर्वाह करते अथवा करती हैं, क़ानून के द्वारा दण्ड दिया जाय।

सार्वजनिक स्थानों को ऐसे कार्यों से सुरक्षित किया जाय, जिसकी गणना वेश्यावृत्ति में हो सकती है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि श्री० जे० एन० वसू का यह प्रयत्न स्तुत्य है। देश की भीषण सामाजिक दुरवस्था के साथ ही देश की दरिद्रता के कारण आज सारे भारत के नगरों में व्यभिचार-गृहों की संख्याएँ बढ़ रही हैं। इन व्यभिचार-गृहों के लिए गुप्त रीति से प्रायः प्रत्येक नगर में दलालों की समितियाँ स्थापित हैं। इन समितियों का काम प्रलोभन देकर बालिकाओं और औरतों को भगाना है।

ये भगाई हुई बालिकाएँ तथा औरतें इन व्यभिचार-गृहों में किस प्रकार का भयानक नारकीय जीवन व्यतीत करती हैं, इसका संक्षिप्त परिचय हमने गत जुलाई मास के 'चाँद' में दिया था। कहने का अभिप्राय यह है कि व्यभिचार-गृहों में इन अभागिनियों का केवल नैतिक एवं आध्यात्मिक पतन ही नहीं होता, वरन् उनके स्वास्थ्य एवं शरीर का भीषण ह्रास होता है। उन्हें अपनी आत्मा के विरुद्ध, अपने मालिकों की आज्ञा और इच्छानुसार, चाहे वह जितनी बार चाहे, पुरुषों की वासना तृप्त करनी पड़ती है। व्यभिचार-गृहों की तङ्ग दीवारों तथा कमरों में उनके शरीर भले ही क़ैद हों, पर उनकी कातर आहें आज सभ्य संसार को विचलित करने में समर्थ हैं। इस कारण प्रत्येक मनुष्य का, चाहे वह सरकारी कर्मचारी हो अथवा कट्टर राष्ट्रीय, यह पवित्र कर्तव्य है कि श्री० जे० एन० वसू को उनके इस पवित्र प्रयत्न में यथाशक्ति सहायता दे।

इस प्रसङ्ग में हमें बङ्गाल-सरकार से कुछ निवेदन करना है। हम देश की वर्तमान शासन-प्रणाली को राजनीतिक दृष्टि से पूर्णतः अहितकर समझते हैं। हमें बङ्गाल-सरकार से किसी राजनीतिक हित की आशा नहीं है। फिर भी यदि वह अपने प्रान्त के भीतर ऐसे क़ानून के निर्माण में सहायक होती, जो सामाजिक दृष्टि से देश अथवा प्रान्त के लिए उपयोगी हैं, तो वह कुछ अंशों में अपने दायित्व का उचित पालन कर सकती एवं साथ ही साथ अपने को लोकप्रिय बनाने में भी समर्थ हो सकती। देश की वर्तमान व्यवस्थापक सभाओं का जैसा सङ्गठन है, उसके अनुसार किसी सार्वजनिक राजनीतिक हित की कल्पना करना आकाश में महल बनाने के सदृश है; और हम इस प्रकार के महल बनाना भी नहीं चाहते। पर साथ ही इस बात की आशा अवश्य करते हैं कि देश की व्यवस्थापक सभाएँ सामूहिक रूप से प्रत्येक उचित सामाजिक क़ानून के निर्माण में सहायक हों। व्यवस्थापक सभाओं के सदस्यों का—चाहे वे सरकारी अथवा ग़ैर-सरकारी प्रतिनिधि हों; चाहे वे हिन्दू अथवा मुसलमान, ईसाई अथवा पारसी हों—ध्यान हम उनके सामाजिक दायित्व की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। यदि बङ्गाल व्यवस्थापक सभा ने उपरोक्त बिल सर्व-सम्मति से पास कर दिया तथा यदि गवर्नमेण्ट की स्वीकृति के द्वारा वह बिल क़ानून का रूप पा सका, तो हम इस स्तुत्य एवं महत्वपूर्ण कार्य के लिए व्यवस्थापक सभा के सदस्यों तथा बङ्गाल के गवर्नर महोदय को साधुवाद देंगे। पर केवल इतने से ही हमें सन्तोष न होगा। हम चाहते हैं, भारत की प्रत्येक प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के द्वारा ऐसे उपयोगी बिल पास हों। देश की सामाजिक अवस्था का सुधार एक ऐसा विषय है, जहाँ देश की सरकार एवं जनता बिना किसी अड़चन के अपने पारस्परिक सम्मिलित प्रयत्न से देश का बहुत-कुछ कल्याण कर सकती है।

* * *

वेलफ़ेयर-ऑफ़-इण्डिया लीग

बम्बई के श्री० एम० आई० डेविड के शुभ-प्रयत्न से हाल में ही वेलफ़ेयर-ऑफ़-इण्डिया लीग (भारतीय कल्याण-समिति) की स्थापना हुई है, जिसमें

देश के कुछ नामी सज्जन सम्मिलित हुए हैं। लीग का उद्देश्य संक्षिप्त रूप से इस प्रकार है :—

(१) उन यूरोपीय एवं भारतीय सज्जनों को अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए सामान्य अवसर देना, जो भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेशों की स्थिति में देखना चाहते हैं।

(२) देश की ऐसी सारी शक्तियों को सङ्गठित करना, जिनका यह विश्वास हो कि अन्तर्जातीय एवं साम्प्रदायिक मित्रता से ही भारत के उद्देश्य की पूर्ति होगी।

(३) लीग को यथाशक्ति भारतीय और यूरोपीय सज्जनों की प्रतिनिधि-संस्था बनाना और इसके द्वारा पारस्परिक, मानसिक एवं सांस्कृतिक सहयोग का प्रोत्साहन करना।

(४) भारत-सरकार, भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं तथा अन्य सम्प्रदायों से सम्बन्ध बनाए रखना तथा उपरोक्त सभी की सेवा के लिए लीग को सदा तैयार रखना।

(५) उन उपायों पर विचार करना, जिनके द्वारा भारत की राजनीतिक एवं आर्थिक हित की उन्नति हो।

हम श्री० डेविड के इस शुभ प्रयत्न को आशा एवं सन्तोष की दृष्टि से देखते हैं। लीग के प्रति हमारी पूर्ण सहानुभूति एवं सद्भावना है। इस उपयोगी लीग के जन्म का श्रेय श्री० डेविड जैसे दूरदर्शी एवं सज्जन पुरुष को है, जिनका विचार है कि भारत के सभी सम्प्रदाय तथा भारत के भाग्य से सम्बद्ध सभी जातियों की पारस्परिक मैत्री एवं कल्याण-कामना से ही इस देश का कल्याण होगा। श्री० डेविड महोदय की इस धारणा में सचाई का बहुत अंश है। हम भी समझते हैं कि देश के प्रत्येक सम्प्रदाय, जाति तथा धर्मावलम्बी की पारस्परिक मैत्री, भ्रातृभाव एवं सद्भावना से देश का कल्याण होगा; पर केवल इन्हीं बातों से देश का कल्याण होगा, यह एक विवादास्पद विषय है। कम से कम वर्त्तमान काल में पारस्परिक सद्भाव एवं मैत्री तथा भ्रातृत्व के ऐसे स्पष्ट सङ्केत नहीं दीख पड़ते। भारत के भीतर भिन्न-भिन्न जातियों तथा सम्प्रदायों में पारस्परिक मैत्री एवं सद्भाव होना कोई बड़ी बात न थी; पर इस समय बाहर की शक्तियाँ इस शुभ प्रयत्न को विफल करने में सचेष्ट हैं।

फिर भी श्री० डेविड जैसे उद्योगी एवं सद्भावनाओं से प्रेरित पुरुष को परिस्थिति के सम्बन्ध में उतना ध्यान न देना चाहिए, जितना कि अपने कर्तव्य-पालन के विषय में। परन्तु तोभी हम श्री० डेविड महोदय को एक बात से सावधान कर देना उचित एवं आवश्यक समझते हैं। हमारा विचार है कि ऐसे शुभ-प्रयत्नों में कभी-कभी छोटी-छोटी घटनाएँ, जिनका प्रत्यक्ष रूप में कोई भी महत्व नहीं होता, परोक्ष रूप से मनुष्य को पूर्णतः हतोत्साह एवं निराश कर देती हैं। हम चाहते हैं कि श्री० डेविड अपने इस पवित्र प्रयत्न में निष्काम एवं निर्विकार भाव से सदा सचेष्ट रहें।

* * *

जीवन का आदर्श और स्त्रियाँ

श्रीयुत कर्वे महोदय द्वारा संस्थापित भारतीय महिला-विश्वविद्यालय के समावर्तन संस्कार के अवसर पर विश्वविद्यालय की स्नातिकाओं को लक्ष्य करते हुए श्रीमती डॉक्टर मुथ्थूलक्ष्मी ने अपने सारगर्भित भाषण में उनके भाग्य की प्रशंसा की और कहा कि जीवन-युद्ध और मनुष्य-जाति की सेवा के लिए आप भारत के अन्य विश्वविद्यालयों की स्नातिकाओं से अधिक तैयार होकर जा रही हैं; कारण आपको प्रोफ़ेसर कर्वे तथा उनके अन्य त्यागी एवं निस्पृह साथियों के अधीन शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ है। आपने उनके साथ इस बात का अनुभव किया है कि यह उनकी शालीनता, त्याग, निस्पृह सेवाव्रत और सचाई का ही परिणाम है कि आपको इतनी ऊँची और अच्छी शिक्षा मिल सकी है। इस कारण आप जहाँ भी और जीवन को जिस स्थिति में भी रहेंगी, उनके उन सारे गुणों का आदर्श अपने में स्थापित करेंगी।

कहना नहीं होगा कि श्रीमती डॉक्टर मुथ्थूलक्ष्मी का यह भाषण जीवन की उन सात्विक और ओजमय उत्तेजनाओं से परिव्याप्त है, जो आगे चल कर मनुष्य

को पूर्णतः निष्काम एवं स्थितप्रज्ञ-रूप में परिवर्तित करती हैं और जहाँ संसार के सारे सङ्घर्ष आप ही आप शान्त हो जाते हैं। हमें स्मरण है, आज से ठीक आठ वर्ष और कुछ महीने पूर्व उत्तरी भारत की एक इसी प्रकार की, परन्तु इससे कुछ अधिक महत्वपूर्ण संस्था में, स्नातकों को विदा करने के पहले जीवन के इसी आदर्श को लक्ष्य कर एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण और उपयोगी भाषण दिया गया था। सन् १९२३ ई० की एक ग्रीष्म-सन्ध्या को भाई परमानन्द जी ने लाहौर क़ौमी महाविद्यालय के उस वर्ष के स्नातकों को लक्ष्य करते हुए कहा था—"हमें यह मञ्ज़ूर है कि तुम्हें क़ुली का काम करना पड़े, हमें यह भी मञ्ज़ूर है कि रोटियों का प्रश्न हल करने के लिए तुम्हें निकृष्ट से निकृष्ट मज़दूरी करनी पड़े, परन्तु हमें यह मञ्ज़ूर नहीं है कि तुम्हारी हरकतों से दुनिया तुम्हारी ओर नीची निगाह और नफ़रत से देखे। ज़िन्दगी के कशमकश (जीवन के सङ्घर्ष) में चाहे तुम आला से आला अथवा एक अदना से अदना ग़रीब आदमी साबित होओ, हमें इसकी परवाह नहीं है। हम तो चाहते हैं कि अगर तुम्हें जूते भी बनाने पड़ें, तो उस हालत में भी तुम्हारे आचरण और आदर्शों को देख कर दुनिया हैरान रहे और गुज़रने वाले आपस में तुम्हारी तरफ़ श्रद्धा के साथ सङ्केत करते हुए कहते जायँ—'उसने क़ौमी महाविद्यालय में तालीम पाई थी।'"

आठ वर्ष और कुछ महीने पूर्व भाई परमानन्द जी ने लाहौर क़ौमी महाविद्यालय के स्नातकों के सामने राष्ट्रीय शिक्षा के जिस आदर्श को रक्खा था, डॉक्टर श्रीमती मुत्थूलक्ष्मी ने ठीक उसी आदर्श को दूसरे, परन्तु कुछ कमज़ोर शब्दों में पूना के भारतीय महिला-विश्वविद्यालय की स्नातिकाओं के सामने रखने का प्रयत्न किया है और उनके इस शुभ प्रयत्न के लिए हम उन्हें साधुवाद देते हैं।

आगे चल कर स्त्रियों के अधिकारों की चर्चा करते हुए डॉक्टर मुत्थूलक्ष्मी ने उसी भाषण में कहा कि यद्यपि आज हमें पुरुषों के बराबर ही राजनीतिक एवं नागरिक अधिकार प्राप्त हैं, तथापि हममें से अधिकांश अन्य क़ानूनी एवं सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण उनका उपभोग करने से वञ्चित रक्खी जाती हैं। इसलिए मैं अपनी शिक्षित बहिनों से यह बात ध्यान में रखने को कहूँगी कि जब तक हम लोग आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर लेतीं तथा जब तक हम उन प्रचलित क़ानूनों का नाश नहीं कर देतीं, जो हमारी दासता के कारण हैं, तब तक स्वराज्य में भी स्त्रियों का सम-अधिकार सुरक्षित नहीं है।

हम डॉक्टर श्रीमती मुत्थूलक्ष्मी से स्त्रियों के राजनीतिक एवं नागरिक अधिकार वाली बात से पूर्णतः सहमत हैं; परन्तु हम स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता वाली बात को सन्देह और शङ्का की दृष्टि से देखते हैं। हमारा तात्पर्य यह नहीं कि स्त्रियाँ आर्थिक दासता में रहें। हमारा भाव केवल यही है कि 'जब स्त्रियों के जीवन-प्रवेश का प्रश्न', जैसा कि श्रीमती मुत्थूलक्ष्मी ने अपने भाषण में कहा है, समुपस्थित है, उस समय उनके लिए उस आर्थिक स्वतन्त्रता की समस्या अत्यन्त जटिल रूप धारण करती है। उदाहरण के लिए विवाहोपरान्त पत्नी अपनी आर्थिक स्वतन्त्रता के कारण पति से इतना अधिक दूर रहे कि उनके पारस्परिक वैवाहिक जीवन का सुन्दर आदर्श नरक में परिणत हो जाय, तो वह आर्थिक स्वतन्त्रता मनुष्य-समाज की शान्ति एवं सुख के लिए घातक और विषैली होगी। हम स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता के क़ायल हैं; परन्तु वह आर्थिक स्वतन्त्रता किसी भी अवस्था में स्त्रियों के गार्हस्थ्य जीवन एवं मातृत्व के सुमङ्गल पथ में बाधक न हो, अन्यथा उस समय संसार के आवरण से स्त्रीत्व का स्थान नीचा गिर जायगा और स्त्रियाँ सुख और शान्ति की कल्याणमयी मूर्ति होने के स्थान में समाज के लिए नारकीय यन्त्रणाओं से भी अधिक दुखद हो जायँगी।

[आलोचक—श्री० अवध उपाध्याय]

स्त्री और पुरुष—लेखक, महात्मा टॉलसटॉय; अनुवादक वैजनाथ महोदय, बी० ए०; प्रकाशक सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर; पृष्ठ-संख्या १५३; मूल्य ।=)

महात्मा टॉलसटॉय ने स्त्री और पुरुषों के सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा है। उस ग्रन्थ में स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध की लगभग सारी बातों का विचार किया गया है। इस ग्रन्थ में विवाह के सम्बन्ध में भी ख़ूब विचार किया गया है। टॉलसटॉय ने विवाह को मनुष्य-जाति की कमज़ोरी की रियायत माना है और यह भी माना है कि विवाह मानव-जाति की सेवा के उद्देश्य से होना चाहिए। इस ग्रन्थ में इस बात पर भी विचार किया गया है कि वैवाहिक जीवन किस प्रकार आनन्दमय बनाया जा सकता है। यदि स्त्री और पुरुष में किसी बात में मतभेद हो जाय, तो टॉलसटॉय का विचार है कि उन्हें उसकी बात को मान लेना चाहिए, जो उस विषय में अधिक जानता हो। पुस्तक की भाषा बहुत सरल तथा सुन्दर है। कहीं-कहीं अनुवाद के चिन्ह तथा लेखक की नवीनता झलकती है।

* * *

तामिल वेद—लेखक, महात्मा तिरूवल्लुवर; अनुवादक क्षेमानन्द 'राहत'; प्रकाशक सस्ता-साहित्य-प्रकाशक-मण्डल, अजमेर; पृष्ठ-संख्या २४८; मूल्य ॥)

दक्षिण समुद्र के किनारे पर 'तामिल' लोग रहते हैं। यह एक अत्यन्त प्राचीन जाति है और ये अपने को संसार के प्राचीनतम सभ्य मनुष्यों में समझते हैं। उनकी भाषा संस्कृत से भी स्वतन्त्र समझी जाती है और तामिल लोग अपने साहित्य को संस्कृत-साहित्य से कम नहीं समझते।

मूल ग्रन्थ तामिल भाषा में है। यह ग्रन्थ तामिल-भाषा में बहुत प्रसिद्ध है और तामिल लोग इसे पञ्चम वेद कहते हैं। इस मूल ग्रन्थ के लेखक एक बहुत बड़े महात्मा थे। इस ग्रन्थ में सब प्रकार की बातों का वर्णन है। इसमें धार्मिक तथा राजनैतिक विषयों का भी वर्णन है। वास्तव में इस ग्रन्थ के प्रकाशन से हिन्दी-भाषा में एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति हुई है। इसका अनुवाद अत्यन्त ही सुन्दर हुआ है। पुस्तक के प्रारम्भ में 'राहत' जी ने ४६ पृष्ठों की एक सुन्दर भूमिका लिखी है, जिससे इस ग्रन्थ का महत्व और भी अधिक हो जाता है। हम चाहते हैं कि हिन्दी-भाषा-भाषियों में इसका ख़ूब प्रचार हो।

* * *

धर्म-शिक्षा—लेखक, पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी, प्रकाशक तरुण-भारत-ग्रन्थावली, दारागञ्ज, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या २५६, मूल्य १) रु०।

यह धर्मनीति का एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसमें धर्म की व्याख्या की गई है, इस पुस्तक की भाषा सरल तथा परिमार्जित है। कई स्थानों पर उपनिषद् ग्रन्थों, पुराणों तथा शास्त्रों के वाक्य प्रमाण-स्वरूप उद्धृत किए गए हैं, जिनसे इस ग्रन्थ का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। आजकल धर्म के सम्बन्ध में बहुत-कुछ मतभेद फैला हुआ है और धर्म की शिक्षा की ओर लोगों का बहुत कम ध्यान जाता है। स्कूलों तथा कॉलेजों में भी

धार्मिक शिक्षा का विशेष कुछ प्रबन्ध नहीं है। एक प्रकार से ऐसे ग्रन्थों का भी अभाव ही है। ऐसी दशा में वाजपेयी जी का उक्त ग्रन्थ वास्तव में एक बड़े अभाव की पूर्ति करता है। पुस्तक के कुछ अंश वास्तव में बहुत मनोहर तथा सुन्दर हैं। उदाहरण के लिए भर्तृहरि का निम्न-लिखित श्लोक दिया जा सकता है :—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः
दैवं प्रधानमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं विहाय कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः॥

जो संस्कृत वाक्य हैं, इनके अर्थ भी दे दिए गए हैं। इससे पुस्तक का महत्व और भी अधिक हो जाता है। भर्तृहरि का निम्न-लिखित वाक्य भी अत्यन्त ही अधिक सुन्दर है :—

आरभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहिता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्य मानाः
प्रारभ्य चोत्तम जनाः न परित्यजन्ति।

इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक की सब बातों से मैं सहमत नहीं हो सकता, तथापि यह बात निःसङ्कोच रूप से कही जा सकती है कि इसका प्रचार हिन्दी-भाषा-भाषियों में ख़ूब होना चाहिए।

* * *

शाकाहार की विशेषता—लेखक पं० चन्द्रधर अवस्थी; प्रकाशक पं० चन्द्रभान मिश्र, लखनऊ। मूल्य ≋), पृष्ठ-संख्या ४६, छपाई और काग़ज़ साधारण।

इस ग्रन्थ में शाकाहार के पक्ष में अनेक बातें लिखी गई हैं और मांसाहारियों की ख़ूब निन्दा की गई है। इसमें यह भी लिखा गया है कि जो हिन्दू मांस खाते हैं, वे गोहत्या के ज़िम्मेदार हैं। शाकाहार से सब लोग अधिक स्वस्थ तथा बलवान हो सकते हैं। शाकाहार में मस्तिष्क के प्रबल बनाने की भी अधिक शक्ति रहती है। इस कारण से इस पुस्तक का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है।

ठाकुर-ठसक—सम्पादक, स्वर्गीय लाला भगवानदीन 'दीन'; प्रकाशक साहित्य-सेवक कार्यालय, काशी। मूल्य ।=); पृष्ठ-संख्या ४८, छपाई और काग़ज़ साधारण।

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि ठाकुर की अब तक जितनी कविताएँ मिली हैं, उनका इस ग्रन्थ में संग्रह किया गया है। इसके सम्पादक स्वर्गीय लाला भगवानदीन जी हैं। इसमें ठाकुर कवि का अच्छा जीवन-चरित्र है। लाला जी वास्तव में बड़े अच्छे सम्पादक तथा टीकाकार थे, इस कारण इस पुस्तक का महत्व बढ़ गया है।

* * *

Archiv Orientalni Edited by Bedrich Hronzy.

यह पत्रिका प्रेग से निकलती है और पेरिस में छपती है। पाश्चात्य देश के निवासियों ने इस पत्रिका को इस उद्देश्य से निकाला है कि इसमें भारत, चीन तथा जापान आदि पूर्व के देशों के आविष्कार सम्बन्धी लेख छपें। वास्तव में उनका यह प्रयत्न अत्यन्त ही प्रशंसनीय है। इसमें अङ्गरेज़ी, फ़्रान्सीसी और जर्मन भाषा में लेख छपते हैं। इसके सम्पादक ने पूर्व के लोगों से लेख भेजने की प्रार्थना की है। यदि कोई लेखक इस पत्रिका में लेख भेजना चाहें तो उन्हें निम्न-लिखित पते से अपनी रचना भेजनी चाहिए :—

The Editor,
B. HRONZY, Ph. D.
Proha XVIII, Verechovka, 285

* * *

प्राप्ति-स्वीकार

निम्न-लिखित पुस्तकें प्राप्त हुईं। प्रेषक महाशयों को अनेक धन्यवाद।

१—शुद्धि-प्रभाकर—संग्रहकर्ता, सेठजी नारायणलाल जी; मूल्य ॥) प्रकाशक नदारद।

२—सामवेद-संहिता भाषा-भाष्य—भाष्यकार श्री० पण्डित जयदेव जी शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसा-तीर्थ, प्रकाशक, आर्य-साहित्य मण्डल अजमेर; मूल्य ४); पृष्ठ-संख्या १००।

उपन्यास-कला और श्री० प्रेमचन्द के उपन्यास

[श्री० केशरीकिशोर शरण जी, बी० ए० (ऑनर्स), साहित्य-भूषण, विशारद]

(गताङ्क से आगे)

सत्य, गाम्भीर्य और विषय-क्षेत्र

था-साहित्य के उपविभाग तथा आवश्यक गुणों के ऊपर लिखित संक्षिप्त आलोचनात्मक विश्लेषण के ध्यानपूर्वक मनन से निष्कर्ष यही निकलता है कि सुन्दर और सामयिक उपन्यास वही है, जो अर्वाचीन सामाजिक, चरित्र-प्रधान और सत्यात्मक हो—हाँ, घोर सत्यात्मक नहीं। प्रेमचन्द जी देश-भक्त हैं; राष्ट्रवादी हैं, और हैं सच्चे समाज-सुधारक ! अतएव वे उपन्यासों को इसी दृष्टि से लिखते हैं। इनका प्रत्येक उपन्यास किसी न किसी विशेष सन्देश को लेकर ही साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होता है। परन्तु वास्तव में सब एक ही आदर्श या लक्ष्य को लेकर सम्मुख आते हैं। यदि कुछ भेद है तो उनकी पूर्ति के भिन्न-भिन्न मार्गों में। आज तक इनके सात उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। उनमें देश, काल, वस्तु, पात्र और प्रगति का—जो कला के व्यक्त करने के मुख्य अङ्ग* हैं, पूर्ण विकास हुआ है। प्रत्येक पंक्ति में गाम्भीर्य और सत्य† का अत्यन्त सुन्दर सन्निवेश है। उपर्युक्त दो गुणों के बिना सत्साहित्य में वैसी पुस्तकों का कोई आदर नहीं, कोई स्थान नहीं। पुनः इनके सभी उपन्यासों में,यद्यपि उनका स्वरूप भिन्न-भिन्न है, तो भी प्रायः एक ही चित्र चित्रित रहता है और वह चित्र है—हिन्दू-समाज की पतित दशा का, ज़मींदारों के अमानुषिक अत्याचारों का, किसानों की मृत्यु से भी बुरी अवस्था का, अङ्गरेज़ों की शासन-प्रणाली का और नवीन युग की जागृति का। प्रत्येक उपन्यास में एक ऐसे चरित्र का उल्लेख रहता है, जो राष्ट्रीयता के मद में दीवाना है, देश-प्रेम का फ़क़ीर है, और सच्चा सहायक है उन निराधार ग़रीबों का, जिनकी फ़रियाद ईश्वर के अतिरिक्त इस संसार में और कोई सुनने वाला नहीं, जो उत्पन्न होते हैं केवल पूर्वजन्म के कर्मों का फल भोग करने के लिए और संसार के लिए खाद्य उपार्जन कर, स्वयं दाने-दाने के लिए तरस और तड़प कर मर जाने के लिए ! बालाजी, प्रेमशङ्कर, विनय और चक्रधर एक ही श्रेणी (Staff) के हैं। प्रेमचन्द जी का सब से पहला उपन्यास 'वरदान' सम्वत् १९७३ में प्रकाशित हुआ। उस समय राष्ट्रीय आन्दोलन कुछ था तो अवश्य, परन्तु क्रियात्मक कार्य का स्वरूप कुछ और ही था। ग्राम्य-सङ्गठन और जातीय सेवा ही, जो इस समय प्रायः हिन्दू-महासभा के हाथ में है, मुख्य उद्देश्य थे। इन्हीं विचारों पर उक्त उपन्यास का निर्माण हुआ है। बालाजी, जो देवी के वरदानानुसार देशभक्त उत्पन्न हुए

* देखिए श्री० रामदास जी गौड़ का लेख—"प्रेमचन्द और उनके गद्य-काव्य।"—'विशाल भारत' की फ़ाइल से (१९२८)

† उदाहरणार्थ निम्न-लिखित अवतरणों को देखिए, जो यत्र-तत्र से लिए गए हैं :—

(क) सुख सन्तोष से प्राप्त होता है, विलास से सुख कभी नहीं मिलता। —सेवा-सदन, पृ० ९७

(ख) संसार के सारे नाते, स्नेह के नाते हैं। जहाँ स्नेह नहीं वहाँ कुछ नहीं। —निर्मला, पृ० १०२

(ग) दुखी हृदय दुखती हुई आँख है, जिसमें हवा से भी पीड़ा होती है। —निर्मला, पृ० ७

(घ) दासत्व के दारुण, निर्दय आघातों से आत्मा का भी ह्रास हो जाता है। —प्रेमाश्रम, पृ० ७२

(ङ) नैराश्य की अन्तिम अवस्था विरक्ति होती है।

(च) कृतज्ञता हमसे वह सब कुछ करा लेती है, जो नियम की दृष्टि में त्याज्य है।

(छ) असली स्वाधीनता वही है, जो विचार के प्रवाह में बाधक न हो। —रङ्गभूमि, पृ० ६१, ११२

थे, किसी गम्भीर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग नहीं लेते। वे केवल अस्पृश्यता-निवारण और बाढ़ तथा अकाल-पीड़ित मनुष्यों की सहायता करते हैं। परन्तु अहिंसात्मक सत्याग्रह का कुछ आभास इसमें भी मिल जाता है। काशी में जब पक्ष और विपक्ष दोनों दल के लोग लड़ने पर उतारू हो जाते हैं, तब ये रक्तपात के बदले शान्ति से ही काम लेते हैं। वास्तव में यह पुस्तक अन्यान्य पुस्तकों के साथ भावी संग्राम के लिए वातावरण तैयार करती है।

इसके बाद दूसरा उपन्यास 'सेवा-सदन' है, जो कदाचित् उसी समय के लगभग* लिखा गया था। इसमें केवल हिन्दू-समाज के पाशविक अत्याचारों और कुरीतियों का दिग्दर्शन कराया गया है, जिनके द्वारा 'सुमन' जैसी लाड़-प्यार से पली हुई बालिका एक निर्धन के गले मढ़ दी जाती है और अन्त में परिस्थितियों से लाचार होकर वह वेश्या-वृत्ति स्वीकार करती है। परन्तु उसका हृदय उस जघन्य वृत्ति से सदा दूर भागता है और अन्त में कतिपय समाज-सुधारकों के प्रयत्न से वह उस कलुषित और नारकीय जीवन से मुक्ति पाती है। इस पुस्तक में लेखक ने अनमेल-विवाह तथा दहेज-प्रथा की हानि, मन्दिर में वेश्या-नाच का प्रभाव, इत्यादि पर अच्छा प्रकाश डाला है। इसमें यह भी दिखलाया गया है कि पद्मसिंह के समान समाज-सुधारक भी कहाँ तक भीरु हो सकता है। लेखक का सर्वोपरि उद्देश्य यह था कि वास्तव में महिलाएँ 'वेश्यावृत्ति' स्वेच्छापूर्वक नहीं, बल्कि विचित्र परिस्थितियों में पड़ कर ही स्वीकार करती हैं और पर्याप्त सहायता पाने पर दो-चार को छोड़, शेष सभी पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहती हैं। अन्त में वे उस आदर्श नगर की कल्पना करते हैं, जहाँ वेश्याएँ शहर से हटा दी गई हों। यद्यपि बनारस की दालमण्डी के कोठों पर अब भी वही रौनक़ है, सुमधुर स्वर-लहरी की वही झङ्कार उठा करती है, परन्तु "यह उसी उपन्यास का फल है कि प्रयाग* इत्यादि कतिपय नगरों से वेश्याएँ शहर से हटा दी गई हैं।" यह बात हो अथवा न हो, परन्तु लेखक को अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में, कि महिलाएँ प्रेम और आदर की भूखी रहती हैं; उससे विहीन हो वे "महलों में भी सुख से नहीं रह सकतीं",† पूर्ण सफलता मिली है।

'प्रेमाश्रम' में ज़मींदारों के अत्याचार और कर्मचारियों की धाँधली पर प्रकाश डाला गया है, जिनके कारण ग़रीब किसानों का जीना दूभर हो गया है। कौन्सिल-प्रवेश की विफलता तथा उसके सदस्यों और अन्यान्य अधिकारियों की अकर्मण्यता की भी अच्छी चर्चा है। लेखक ने इसमें स्पष्ट कर दिया है कि 'सुख सन्तोष से होता है, विलास से नहीं।' वास्तव में यही सिद्धान्त इस पुस्तक की तालिका है। इसका लेखन-काल सं० १६७७ है। तब तक साम्यवाद का प्रचार भारतवर्ष में बड़े ज़ोरों से हो चुका था; लेखक उसी आदर्श साम्यवादी समाज की कल्पना करता है।

'रङ्गभूमि' प्रेमचन्द जी की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसका सम्बन्ध १६२१ ई० के उस प्रबल आन्दोलन से है, जिसने संसार को स्तम्भित कर दिया था। मिल और कारख़ानों की वृद्धि से नैतिक ह्रास, अधिकारियों की शासन-प्रणाली और देशी नरेशों की दयनीय दशा का नग्न-चित्र लेखक ने बड़ी कुशलता से खींचा है। इसमें किसानों पर ज़मींदारों के अत्याचार की चर्चा नहीं है, बल्कि क़स्बे की साधारण जनता पर पूँजीपतियों की स्वार्थमयी अनीति की। अन्त में एक ग़रीब, परन्तु न्याय पर जान देने वाले अन्धे चमार के विरोध करने के कारण उस प्रबल संग्राम का श्रीगणेश होता है, जो कतिपय वीरात्माओं की आहुति पाकर कुछ काल के लिए मन्द पड़ जाता है, परन्तु मरता नहीं। केवल इसलिए मन्द पड़ जाता है कि समय पाकर दूने उत्साह के साथ उमड़ पड़े। सभी पात्र अपना-अपना 'पार्ट' अदा करके इस रङ्गभूमि से चले जाते हैं। इस उपन्यास का, कदाचित् यही उद्देश्य था कि जनता से उस विश्वास को उठा दें, जो गत चालीस वर्षों से जमा हुआ था कि सरकार उनके

---

* इसका रचना-काल सं० १६७४ है और 'वरदान' का सं० १६७३, अतएव ये दोनों पुस्तकें प्रायः समकालीन हैं। परन्तु मेरा विचार है कि 'वरदान' बहुत दिन पहले का लिखा होगा—हो सकता है कि देर से प्रकाशित हुआ हो, कारण दोनों की रचनाओं में बहुत अन्तर है।

* परिषद् निबन्धावली (प्रथम भाग) पृ० २४

† सेवा-सदन, पृ० ३७३

ऊपर न्याय-बल से शासन करना चाहती है। इङ्गलिस्तान के सभी दलों का उद्देश्य केवल एक है, और वह है शासन करना, अन्तर केवल साधनों में है।

असहयोग आन्दोलन के कुछ काल के लिए शान्त पड़ने पर राष्ट्रीयता की ज्योति साम्प्रदायिक कलह की कालिमा से आच्छन्न हो जाती है। कहाँ १९२१ ई० की हिन्दू-मुस्लिम एकता और कहाँ १९२४ का विकट वैमनस्य! वास्तव में इस अल्प-काल में ही भारतीय अवस्था का कायाकल्प हो गया। उसी दृश्य का करुण एवं रोमाञ्चकारी प्रतिबिम्ब 'कायाकल्प' में झलकता है। परन्तु इस पुस्तक में कुछ अस्वाभाविकता (Romance) आ गई है, परन्तु इस दृष्टि से नहीं कि इसमें असम्भव घटनाओं का उल्लेख है, बल्कि इस दृष्टि से कि पुनर्जन्म इत्यादि सिद्धान्तों पर विश्वास रखते हुए भी उल्लिखित घटनाएँ असत्य प्रतीत होती हैं। परन्तु यदि लेखक उस सिद्धान्त को ठीक मानता है, तो अपना क्या वश?

इस पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात् अभी तक प्रेमचन्द जी का कोई अन्य राजनीतिक उपन्यास नहीं निकला है। निर्मला में, जो कदाचित् विशेषकर स्त्रियों के लिए ही लिखा गया था, केवल सामाजिक कुरीतियों का दिग्दर्शन मात्र है। इसमें वृद्ध-विवाह के कुपरिणाम का एक चित्रांश है। दूसरी पुस्तक 'प्रतिज्ञा', जो कुछ काल तक 'चाँद' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हो रही थी, प्रयत्न करने पर भी पुस्तकाकार हमें देखने को न मिली। परन्तु जहाँ तक मेरा विचार है, यह भी समाज के एक ही अंश को प्रदर्शन करने के लिए लिखी गई है।

अतएव यह स्पष्ट है कि जिस मुख्य उद्देश्य को लेकर श्री० प्रेमचन्द जी के उपन्यास साहित्य-मञ्च पर आए हैं, उसकी पूर्ति में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। अब संक्षेप में उपन्यास-कला की दृष्टि से पुस्तकों की समीक्षा करना आवश्यक है। अतएव हम सर्व-प्रथम शैली पर ही विचार करते हैं।

शैली

शैली दो प्रकार की होती है—एक अलङ्कृत और कवित्वमय तथा दूसरी सरल और सरस। एक में ओज होता है और दूसरी में प्रसाद गुण। कथानक साहित्य के लिए भाषा का सरस, सरल और सुबोध होना आवश्यक है। क्योंकि इसका प्रचार विशेषकर उस साधारण जनता में ही होता है, जो बहुत पढ़ी-लिखी नहीं होती। अतएव क्लिष्ट और दुर्बोध भाषामय कथानक—पुस्तकें लोकप्रिय कदापि नहीं हो सकतीं। इस बात का स्पष्टीकरण स्वर्गीय 'हृदयेश' जी की रचनाओं से पूर्णतया हो जाता है, जो पहले प्रकार की शैली के लेखकों में अग्रगण्य थे। आपकी शैली में तत्सम शब्दों की बहुलता होती थी और वह अलङ्कारों की मधुरता तथा शब्द-विन्यास की अपूर्व योजना के कारण हृदय को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। 'नन्दन-निकुञ्ज' नामक आपकी कहानियों की अनमोल पुस्तक इसी शैली में लिखी हुई है और निस्सन्देह वह उच्चकोटि की पुस्तकों में से एक है। निम्न-लिखित अवतरणों को देखिए:—

(क) "हिन्दू-ललनाओं की प्रीति-मन्दाकिनी सर्वदा लज्जा-कानन के अभ्यन्तर में ही मधुर, परन्तु शनैः शनैः कलरव करती हुई वेग के साथ, किन्तु आवेग-रहित होकर, बहती है। यहाँ प्रीति-पुष्प इतना नहीं खिलता कि निर्बल होकर गिर पड़े; यहाँ का गुलाब खिलता है, परन्तु खिलखिलाता नहीं है। कली फूल होती है, किन्तु फूल कभी सूखता नहीं।"

(ख) "संसार इस समय शान्त है। सान्ध्य-वायु दिवस के कठोर परिश्रम को विश्राम दे रही है। वह कभी पादप-पुञ्ज के मध्य में, कभी निकुञ्ज के अभ्यन्तर में, कभी कदम्ब के कदम्ब में, कभी पुष्पित-फलित वन-राजि में, कभी तमाल-ताल-राशि में मुग्धा नायिका की भाँति अठखेलियाँ करती हुई चली जा रही है। कभी कली से परिहास करती है, कभी लता को आलिङ्गन करता है, कभी कुसुम को चूमती है। आज समीर-लहरी परमानन्दमयी है।"

—'नन्दन-निकुञ्ज' पृ० ३५, ६१

इन पंक्तियों में कीट्स (Keats) के हृदय का स्पन्दन है। कितनी मादकता है! कितना मिठास!! कितना रस!!! परन्तु वास्तव में ऐसी शैली गद्य-काव्य के लिए ही उपयुक्त है, कथा-साहित्य के लिए नहीं। इसमें वर्णनात्मक रचनाएँ बहुत सुन्दर होंगी, किन्तु कथात्मक नहीं। स्वयं हृदयेश जी 'मङ्गल-प्रभात' नामक उप-

न्यास में इस शैली का पूर्ण प्रयोग नहीं कर सके। यहाँ हम उक्त पुस्तक की समीक्षा मानव-विज्ञान इत्यादि की दृष्टि से नहीं करते। क्योंकि वह असामयिक होगी। परन्तु उसकी भाषा नीरस और निर्जीव है। उपन्यास की भाषा बोल-चाल की होनी चाहिए और चूँकि आप ऐसी भाषा लिखने में सिद्धहस्त न थे। इस कारण उसमें न वह ओज है, न मिठास और न वह लालित्य; केवल शब्दों का आडम्बर मात्र है! यत्र-तत्र यदि उस शैली का कुछ अंश मिल भी जाता है, तो वह अस्वाभाविक और असङ्गत होने के कारण और भी कटु प्रतीत होता है। उदाहरण लीजिए :—

"मिश्र जी के होश उड़ गए। उनकी मानसिक दृष्टि के सामने जेलख़ाने की उस अँधेरी कोठरी का चित्र खिंच गया, जिसमें एक बार वे डाके में संलिप्त होने के सन्देह में ३ महीने तक रह आए थे। सौभाग्य से उस समय वे छूट गए थे, पर आज राजेन्द्र ने जब उन्हें उसी नरक-सदृश जेलख़ाने में भिजवा देने की बात कही, तब उनका हृदय भय से विकम्पित हो उठा।"

इन पंक्तियों को देख कर बड़ा आश्चर्य होता है और विश्वास ही नहीं होता कि ये हृदयेश जी की प्रौढ़ लेखनी से निकली हुई हैं। इनकी भाषा न अलङ्कृत है और न मुहाविरेदार; बल्कि दोनों का एक विचित्र मिश्रण है। यदि यही पंक्तियाँ अलङ्कृत भाषा में होतीं, तो इस प्रकार की होतीं :—

"मिश्र जी की चेतना विलुप्तप्राय हो गई। उनकी मानसिक दृष्टि के सम्मुख बन्दी-गृह के उस अन्धकार-पूर्ण गृह का चित्र खचित हो गया, जिसमें एक बार डाके में संलिप्त होने के सन्देह में तीन मास तक वास कर चुके थे। सौभाग्यवश उस समय वे मुक्त हो गए थे, परन्तु आज राजेन्द्र ने जब उन्हें उसी नरक-सदृश बन्दीगृह में पुनः भिजवा देने का प्रसङ्ग उठाया, तब उनका हृदय भय से विकम्पित हो उठा।"

अथवा यदि बोल-चाल की भाषा में होती तो यों होती :—

"मिश्र जी के होश उड़ गए। उनकी आँखों के सामने जेलख़ाने की उस अँधेरी कोठरी की तस्वीर खिंच गई, जिसमें एक बार डाके में शरीक होने के सन्देह में वे तीन महीने तक रह आए थे। सौभाग्य से उस समय वे छूट गए, पर आज राजेन्द्र ने जब उन्हें फिर उसी नरक के समान जेलख़ाने में भिजवा देने की बात कही, तब उनका कलेजा भय से काँप उठा।"

अतएव यह स्पष्ट है कि उपन्यास की भाषा बोल-चाल की होनी चाहिए। उसमें स्वाभाविकता रहती है, कृत्रिमता नहीं। इस प्रकार की शैली का प्रारम्भ यद्यपि भारतेन्दु-काल से माना जाना चाहिए। परन्तु हिन्दी के विद्वानों ने आचार्य द्विवेदी जी को ही आधुनिक हिन्दी की शैली का जन्मदाता माना है। जन्मदाता कोई भी हो, परन्तु यह निर्विवाद है कि इस शैली के परिपोषक श्री० प्रेमचन्द जी ही हैं। इन्होंने इसे परिमार्जित तथा परिष्कृत कर एक नवीन जीवन प्रदान कर दिया है। उसमें नवीन स्फूर्ति है और नया स्पन्दन! कृत्रिम अलङ्कारों तथा शब्दाडम्बरों से वह दबी हुई नहीं है, बल्कि सादगी और ताज़गी से पूर्ण है। उसके सर्वाङ्ग-सुन्दर कलेवर पर सरस सुमनों की सजावट बरबस हृदय को आकर्षित कर लेती है। कुछ बानगी देखिए—

"सब के सब कैसा सन्नाटा खींचे बैठे रहे। मालूम होता था, किसी के मुख में जीभ ही नहीं है। तभी तो यह दुर्गति हो रही है। अगर कुछ दम होता तो इतना पीसे-कुचले क्यों जाते?"—प्रेमाश्रम, पृ० ८०

"मैं इन्हें दिखा दूँगी कि मैं अपने पैरों पर खड़ी हो सकती हूँ। अब इस घर में रहना नरक-वास के समान है। इस बेहयाई की रोटियाँ खाने से भूखों मर जाना अच्छा है। बला से लोग हँसेंगे, आज़ाद तो हो जाऊँगी। किसी के ताने-मेहने तो न सुनने पड़ेंगे।"—रङ्गभूमि पृ० ४८

"क्यों जी, तुम मुझसे भी उड़ते हो? दाई से पेट छिपाते हो? मैं तुम्हारी बातें मान जाती हूँ, तो तुम समझते हो इसे चकमा दिया; पर मैं तुम्हारी एक-एक नस पहचानती हूँ। तुम अपना ऐब मेरे सिर मढ़ कर ख़ुद बेदाग़ बनना चाहते हो?"—निर्मला, पृ० ३५०

उपरोक्त अवतरणों से यह स्पष्ट झलकता है कि प्रेमचन्द जी की शैली सरल, सरस, सुबोध और मुहावरेदार होती है। इस प्रकार की शैली के दो और प्रमुख लेखक हैं—श्री० सुदर्शन जी और कौशिक जी। इनकी भी शैली का नमूना पेश किया जाता है :—

"मैंने सिर झुका कर आत्म-शक्ति और आत्म-संयम का अन्दाज़ा किया, जैसे कोई कूदने के पहले अपने शरीर को तौल रहा हो। सारी उमर सामने थी; कोई सहायक न था। जैसे वह रेतीली यात्रा, जिसमें ज़रा सुसताने को कोई वृक्ष या पानी का कोई तालाब न हो, केवल ऊपर सिर जलाने वाला सूरज हो, और नीचे पाँव झुलसाने वाली आग के अङ्गारों से भी गर्म रेत।"

—सुदर्शन जी

"आह! वह स्मृति कष्टदायिनी होने पर भी कितनी मधुर है! उस स्मृति से हृदय जला जाता है। तन-मन राख हुआ जाता है, फिर भी उसे मिटाने की चेष्टा करने को जी नहीं चाहता। वह स्मृति वह मीठी छुरी है, जिसकी तेज़ धार से हृदय लहू-लुहान हो रहा है; परन्तु उसमें वह मधुरता है, वह मिठास है कि उसे कलेजे से दूर करने को जी नहीं चाहता।"

—कौशिक जी

हमने इन दोनों महाशयों की शैली का अवतरण उनकी कहानियों से लिया है। कारण, ये दोनों सज्जन कहानी लिखने में सिद्धहस्त हैं। दो-एक उपन्यास भी इन लोगों ने लिखे हैं, परन्तु कहानी की भाषा के समान उनकी भाषा रोचक नहीं हो सकी है। अतएव ये उदाहरण उन लोगों की शैली के सुन्दर उदाहरण हैं। ध्यानपूर्वक देखने से सुदर्शन जी की भाषा मँजी हुई और मुहाविरेदार भी है। सरलता और सादगी का तो भाण्डार है ही; परन्तु प्रवाहमयी नहीं है और न रोचक ही। उसे पढ़ने के लिए हृदय को मजबूर किया जाता है। कौशिक जी की कहानियों में Dialogue विशेष रहता है। शैली सरल होती है, परन्तु सरस नहीं। हाँ, कहीं-कहीं दो-एक मुहाविरों का प्रयोग मिल जाता है, जिससे कुछ रोचकता भी आ जाती है, परन्तु वैसी नहीं, जो प्रेमचन्द जी की शैली के एक-एक शब्दों में मिलती है। प्रेमचन्द जी की भाषा में एक अपूर्व विचित्रता है। उसमें रोचकता है, लोच है, मिठास है और सब से अधिक है अपनापन की छाप। इनके वाक्य तेज़ी से दौड़ते हैं और उनमें प्रबल प्रवाह रहता है। इनकी सब से बड़ी विशेषता यह है कि यह उपयुक्त पात्र से उपयुक्त भाषा का प्रयोग तो करवाते ही हैं, परन्तु अवसर और घटना का भी पूरा ध्यान रखते हैं। उदाहरणार्थ, चक्रधर जब मुसलमानों से जाकर गो-वध न करने के लिए प्रार्थना करते हैं, उस समय वे ख़ालिस उर्दू में ही बोलते हैं :—

"बग़दाद और रूम, स्पेन और मिश्र की तारीख़ें उस मज़हबी आज़ादी की शाहिद हैं, जो इस्लाम ने उन्हें अता की थी। अगर आप हिन्दू जज़बात का लिहाज़ करके दूसरी जगह क़ुरबानी करें, तो यक़ीनन इस्लाम के वक़ार में फ़र्क़ न आएगा।"

अथवा मिस्टर जिन की बोली भी सामयिक और स्वाभाविक है :—

"ओ! डैम राजा, अबी निकल जाओ। तुम बी बागी है। तुम बागी का सिफारिश करता है, बागी को पनाह देता है। सरकार का दोस्त बनता है! अबी निकल जाओ।"

परन्तु डॉक्टर गाङ्गुली की भाषा हमें कुछ अस्वाभाविक प्रतीत होती है और युक्तिसङ्गत तो कदापि नहीं। वह कहते हैं :—

"अभी तक उसका जीवन पञ्चभूतों के संस्कार से सीमित था। अब वह प्रसारित होगा, समस्त प्रान्त को, समस्त देश को जागृति प्रदान करेगा, हमें कर्मण्यता का, वीरता का आदर्श बनाएगा।"

यह भाषा कितनी मँजी हुई और शुद्ध है। परन्तु जब हम उन्हीं के मुख से सुनते हैं—"अभी तक हमको कुछ भ्रम था, पर वह भी मिट गया कि सम्पत्तिशाली मनुष्य हमारा मदद करने के बदले उल्टा हमको नुक़सान पहुँचाएगा।" तो हमारे आश्चर्य की सीमा नहीं रहती। क्या ये दोनों पुरुष एक ही हैं? यदि हाँ, तो फिर दो स्थलों में उनकी भाषा में इतना अन्तर क्यों?

उपयुक्त पात्र से यह उपयुक्त भाषा का प्रयोग करवाते अवश्य हैं, परन्तु ग्रामीणों से ऐसा नहीं करा सके; कारण सभी को वह आनन्ददायक नहीं प्रतीत होता। इसलिए वह खड़ी बोली रहते हुए भी ठेठ हिन्दी का प्रयोग करवाते हैं। उनकी भाषा में संयुक्त अक्षर के शब्द नहीं होते और सभी स्थान पर 'श' के स्थान 'स' का प्रयोग होता है। संक्षेप में साँचा खड़ी बोली का होते हुए भी आत्मा 'दिहाती' है। जैसे—

(अ) "बस, एक मरजाद रह गई है, दूसरे की मजूरी नहीं करते बनती। इसी बहाने से किसी तरह

निबाह हो जाता है, नहीं तो बलराज की उमिर में हम लोग खेत के डाँड़ पर न जाते थे।"

(आ) "सूरे, तुम भी ऐसा कहोगे, तो यहाँ कौन है, जिसकी आड़ में मैं छिन भर भी बैठूँगी। × × × इस झोपड़ी के सिवा अब मुझे और कहीं सरन नहीं है।"

परन्तु कहीं-कहीं जब ग्रामीण भाषा में भी किसी से कुछ कहला देते हैं, तो बड़ा मनोरञ्जन होता है। जैसे भालचन्द्र का नौकर कहता है :—

"सरकार, इतना की नौकरी हमार कीन न होई। कहाँ तलक उधार-बाढ़ी ले-ले खाई। माँगत-माँगत थेथर होय गयन।"

प्रेमचन्द जी की वर्णन-शैली तो बड़ी विचित्र होती है। जिस वस्तु का वर्णन करते हैं, उसका बिल्कुल सजीव चित्र आँखों के सामने रख देते हैं। ऐसी प्रबल वर्णन-शक्ति विरलों में ही पाई जाती है। मनोरमा और अहल्या की तुलना तो पढ़ने ही योग्य है।

"आँखें दोनों की एक सी हैं। बाल नेत्रों के समान विहसित, वर्ण भी एक सा है, नख-शिख बिलकुल मिलता-जुलता, किन्तु यह (अहल्या) कितनी लज्जा-शील है, वह कितनी चपल; यह किसी साधु का शान्ति-कुटीर की भाँति लताओं और फूलों से सज्जित, वह किसी गगन-स्पर्शी शैल की भाँति विशाल; यह चित्त को मोहती है, वह पराभूत करती है; यह किसी पालतू पक्षी की भाँति पिंजरे में गानेवाली, वह किसी वन्य पक्षी की भाँति आकाश में उड़ने वाली; यह किसी कवि-कल्पना की भाँति मधुर और रसमयी, वह किसी दार्शनिक तत्व की भाँति दुर्बोध और जटिल।"

इन पंक्तियों को पढ़ कर सचमुच आश्चर्य होता है कि यह गद्य है या पद्य! वास्तव में कवित्व शक्ति की पराकाष्ठा है। इसी कारण श्री० गौड़ जी प्रेमचन्द जी की पुस्तकों को गद्य-काव्य कहते हैं। प्रेमचन्द जी की वर्णन-शैली की एक सब से बड़ी विशेषता यह है कि जब मनुष्य की वास्तविक परिस्थिति और उसके मनोगत गूढ़ भावनाओं को व्यक्त करने के उपयुक्त शब्द नहीं मिलते तो ये उसी प्रकार की एक ज्ञात घटना का उल्लेख कर देते हैं। जिसे पढ़ कर पाठक स्वयं अपनी कल्पना और बुद्धि के बल से उस वास्तविक परिस्थिति तथा भावनाओं का अनुभव कर लेता है।

जहाँ ऐसा प्रसङ्ग आता है, वास्तव में वहाँ शैली की कला पूर्णता प्राप्त कर लेती है। उदाहरणार्थ निम्न-लिखित अवतरण पेश किए जा सकते हैं :—

(१) अपने पति ज्ञानशङ्कर को गायत्री का आलिङ्गन करते देख कर सती विद्या को अपार दुख हुआ। उसकी दशा का वर्णन निम्न-लिखित शब्दों में प्रेमचन्द जी ने किया है—"उसकी दशा उस पतङ्ग की सी थी, जिसकी डोर टूट गई हो, अथवा उस वृक्ष की सी, जिसकी जड़ कट गई हो।"

(२) सुमन का सोलहवाँ वर्ष भी बीत गया और विवाह के लिए दारोग़ा कृष्णचन्द्र ने कुछ विशेष प्रयत्न न किया। परन्तु अब वे अपने को धोखा न दे सके। इस समय उनकी दशा "उस पथिक की भाँति थी, जो दिन भर किसी वृक्ष के नीचे आराम से सोने के बाद सन्ध्या को उठे और सामने एक ऊँचा पहाड़ देख कर हिम्मत हार बैठे।"

(३) "निर्मला की दशा उस पङ्खहीन पक्षी की सी हो रही थी, जो सर्प को अपनी ओर देख कर उड़ना चाहता है; पर उड़ नहीं सकता, उछलता है और गिर पड़ता है। पङ्ख फड़फड़ा कर रह जाता है। उसका हृदय अन्दर ही अन्दर तड़प रहा था; पर बाहर न जा सकती थी।"

(क्रमशः)

तूफ़ाने-सख़ुन

[नाख़ुदाय स न हज़रत "नूह" नारवी]

जो रखते हैं वह हाथ अपना तड़प कर दिल यह कहता है
कोई आसान है दर्दे मुहब्बत का मिटा देना ?

❀

कभी दिल यह कहता है कुछ कहो
कभी हम यह कहते हैं—क्यों कहें,
जो गुज़र गई वह गुज़र गई
अब उसे किसी को सुनाएँ क्या ?

❀

आह जाकर थम रही, नाला पहुँच कर रह गया,
आसमाँ पर जो गया वह आसमाँ पर रह गया !

❀

बादे फ़ना मज़ार सरे रहगुज़र बना,
जब हम बिगड़ गए तो हमारा यह घर बना !

❀

किस तरह उससे निभे, उससे निबाहे कोई,
जिसको हर बात पर आता हो ख़फ़ा हो जाना !

❀

क्योंकर वह हमसे मिल गए यह क्या बताएँ हम,
आपस में उठते-बैठते याराना हो गया !

❀

मुहब्बत में सितम सहने से मर जाना ग़नीमत है,
हम अपनी जान खो देते हैं,दिल खोया नहीं जाता !
ख़ुदा जाने यह है क्या बात साक़ी तेरे साग़र में,
कभी मैला नहीं होता, कभी धोया नहीं जाता !

❀

मिल गया जिसको जो मिलना था ख़ुदा के घर से,
दिल लिया मैंने, दिलेज़ार ने अरमान लिया।
भेस भी ग़ैर का बदला तो हुआ क्या हासिल,
मुझको उसने मेरी आवाज़ से पहिचान लिया।
दिल चुराया है तो आँखें न चुराओ हमसे,
अब कहाँ जाते हो, क्यों छुपते हो, पहिचान लिया।

❀

बीमारे मुहब्बत कभी मर ही नहीं सकता,
वह ज़ोफ़ है, यह जी से गुज़र ही नहीं सकता।
मरता रहे उलफ़त में तो जीने का मज़ा है,
जी ही नहीं सकता है जो मर ही नहीं सकता।
दिल भी तुम्हें दे और सहे ज़ुल्मो सितम भी,
ऐसा कोई कर सकता है, कर ही नहीं सकता।
फ़रियाद भी की मैंने जो उसकी तो उसी से,
इलज़ाम कोई मुझपे वह धर ही नहीं सकता।
आँखों से जवानी में हुई शर्म भी रुख़सत,
अब तेरी हिफ़ाज़त कोई कर ही नहीं सकता।
क्या आप यह कहते हैं, ज़रा फिर तो यह कहिए,
मैं 'नूह' के तूफ़ान से डर ही नहीं सकता।

❀

जो किसी की अदा पे फ़िदा न हुआ,
जो किसी की अदा पे फ़िदा न रहा।
वह जिगर ही नहीं, वह तो दिल ही नहीं,
वह रहे न रहे, वह रहा न रहा।
जो वह ग़म न रहा तो वह दिल न रहा,
जो वह दिल न रहा तो वह हम न रहे,
जो वह हम न रहे तो वह तुम न रहे,
जो वह तुम न रहे तो मज़ा न रहा।

❀

यही बरताव तो दिल छीन लिया करते हैं,
आपके लुत्फ़ो इनायत से भी डरना अच्छा।
कूचए यार में जीना हो तो जीना बेहतर,
दरे दिलदार पे मरना हो तो मरना अच्छा।

❀

मैं किसी को देखते ही मर गया,
कुछ न करने पर भी सब कुछ कर गया।
इश्क़ के दरजों को मैं तै कर गया,
मरते-मरते, मरते-मरते, मर गया।

❀

जिस ज़मीं पर वह सितम ईजाद रख देगा क़दम,
एक-एक ज़र्रा वहाँ का आसमाँ हो जायगा।

❀

किस बेदिली के साथ वह नाज़ आफ़रीं मिला,
आँखें मिलीं, निगाह मिली, दिल नहीं मिला।
ढूँढ़ा है ढूँढ़ने की तरह हर मुक़ाम पर,
औरों को वह मिला हो हमें तो नहीं मिला।
बातें जो और भेद की थीं वह तो मिल गईं,
लेकिन मिज़ाज आपका अब तक नहीं मिला।

❀

पूछ लेते हैं वह मुझे अक्सर,
ख़ैर इतना भी है ख़्याल बहुत।

❀

उनकी आँखों से तो लड़ीं आँखें,
बीच में पड़ के दिल ने खाई चोट।
क्या ख़बर आपको मेरे दिल की,
आप क्या जानिए पराई चोट।

❀

मेरे दिल पर नज़र उनकी पड़ी आज,
नई बर्छी, नए सर से गड़ी आज।
कभी दिल से मिलेगा दिल भी उनका,
लड़ीं आँखें मेरी क़िस्मत लड़ी आज।

❀

यह ज़ाहिर है ज़माने में, यह ज़ाहिर है ज़माने पर,
कि लाखों आफ़तें आती हैं, अक़्लो होश आने पर।

यह मतलब है नज़र भर कर कभी देखूँ न मैं उनको,
निकलवाते हैं वह आँखें मेरी आँखें लड़ाने पर।

❀

चलते-चलते राह अक्सर राह चलते थम रहे,
मरने-जीने का किसी कूचे में सामाँ देख कर।

❀

आज यह है कि आरज़ू क्या चीज़,
कल वह कह देंगे मुझसे तू क्या चीज़!
हज़रते दिल के सब करिश्मे हैं,
मैं हूँ क्या चीज़ और तू क्या चीज़।

❀

कभी जीना कभी मरना पड़ेगा

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

हमें उलफ़त[1] में यह करना पड़ेगा,
क़ज़ा[2] से पेशतर मरना पड़ेगा।
किसी दिन इश्क़[3] में मरना पड़ेगा,
न कुछ करने पे यह करना पड़ेगा।
ख़बर क्या थी हमें दिल देकर उनको,
कभी जीना, कभी मरना पड़ेगा।
तमाशाई[4] अगर दुनिया रहेगी,
तमाशा आपको करना पड़ेगा।
यह हमसे कह रही है गरमीए इश्क़,
किसी दिन तुमको जल मरना पड़ेगा।
हमें मालूम है आदाबे[5] उलफ़त,
समझते हैं जो कुछ करना पड़ेगा।
जिसे दुनिया में जीने की हवस है,
उसे भी एक दिन मरना पड़ेगा।
निहाँ[6] अब रह चुके परदे में जलवे[7],
उन्हें उनको अयाँ[8] करना पड़ेगा।
तड़प दिल की यह हमसे कह रही है,
तुम्हें "बिस्मिल" कभी मरना पड़ेगा।

१—प्रेम, २—मौत, ३—प्रेम, ४—दर्शक, ५—ढङ्ग, ६—छुपे, ७—ज्योति, ८—प्रगट।

स्त्रियों के वोट देने और कौन्सिलों की सदस्या होने के अधिकार

"सोशल रिफ़ॉर्मर" नामक समाचार-पत्र में प्रोफ़ेसर हरिचरण मुकर्जी का "स्त्रियों के वोट देने और कौन्सिलों की सदस्या होने के अधिकार" पर एक महत्वपूर्ण लेख निकला है। पाठकों के लाभार्थ उसका भावानुवाद नीचे दिया जाता है :—

साइमन-रिपोर्ट में कुछ विवेकपूर्ण विचार प्रकट किए गए हैं। उसके अनुसार पुरुष-वोटरों की उन पत्नियों और विधवाओं को वोट देने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए, जिनकी उम्र २५ साल से ऊपर हो। किन्तु यदि ऐसा किया जाय तो इससे स्त्रियों में द्वेष का आविर्भाव होगा, क्योंकि कितनी ही सुयोग्य महिलाएँ, जो इस अधिकार की पात्री हैं, इससे वञ्चित रह जायँगी। यह विरोध उन विधवाओं के सम्बन्ध में और भी स्पष्ट हो जावेगा, जिनके पति वोटर नहीं थे। यह ठीक नहीं कि केवल धनवान या शिक्षित पुरुष से विवाह करने के कारण ही एक महिला को वोट देने का अधिकार मिल जाय, जबकि उससे कम सौभाग्यशालिनी उसकी बहिन अधिक बुद्धिमती और प्रभावशालिनी होती हुई भी इस अधिकार से वञ्चित रक्खी जाय। वास्तव में योग्यता ही इस अधिकार के प्राप्त करने की कसौटी होनी चाहिए। इस झञ्झट को दूर करने का उपाय यही है कि युवावस्था-प्राप्त सभी महिलाओं को वोट देने का अधिकार दे दिया जाय; जिससे समानता आ जाने के कारण किसी को कोई आपत्ति न हो। इसके अतिरिक्त यह विचार भी प्रकट किया जाता है कि जिन लोगों ने किसी निर्दिष्ट श्रेणी तक विद्याध्ययन किया है अथवा जिन्हें किसी विद्या शिक्षा सम्बन्धी विशेष योग्यता के लिए प्रमाण-पत्र (सार्टिफ़िकेट) प्राप्त है, वे ही वोट के लिए चुने जाने के अधिकारी समझे जायँ। किन्तु ऐसा करना भी अनुचित है, क्योंकि इससे वे लोग भी वोट के अयोग्य ठहराए जायँगे, जिन्होंने घर में पढ़ा है, और इस कारण वे किसी विद्यालय का सार्टिफ़िकेट नहीं पेश कर सकते। अनेक प्रान्तों में, विशेषकर स्त्रियाँ, इस कठिनाई को अनुभव करेंगी, क्योंकि वे सामाजिक और आर्थिक कठिनाइयों के कारण स्कूल में नहीं पढ़ सकतीं। इसलिए इसके प्रतिकार का उपाय यह है कि जहाँ तक सम्भव हो, शिक्षा द्वारा कसौटी की सीमा कम कर दी जाय और उस सीमा तक शिक्षा मुफ़्त दी जाय। ये कुछ आपत्तियाँ हैं, जो साइमन कमीशन की सिफ़ारिशों के विरुद्ध पेश की जा सकती हैं। किन्तु दूसरी दृष्टि से यह स्वीकृति चाहे कितनी ही दोषपूर्ण और असम्पूर्ण क्यों न हो, पूर्णतया भ्रमात्मक जान पड़ती है। सब से पहले तो संसार में सभी स्त्रियाँ अपनी सच्ची अवस्था छिपाती हैं। दूसरी बात यह है कि इस समय विशेषकर देहातों में ऐसी कोई संस्था नहीं है, जो बच्चों के उत्पन्न होने का ठीक विवरण रक्खे। स्त्रियाँ मैजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित होकर अपनी आयु के विषय में शपथ लेना एकदम नापसन्द करेंगी। बहुत ही कम स्त्रियाँ मैट्रिक्युलेशन अथवा और कोई सार्टिफ़िकेट, जिससे उनकी सच्ची आयु का पता लग सके, पेश

कर सकेंगी। किन्तु सब से बड़ी कठिनाई जो इस स्वीकृति को निष्फल बना सकती है, वह यह है कि स्त्री-वोटरों का नाम रजिस्टर में दर्ज किया जाना कोई भी पसन्द न करेगा। साधारण जनता की असहानुभूति और उन कट्टरवादियों के विरोध पर, जिन्हें नई रोशनी से चिढ़ है, विचार करते हुए हम यह आशा नहीं कर सकते कि वे इन मामलों में भाग लेंगे। इसका एक ही उपाय जान पड़ता है, और वह यह है कि कुछ ऐसे अफ़सर नियत किए जायँ, जो वोट के योग्य सभी महिलाओं—विशेषकर विधवाओं के नाम दर्ज करें, और पतियों द्वारा उनकी स्त्रियों का नाम अनिवार्य रूप से दर्ज कराएँ। ये विचार यदि कार्यरूप में परिणत किए जायँ, तो इनसे अधिक लाभ की सम्भावना है।

किन्तु केवल वोट का अधिकार प्रदान करना ही पर्याप्त नहीं है। केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा-सभाओं में स्त्रियों के प्रतिनिधित्व के लिए भी नियम बनना चाहिए। जिस समय स्त्रियों अथवा बच्चों के सम्बन्ध में बहस हो रही हो, उस समय वहाँ स्त्रियों की उपस्थिति अनिवार्य है।

स्त्रियों के अधिकार, स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध, स्त्रियों का दायभाग, पतियों से मतभेद होने पर तलाक़ देने का अधिकार, बालकों की अभिभावकता, कारख़ाने और खानों में काम करने वाले बालकों और स्त्रियों के लिए नियमादि, बालकों के अपराध और उनकी सज़ा आदि के सम्बन्ध में जो क़ानून हैं, उनकी पूरी जाँच आवश्यक है और जिस समय इन नियमों पर विचार किया जाय, उस समय वहाँ स्त्रियों का उपस्थित रहना आवश्यक है। शासन-विधान में इस बात की व्यवस्था की जाय कि छोटे लाट या बड़े लाट को इस बात का अधिकार हो कि वे उपरोक्त विषयों की जानकार कुछ महिलाओं को निर्दिष्ट संख्या में नियुक्त करें, ताकि वे इन विषयों में से किसी एक के भी सम्बन्ध में क़ानून बनने के समय अपना विचार प्रकट कर सकें। जब तक धारा-सभा की बैठक हो, तब तक एक तेज़ निगाह रखने की आवश्यकता है, जिसमें महिलाएँ वहाँ अनुपस्थित न हों। यह तभी सम्भव है, जब कि क़ानून द्वारा कौन्सिल में महिलाओं के लिए एक ख़ास व्यवस्था की जाय, जैसा कि सेण्ट्रल कमिटी की रिपोर्ट में सिफ़ारिश की गई है। साइमन कमीशन के सदस्यों ने ऐसे विषयों को कार्यरूप में परिणत करना कठिन समझ कर, इसकी अवहेलना की है। वे संयुक्त निर्वाचन में स्त्रियों को विशेष स्थान देने के भी विरोधी जान पड़ते हैं, क्योंकि ऐसा करना उनकी समझ में प्रतिनिधि सरकार (Representative Government) की सत्ता को अस्वीकार करना होगा। किन्तु आश्चर्य की बात है, कि उन्होंने मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन और अछूतों के लिए संयुक्त निर्वाचन में विशेष स्थान के लिए सिफ़ारिश की है। यदि उनका यह विचार है कि महिलाएँ इन लोगों की अपेक्षा अच्छी दशा में हैं और क़ानून के द्वारा उनकी सहायता करने की आवश्यकता नहीं है, तो स्त्रियों की वर्तमान दशा की तह तक वे नहीं पहुँच सके हैं। उन्हें और अधिक अधिकार न देकर, यदि केवल योग्यता-मात्र को सर्वोपरि समझा जाय तो यह उनके लिए एक बड़ी भारी कठिनाई होगी, क्योंकि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दशा में किसी प्रकार भी वे पुरुषों के बराबर नहीं कही जा सकतीं। जितनी कठिनाइयाँ अछूतों के सामने हैं, उतनी ही इन्हें भी झेलनी पड़ती हैं। इस कमी की पूर्ति करने के लिए यदि नियोजन (Nomination) का आश्रय लिया जाय, जैसा कि रिपोर्ट में सिफ़ारिश की गई है, तो इससे पक्षपात उत्पन्न होगा और वे ही महिलाएँ नियुक्त हो सकेंगी, जिन पर अफ़सरों की कृपा-दृष्टि होगी, और जो वास्तव में योग्य हैं, किन्तु अफ़सरों की कृपा-दृष्टि उन पर नहीं है, वे छोड़ दी जायँगी। फलतः ऐसा करना साधारण (Popular) सरकार की सत्ता को अस्वीकार करना होगा।

संयुक्त निर्वाचन में निर्दिष्ट संख्यक स्थान सुरक्षित रक्खे जाने चाहिए, जैसा कि अनेक महिला-प्रतिनिधि-मण्डलियों की माँग है। किन्तु इसके साथ ही यह भी कठिन न होगा, यदि परीक्षा के तौर पर बड़े-बड़े शहरों में चुनने वाली स्त्रियों की संस्थाएँ (Constituencies) १० वर्ष के लिए स्थापित की जायँ और उन्हें अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया जाय। वोट देने का अधिकार किसी जाति अथवा सम्प्रदाय-विशेष की औरतों के लिए नहीं; किन्तु उस स्थान की स्त्री-मात्र को होना चाहिए। और जब निर्दिष्ट समय बीतने पर स्त्रियाँ इस विषय में पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर चुकेंगी,

तब इन विशेष संस्थाओं की अथवा संयुक्त निर्वाचनों में सुरक्षित स्थानों की कोई आवश्यकता न रह जायगी। तब वे पुरुषों के साथ वोट दे सकेंगी और ऐसी सुयोग्य महिलाएँ काफ़ी संख्या में हो जावेंगी, जो पुरुषों के साथ वोट के लिए प्रतिद्वन्द्विता कर सकेंगी। इस विचार को कार्यरूप में परिणत करने से एक यह लाभ और भी होगा कि जाति-विरोध शान्त हो जावेगा, और हिन्दू-मुस्लिम महिलाओं के बीच मित्रता स्थापित हो जावेगी। बङ्गाल की 'प्रेज़िडेन्सी वीमेन लीग' ने (जिस संस्था में यूरोपियन, भारतीय, हिन्दू, मुसलमान और पारसी सभी जाति की महिलाएँ सदस्या हैं) जो सफलता प्राप्त की है, उससे हमें विश्वास होता है कि उपरोक्त विचार कार्य-रूप में परिणत करने के योग्य है। भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के पुरुषों ने राष्ट्रीय हित के लिए एक साथ कार्य करना अस्वीकार कर दिया है। अब इस समय औरतों के लिए आगे बढ़ने का समय है।

❋ ❋ ❋

स्त्रियों का व्यापक क्षेत्र

महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध देशभक्त और सुलेखक श्री० दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर ने उपर्युक्त शीर्षक के अपने छोटे, किन्तु महत्वपूर्ण लेख में भारतीय महिलाओं के विस्तृत कार्यक्षेत्र के सम्बन्ध में अच्छा प्रकाश डाला है। इसलिए हम उसे यहाँ ज्यों का त्यों उद्धृत कर देते हैं, और आशा करते हैं कि हमारी राष्ट्र-सेविका बहिनें इसे ध्यान से पढ़ेंगी और यथासम्भव कार्य में परिणत करने की भी चेष्टा करेंगी।

अहिंसात्मक आन्दोलन का बड़े से बड़ा परिणाम स्त्री-जागृति के रूप में हमारे सामने है। जब तक तलवार की प्रतिष्ठा थी, स्त्री-जाति अबला मानी जाती थी! स्त्री की कर्तव्य-शक्ति का क्षेत्र घर की देहली के अन्दर ही समझा जाता था और यह उचित माना जाता था कि पुरुष ही उसकी रक्षा करें, उसका पालन करें और उसे मार्ग बतावें। अहिंसा की प्रतिष्ठा से स्त्री-जाति को विशाल क्षेत्र प्राप्त हुआ, उसका आत्म-विश्वास जगा, समाज-हित के काम उसने अपने हाथ में लिए। समाज को स्वतन्त्र रूप से प्रेरित करने, मार्ग बताने की तैयारी भले ही स्त्री-जाति में न हो, परन्तु इसमें तो कोई सन्देह नहीं रहा कि भविष्य उसी के हाथ में है।

जिसके हाथ में सत्ता आने वाली है, उसकी ख़ुशामद करके, उसे वश में रखने की, उसे अनुकूल बना कर उसकी सत्ता कम करने की, उसकी स्वतन्त्र प्रेरणा-शक्ति को कुचल डालने की प्रथा राज-दरबार में तो हम सदा देखते आए हैं। आजकल के प्रजासत्तात्मक युग में स्वतन्त्र विचार करने के आलस्य से लाभ उठा कर, तेजस्वी वर्गों की ऐसी ही दशा करने के प्रयत्न नैसर्गिक क्रम से होने लगे हैं। अगर स्त्री-जाति को इस फन्दे से बचना हो, तो अहिंसा-धर्म की स्वयम्भू प्रेरणा पर दृढ़तापूर्वक क़ायम रह कर, उसे स्वतन्त्र विचारपूर्वक अपना रास्ता तय करना चाहिए। हिंसात्मक युग के ऐतिहासिक उदाहरण—फिर वे स्वदेश के हों या विदेश के—हमारे लिए उपयोगी नहीं। शुद्ध प्रेमधर्म जो बतावे, अकपट भाव से उसका अमल करके विश्वास रखना चाहिए कि आख़िर श्रेय उसी में है।

स्त्रियों के सामने सामाजिक सुधार का क्षेत्र पड़ा हुआ है। राजनीतिक क्षेत्र उनके लिए नया खुला है। खादी ने उनके लिए आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्र खोल दिए हैं। साहित्य-क्षेत्र तो उनकी ख़ुशामद कर ही रहा है। तथापि अहिंसात्मक युग का अत्यन्त महत्वपूर्ण और अतिशय व्यापक क्षेत्र बाल-शिक्षा का है। इस क्षेत्र को सब से पहले अपना लेने की आवश्यकता है। इस युद्ध के अन्त में शिक्षा या तालीम की धारणा ही बदल जायगी। भावनाओं की कोमलता और दृढ़ता शिक्षा की नींव होगी, सेवा और सहिष्णुता उसकी प्रकट मूर्ति होगी। हर प्रकार की कला में कुशलता उसका मुख्य अङ्ग होगी। स्वार्थ और स्पर्धा नहीं, किन्तु सहकार और सन्तोष उसकी प्रेरणा होगी। बहिनें आज ही से इसकी तैयारी में लग जायँ।

बाल-शिक्षा में सभी बालक एक साथ पढ़ें। बालक और बालिका का भेद न हो। अहिंसात्मक युग में सब बच्चों की शिक्षा एक ही तरह की हो।

बालकों और बालाओं को एक साथ पढ़ाने में हम कोई भयङ्कर काम करते हों, सो नहीं। लेकिन श्रमजीवी और बुद्धिजीवी लोग और बालक एक साथ पढ़ें, एक ही प्रकार की शिक्षा प्राप्त करें, यह इस युग का महत्वपूर्ण परिवर्तन है। अब तक की सरकारी शिक्षा में यह नियम था, पर यह वातावरण न था। आज भी उच्च-नीच भाव, पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में ज़्यादा है। स्वराज्य के वातावरण में यह भाव मिट जाना चाहिए। इसके मिट जाने पर ही स्त्रियाँ शिक्षा के काम में हाथ लगा सकेंगी। एक वर्ष के युद्ध से यह स्थूल बात स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से बहिनों के ध्यान में आई है। इस दिशा में सच्चा प्रयत्न होने पर ही—जी-तोड़ परिश्रम करने पर ही भविष्य की बाल-शिक्षा में बहिनों का नेतृत्व स्थापित होगा।
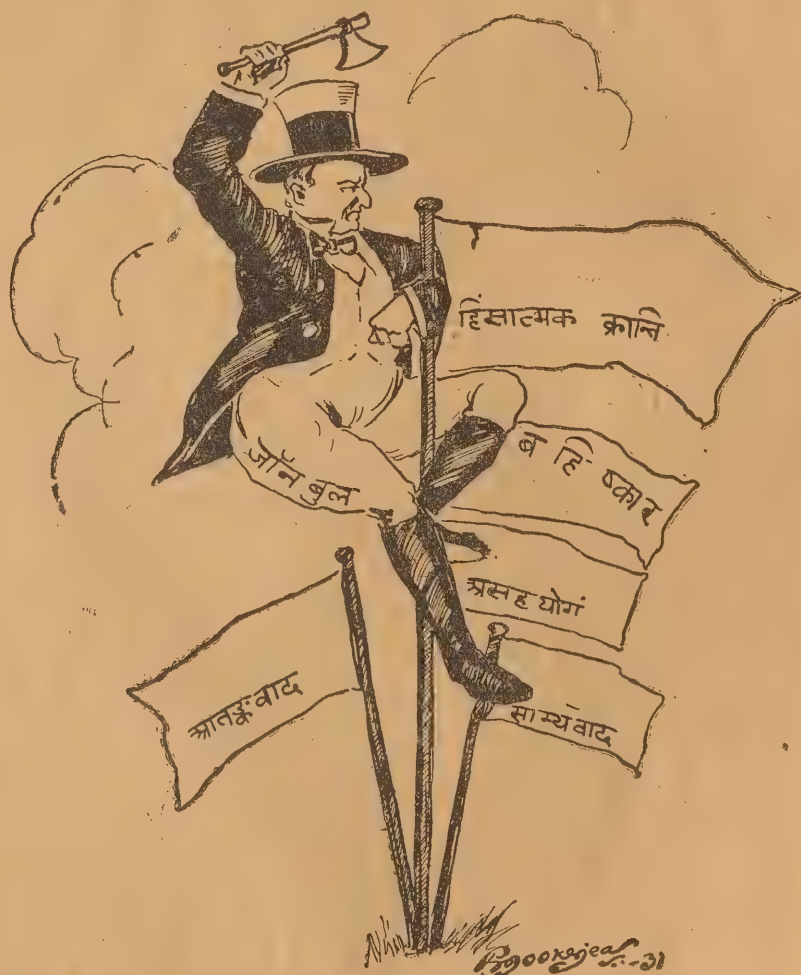
जॉनबुल का कार्य-क्रम

[स्वरकार तथा शब्दकार—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

मिश्र मलार, ताल तीन, मात्रा १६

स्थायी—झूम झूम झूम बदरवा बरसे। सखी श्याम बिना जिया मोरा तरसे॥
अन्तरा—निशि अँधियारी कारी बदरा कड़के, दामिनि दमके हिया मोरा धड़के,
चलत पवन झकझोर, पपैहा, रटत है पिया पिया पिया कबसे॥

स्थायी

×				३				०				१			
रे	ग	रे	ग	म	ग	म	ध	पं	रे	ग	रे	म	ग	रे	स
भू	ऊ	म	भू	ऊ	म	भू	ऊ	म	ब	द	र	वा	ब	र	से
नि										क					
स	स	रे	म	प	नी	सं	रें	प	ध	नी	ध	प	म	ग	रे
स	खी	श्या	म	बि	ना	जी	या	मो	ओ	रा	त	र	से	ए	ए

अन्तरा

प	प	प	प	नी	ध	नि	नि	सं	सं	सं	—	निसं	निरें	सं	—
नि	शि	अँ	धि	या	री	का	री	ब	द	रा	—	कअ	ड़अ	के	—
सं	नि	ध	ध	नि	सं	रें	—	नि	सं	नि	सं	ध	ध	प	—
दा	आ	मि	नि	द	म	के	—	हि	या	मो	रा	ध	ड़	के	—
			क	क											
निसं	निरें	संरें	निसं	धनि	पध	मप	मग	रे	—	म	म	प	—	प	—
चअ	लअ	तअ	पअ	वअ	नअ	झअ	कअ	झो	—	र	प	पै	—	हा	—
					क										
नि		नि	सं	ध	नि	प	ध	म	ध	प	मग	र	—	—	—
र	ट	त	है	पि	या	पि	या	पि	या	क	बअ	से	—	—	—

❀ ❀ ❀
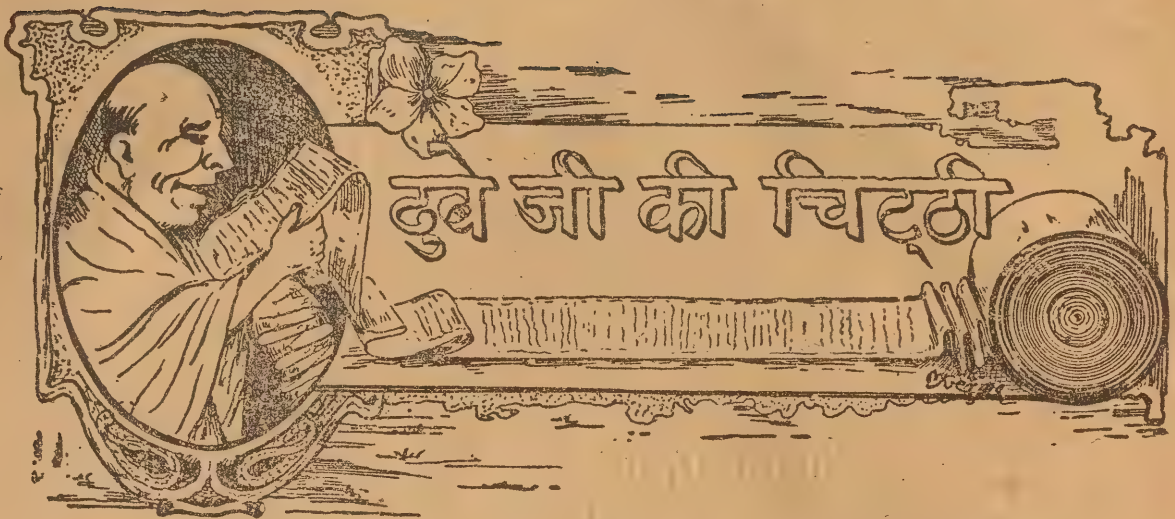
अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आज तीर्थयात्रा के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार प्रकट करने की इच्छा है। सनातनधर्मियों का विश्वास है कि तीर्थयात्रा करने से पाप नष्ट हो जाते हैं और मोक्ष मिलती है। प्रथम तो ईश्वर झूठ न बुलाए, ९० प्रतिशत आदमी यह नहीं समझते कि मोक्ष किस चिड़िया का नाम है। जो समझते भी हैं, वह यह समझते हैं कि मोक्ष हो जाने पर प्राणी आवागमन से छूट जाता है। यदि उनसे पूछा जाय कि आवागमन से छूट कर प्राणी कहाँ रहता है ? क्या ईश्वर के यहाँ कोई तबेला है, जिसमें वह बन्द कर दिया जाता है या मिसिल की भाँति दाख़िल दफ़्तर कर दिया जाता है, अथवा किसी तिजोरी में बन्द रहता है ? इस्लाम-धर्म के मतानुसार तो यह कहा जा सकता है कि क़यामत के दिन सब मुर्दे ज़िन्दे होकर अल्लाह मियाँ के दरबार में पहुँचेंगे। उनका वहाँ न्याय होगा, तत्पश्चात् उन्हें स्वर्ग अथवा नरक में स्थान मिलेगा। हालाँकि क़यामत कब होगी, इसका पता क़यामत तक नहीं चल सकता। बेचारे मुर्दे प्रतीक्षा करते-करते ख़ाक में मिल जाते हैं। अपने राम तो ऐसे स्वर्ग को दूर ही से प्रणाम करते हैं, जिसकी प्रतीक्षा में अनन्त-काल तक ज़मीन के भीतर कीड़े-मकोड़ों की मेहमानबाज़ी करनी पड़े। हिन्दू-धर्मानुसार मोक्ष में स्वर्ग और नरक का कोई झगड़ा ही नहीं। जो प्राणी मोक्ष पा जाता है, वह स्वर्ग और नरक दोनों के लिए नालायक़ समझा जाता है—उसे न स्वर्ग ही मिलता है और न नरक। फिर भगवान जाने, उसे कौन सी बादशाहत मिलती है। यद्यपि यह कहा जाता है कि मोक्ष प्राप्त प्राणी ईश्वर में मिल जाता है, परन्तु अपने राम को इसमें बहुत बड़ा सन्देह है। और यदि यह ठीक है, तो कदाचित् ईश्वर ने मोक्ष का कोर्स इसीलिए बहुत कठिन बना रक्खा है कि जिसमें ऐरे-ग़ैरे नत्थू-खैरे प्राणी मोक्ष प्राप्त करके लक्ष्मी, शेषनाग तथा क्षीर-सागर के साझेदार न बन सकें।

अब ज़रा मोक्ष सप्लाइङ्ग एजेन्सियाँ अर्थात् तीर्थों पर दृष्टिपात करना चाहिए। यद्यपि अपने राम ने तीर्थों का सम्पूर्ण कोर्स पूरा नहीं किया है, परन्तु जो दो-चार तीर्थ देखे हैं, उन्हें देख कर ही अपने राम ने ईश्वर की निजी जायदाद पर से अपना दावा सदैव के लिए उठा लिया है। अपने राम की दृष्टि में लक्ष्मी, क्षीर-सागर तथा शेष-नाग इतने बड़े पदार्थ नहीं हैं, जिनके लिए तीर्थों के धर्म-धक्के खाने आवश्यक हों। किसी भी तीर्थ पर जाइए—सब से पहला प्रश्न यह उठता है कि आपकी गाँठ में क्या है ? तीर्थों पर निवास करने वाले भगवान सब से पहले भक्तों की गाँठ ही ताकते हैं। उनकी यही नियत रहती है कि भक्तराज अपने कपड़े उतार कर हमें दे जाय और स्वयम् लँगोटी बाँध कर माँगता-खाता चला जाय। लक्ष्मीपति होकर भगवान की नियत की यह दशा !

यदि भक्त धनवान है, तो चाहे विश्वनाथ जी की खोपड़ी पर सवार हो जाय, चाहे बदरीनारायण जी की गोद में लेट जाय, चाहे जगन्नाथ जी की बग़ल में सो जाय! परन्तु यदि भक्त ग़रीब है, तो भगवान उसे अपने दर्शन देना तो दूर रहा, स्वयम् उसका मुँह भी न देखें। ख़ाली श्रद्धा-भक्ति की तीर्थों में कोई पूछ नहीं। श्रद्धा-भक्ति तो केवल अपने घर में बुलाए हुए भगवान के प्रति काम देती है। तीर्थों के भगवान तो साढ़े बारह माशे वाले से ही प्रसन्न होते हैं।

अपने राम जब पहले-पहल विश्वनाथ जी के दर्शन करने के लिए पहुँचे, तो मन्दिर के द्वार से सौ गज़ की दूरी पर ही से भगवान के टेक्स-कलेक्टर चींटी की तरह चिमटने लगे। एक महोदय यह कहते हुए पीछे लगे कि "बाबू जी, चलिए हम आपको भली-भाँति दर्शन करा देंगे।" उस समय अपने राम की समझ में यह नहीं आया कि भली-भाँति दर्शन कराने का क्या तात्पर्य है? सोचा, कदाचित् इनके पास कोई विशेष प्रकार का चश्मा होगा, जिसके लगा देने से मनुष्य को दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती होगी। अथवा इनकी सिफ़ारिश से विश्वनाथ जी कोई विशेष रूप धारण करके सामने आ खड़े होंगे। अपने राम यह सोच ही रहे थे कि चारों ओर से मालियों ने चिल्लाना शुरू किया कि—बाबू जी, फूल-हार लेते जाइए। ख़ैर, फूल-हार तो लेना ही था और लिया भी। हालाँकि मालियों ने तो यह प्रयत्न किया था कि बाबू जी उन सबकी पूरी दूकानें ख़रीद कर विश्वनाथ जी की खोपड़ी पर लाद दें, तो उन बेचारों का भार हलका हो जाय; परन्तु अपने राम ने मालियों का बोझ विश्वनाथ जी पर लादना उचित नहीं समझा, हालाँकि अपने राम को यह सुझाया गया कि ऐसा करने से विश्वनाथ जी बड़ी जल्दी प्रसन्न हो जायँगे। परन्तु अपने राम को यह विश्वास नहीं हुआ कि विश्वनाथ जी को मोदियापन तथा पल्लेदारी का शौक़ भी है। ख़ैर साहब, दुगुने दाम पर कुछ फूल-हार लिए। भाव के सम्बन्ध में अपने राम ने कुछ वार्तालाप करना चाहा, तो दर्शन कराने का ठेका लेने वाले ने कहा—"बाबू जी, विश्वनाथ जी के दरबार में भाव-ताव नहीं किया जाता।" अपने राम ने पूछा—"तो क्या यहाँ सब मामला बेभाव रहता है?" उसने कहा—"हाँ।" अपने राम ने सोचा कि यदि इस दरबार में किसी के जूते पड़ने लगें, तो उसकी चाँद का तो सफ़ाया ही हो जाय। परन्तु फिर यह देख कर सन्तोष हुआ कि जूते बाहर ही रखवा लिए जाते हैं। अतएव अपने राम भी अपने जूते बाहर ही छोड़ कर यह सोचते हुए भीतर पहुँचे कि लौटने पर जूते सही-सलामत मिलेंगे भी या नहीं। भीतर पहुँचने पर देखा कि भक्त लोगों ने विश्वनाथ जी को इतना घेर रक्खा है कि यह पता भी नहीं चलता कि यहाँ विश्वनाथ जी हैं भी या नहीं।

साथ के आदमी ने कहा—"बाबू जी, ज़रा ठहर जाइए, ज़रा भीड़ छँट जाने दीजिए!" अपने राम ठहर कर भीड़ छँटने की प्रतीक्षा करने लगे। परन्तु दुर्भाग्य से भीड़ छँटने के बजाय बढ़ती जाती थी। इसी समय एक सेठ साहब आ गए। बस फिर क्या था, विश्वनाथ जी के बॉडीगार्डों ने लोगों को धक्के मार-मार कर हटाया—यहाँ तक कि स्त्रियों तक का लिहाज़ नहीं किया गया। इस प्रकार रास्ता बना कर सेठ साहब विश्वनाथ जी के पास पहुँचाए गए। पता नहीं, उन्हें विश्वनाथ जी से कौन सी प्राइवेट बात करनी थी कि जिसके कारण उन्हें बीस मिनिट लग गए। तब तक अन्य सब लोगों के साथ खड़े इस बात की प्रतीक्षा करते रहे कि कब सेठ साहब बाहर निकलें। आए थे विश्वनाथ जी के दर्शनों को और प्रतीक्षा सेठ जी के दर्शनों की होने लगी। उतनी देर के लिए विश्वनाथ जी को भूल गए—ध्यान रहा केवल सेठ साहब का! ख़ैर, जब सेठ जी उदय हुए, तब लोगों की जान में जान आई। अपने राम भी धक्के खाते और धक्के देते हुए मन्दिर के भीतर पहुँचे और हाथ के फूल-हार को कूड़े की भाँति विश्वनाथ जी की खोपड़ी पर फेंक कर भागने के लिए विवश हुए। पीछे से भीड़ का रेला इतना ज़बरदस्त था कि वहाँ दो-चार क्षण खड़ा रहना भी दुस्तर था। बस भीड़ के बाहर आकर अपने राम ने समझा कि चलो किसी अंश में मोक्ष के हक़दार तो हो ही गए। परन्तु साथ के आदमी ने कहा—"इधर आइए।" अपने राम चुपचाप उसके साथ चल दिए। वह एक दूसरी ओर ले गया, जहाँ छोटी-छोटी अनेक मूर्त्तियाँ थीं। उन सबके नाम बताते हुए साथ के आदमी ने कुछ चढ़ाने के लिए कहा। अपने राम ने पूछा—"ये लोग कौन हैं—विश्वनाथ जी के

रिश्तेदार हैं क्या ?" उसने कहा—"ये सब महादेव हैं।" उस समय अपने राम को पता चला कि मोक्ष की ठेकेदारी केवल विश्वनाथ जी के पास नहीं है। उसमें और भी अनेक "पार्टनर" हैं। ख़ैर साहब, उन्हें भी कुछ न कुछ भेंट देनी पड़ी। इसके पश्चात् वह एक कूप के पास ले गया, वहाँ ले जाकर बोला—"इस कुँए के अन्दर भी एक महादेव हैं।" अपने राम तो सुन कर अवाक् रह गए। कहाँ कैलास और कहाँ यह कूप! परन्तु कदाचित् रुपए कमाने के लिए महादेव जी को इस कूप में आकर रहना पड़ा।

इस प्रकार घूम-फिर कर बाहर आए, तो साथ के आदमी ने अपनी दक्षिणा माँगी। उसे भी कुछ देना पड़ा। इसके पश्चात् भिखारियों ने घेरा। उनसे भी, पिण्ड छुड़ाया, तब बाहर जाकर कहीं स्वतन्त्रता मिली। सम्पादक जी, यह परेशानी अपने राम को उस दशा में उठानी पड़ी, जबकि अपने राम तीन बटा चार हिस्सा नास्तिक हैं। सोलहो आने आस्तिक और सनातन-धर्मावलम्बी पर वहाँ क्या बीतती होगी—यह विश्वनाथ जी अथवा उनके कोई रिश्तेदार ही जान सकते हैं। इसके अतिरिक्त एकाध अन्य तीर्थ पर भी जाना हुआ, परन्तु सब जगह यही दशा देखी। जहाँ पहुँचे वहाँ भगवान ने गाँठ काटने की ही चेष्टा की। कुछ लोगों का कथन है कि इसमें भगवान का क्या दोष ? यह तो पण्डों तथा पुजारियों का दोष है। भगवान तो केवल श्रद्धा के भूखे हैं। अपने राम का कथन है कि भगवान ऐसे पण्डों तथा पुजारियों को रखते ही क्यों हैं ? यदि वह इसे बुरा समझते हैं, तो इन पण्डों तथा पुजारियों को दण्ड क्यों नहीं देते ? परन्तु दण्ड देना तो दूर रहा, उलटे ये पण्डे तथा पुजारी सब तरह से सुखी हैं, शरीर के हृष्ट-पुष्ट, रुपए-पैसे से आसूदा हैं। इससे पता चलता है कि भगवान की भी इनसे मिली-भगत है। "यथा राजा तथा प्रजा" वाली कहावत के अनुसार यह बात माननी पड़ती है कि भगवान ही यह सब कराते हैं। सम्पादक जी, अपने राम ने तो उस दिन से यह क़सम खा ली कि तीर्थों के पास भी न फटकेंगे। यह भी सुना है कि पण्डे लोग प्रथम श्रेणी के नशेबाज़ तथा व्यभिचारी होते हैं। भाँग, चरस, कोकेन, शराब इत्यादि कोई नशा इनसे नहीं बचता। व्यभिचार करने में इतने प्रवीण होते हैं कि तीर्थी भक्तों की स्त्रियों तक पर हाथ साफ़ कर डालते हैं। परन्तु फिर भी भगवान के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती। सच पूछिए तो भगवान की सेवा का पूरा फल ये पण्डे तथा पुजारी उठाते हैं। तीर्थी लोग तो झख मार कर तथा तरह-तरह की मुसीबतें उठा कर घर लौट आते हैं और मन में यह सन्तोष कर लेते हैं कि चलो मोक्ष के हक़दार तो बन गए। आख़िर क्या करें—इतना भी न करें तो फिर सब व्यर्थ है।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

उपालम्भ

[श्री० 'सुकुमार']

किससे है सीख लिया इन नयनों ने हाय ! नित्यप्रति अविरल जल बरसाना है !
रह गया एक यही दुनिया में काम इन्हें—निशि-दिन मेरे दुखी मन को दुखाना है !!
नित्य हार गूँथ कर, फिर बिखराना उसे, राशि-राशि मोती खोके फिर मुँद जाना है !
आती है समझ में न नीति यह नेक मुझे, क्या इन्हें नवीन एक सागर बनाना है ?

[श्री० रतनलाल जी मालवीय, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

(गताङ्क से आगे)

बाढ़, मुटाई और वज़न बढ़ाने वाला भोजन और अन्य उपचार

शरीर की बाढ़ और वज़न का घनिष्ट सम्बन्ध है ; और एक का दूसरे पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ता है। शरीर की बाढ़ के लिए ऐसे भोज्य पदार्थों की आवश्यकता है, जिनमें 'प्रोटीन' या जीवनी-शक्ति-वर्धक तत्व अधिक मात्रा में रहते हैं। भोजन के ये ही तत्व शरीर का वज़न बढ़ाने में अत्यन्त सहायक होते हैं।

शरीर का वज़न बढ़ाने और उसे मोटा बनाने की अपेक्षा शरीर का वज़न घटाना और मुटाई छाँटना बहुत आसान है। मोटे आदमियों को शायद इस बात पर विश्वास न हो और मुटाई छाँटना ही उन्हें संसार में सब से अधिक कठिन मालूम पड़ता हो, परन्तु यदि ऐसे लोग इस अध्याय में बतलाए हुए तरीक़े से अपना भोजन नियमित कर लें, तो निश्चय ही उनके शरीर का वज़न घट जायगा। परन्तु इस प्रकार की गारण्टी दुबले आदमियों को वज़न बढ़ाने के सम्बन्ध में नहीं दी जा सकती। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। मनुष्य के शरीर के मांस की तुलना उसके धन से की जा सकती है। यदि कोई मनुष्य अपनी आमदनी से अधिक ख़र्च करे, तो उसका निर्धन होना स्वाभाविक ही है। परन्तु यद्यपि किसी मनुष्य से यह कहना आसान है कि वह ख़र्च से अधिक पैदा करके धनवान बन सकता है, पर उसका कार्यरूप में परिणत होना अत्यन्त कठिन है। धन की वृद्धि की तरह शरीर पर मांस चढ़ाना और वज़न बढ़ाना भी आसान नहीं है।

जो शरीर को विकसित और पुष्ट करने और वज़न बढ़ाने के इच्छुक हैं, उन्हें परिमित मात्रा में सात्विक और पौष्टिक भोजन शरीर के अन्दर पहुँचाने और वहाँ उसे पूर्णरूप से पचाने और उसका सब रस ग्रहण करने की आवश्यकता है। जिसके शरीर में इतनी शक्ति नहीं है, वह उस शक्ति को प्राप्त किए बिना अपनी महत्वाकांक्षा पूर्ण नहीं कर सकता। यदि एक मोटा आदमी रोज़ दो सेर खाता है और आप उसे केवल एक सेर भोजन दें, तो निश्चय ही उसका वज़न घट जायगा। परन्तु यदि किसी दुबले-पतले मनुष्य की दिन भर की ख़ुराक एक सेर हो और आप उसे एकदम दो सेर तक बढ़ा दें, तो वह इतना अशक्त और बीमार हो जायगा कि वह खाने में बिल्कुल ही असमर्थ हो जायगा। एक बार इङ्गलैण्ड में चार युवकों पर ऐसा प्रयोग किया गया था। उनका वज़न साधारण और शरीर ख़ूब स्वस्थ था। उन्हें रोज़ पाँच हज़ार 'कालोरी' भोजन, जो उनकी आवश्यक ख़ुराक से दुगुना था, दिया जाता था। परन्तु उनमें से एक भी मोटा और तगड़ा न हुआ। प्रत्युत सब के सब बीमार पड़ गए, खाने में असमर्थ हो गए और हर एक का वज़न भी घट गया था।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वज़न बढ़ाने के लिए अधिक भोजन की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता अवश्य है, परन्तु उसकी मात्रा आवश्यकता से कुछ ही अधिक होनी चाहिए। साथ ही भोजन में ऐसे तत्वों का सम्मिश्रण होना चाहिए, जो अधिक मात्रा के साथ ही आसानी से पचाए जा सकें।

वज़न बढ़ाने के लिए समुचित और वैज्ञानिक व्यायाम उतना ही आवश्यक है, जितना भोजन। बिना व्यायाम के न तो शरीर सब भोजन पचाने में ही समर्थ होता है और न उस भोजन का रस ही ठीक रीति से शरीर में पैवस्त होता है। यदि शरीर को मोटा बनाने और वज़न बढ़ाने में किसी प्रकार सफलता मिल भी जाय, तो उससे मांस-पेशियाँ नहीं कसने पातीं और शरीर ढीला-ढाला और थलथल हो जाता है।

आगे हम कुछ ऐसे पदार्थों का वर्णन करेंगे, जिनमें शरीर का विकास करने और वज़न बढ़ाने वाले तत्व मौजूद हैं, परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि दूसरे पदार्थों में यह तत्व रहते ही नहीं हैं। वास्तव में भोज्य-पदार्थों में शायद ही कोई ऐसा पदार्थ हो, जिसमें थोड़ी या बहुत मात्रा में विकास करने वाले तत्व स्थित न हों।

उन पदार्थों में से, जिनमें शारीरिक विकास करने और वज़न बढ़ाने के तत्व नहीं हैं, मांस प्रमुख पदार्थ है। मांस अप्राकृतिक और राक्षसों तथा पशुओं का भोजन है; और जिस प्रकार वह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, उसी प्रकार बाढ़ और वज़न बढ़ाने के लिए भी हानिकारक है। जिन पुरुषों को मांस और अन्य चटपटे पदार्थों के भोजन से अधिक खाने की आदत पड़ गई हो और उसके कारण वे मोटे और थलथल होते जाते हों, उन्हें अपना भोजन एकदम बदल देना चाहिए और केवल ताज़ा शाक और ताज़े फलों पर ही अवलम्बित रहना चाहिए। परन्तु जो लोग दुबले हों, उन्हें मांसादि के बदले केवल शाक और फल ही पर्याप्त न होंगे। उन्हें तो अपने शरीर को पूर्ण स्वस्थ और बलिष्ठ रखने और साथ ही वज़न बढ़ाने के लिए ताज़ा शाक और ताज़े फलों के अतिरिक्त दूध, घी, मक्खन, सूखे फल और कुछ अन्न की भी आवश्यकता होगी और इन पदार्थों को समुचित रीति से पचाने और उनका रस खींचने के लिए वैज्ञानिक व्यायाम की भी।

भोजन का प्रयोग प्रारम्भ करने से पहिले यह जान लेना आवश्यक है कि यदि उस भोजन से शरीर का वज़न लगातार घटता जाता है, तो उसकी मात्रा परिमित नहीं है। परन्तु ऐसी स्थिति में जल्दी वज़न बढ़ाने के इरादे से अधिक खाने लगना पाचन-शक्ति को बिगाड़ डालना होगा और ऐसा करने से भूख मर जायगी। फलतः उसके लिए सब से अच्छा उपाय यह है कि जब अनुभव और अभ्यास से यह मालूम हो जाय कि भोजन की मात्रा आवश्यकता से कम है, तो धीरे-धीरे एक-एक तोला करके उसे बढ़ाना चाहिए और जैसे-जैसे पाचन-क्रिया सुधरती जाय, वैसे ही वैसे मात्रा भी बढ़ा ले जाना चाहिए। परन्तु साथ ही ऐसे पदार्थों को भोजन में से अवश्य निकालते जाना चाहिए, जो सरलतापूर्वक पचाए न जा सकते हों। भोजन में कुछ ऐसे पदार्थों का सम्मिलित करना कदापि न भूलना चाहिए, जिनमें बाढ़ और वज़न बढ़ाने वाले तत्व अधिकता से मौजूद हैं।

उपवास से भी वज़न बढ़ाने में काफ़ी सहायता मिलती है। जिस प्रकार एक छोटे से नाले के किनारे खड़ा हुआ मनुष्य कुछ पीछे हट कर और फिर आगे दौड़ कर एक छलाङ्ग में नाला पार कर जाता है, उसी प्रकार उपवास से बहुत जल्दी वज़न बढ़ाया जा सकता है। कई दिनों के उपवास के पश्चात् शरीर में इतनी शक्ति आ जाती है कि वह भोजन की अधिक मात्रा सरलतापूर्वक पचाने लगता है और उसका रस भी शरीर में शीघ्र पैवस्त होने लगता है। उपवास के अनन्तर केवल दूध के भोजन पर कई सप्ताहों तक रहने का बहुत से मनुष्यों पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा है। हम अपने एक ऐसे मित्र को जानते हैं, जो इस उपाय द्वारा दो-तीन सप्ताह के भीतर ही अपने शरीर का ४० पौण्ड वज़न बढ़ाने में समर्थ हुए थे। इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए उपवास का वर्णन पढ़ लेना अत्यन्त आवश्यक है।

परन्तु यदि किसी में इतनी शक्ति न हो कि वह कई दिनों तक लगातार उपवास कर सके, तो उसे चाहिए कुछ दिनों तक केवल एसिड वाले फलों जैसे—नारङ्गी, नींबू, अङ्गूर, सेब आदि के आहार पर निर्भर रहे। इससे पाचिका अँतड़ियों को आराम मिल जायगा

और उनमें से वे विजातीय पदार्थ निकल जायँगे, जिनके अँतड़ियों में जम जाने से पाचन क्रिया बिगड़ जाती है, जिससे उनमें रस खींचने की शक्ति नहीं रह जाती। अँतड़ियों के शुद्ध करने के लिए उपवास सबसे अच्छा उपाय है। यह याद रखना चाहिए कि जब तक अँतड़ियों का मल पूर्णरूप से न निकाल दिया जायगा, तब तक कोई अपना वज़न औसत दर्जे तक भी नहीं बढ़ा सकेगा।

ऐसे लोगों के उदाहरण बहुत मिलेंगे, जिन्होंने केवल व्यायाम या नियमित आहार के बल पर ही अपना वज़न बढ़ा लिया है। परन्तु वज़न बढ़ाने वाले उपायों में से किसी एक पर विश्वास कर, उस पर अवलम्बित न रह जाना चाहिए। जब तक उसके सब उपचारों का एक साथ प्रयोग न किया जायगा, तब तक उससे पूर्ण लाभ नहीं उठाया जा सकता।

उपचार

वज़न बढ़ाने की आकांक्षा उत्पन्न होने पर यदि यह मालूम हो कि शरीर की पाचन-क्रिया निर्बल है, तो उसके लिए निम्नलिखित उपचारों से बहुत लाभ होगा—पहिले एक दिन का छोटा सा उपवास, फिर एक दिन भोजन, उसके बाद दो दिन तक उपवास, और फिर दो दिन तक भोजन करना, फिर तीन दिन का उपवास और तीन दिन भोजन; तदनन्तर चार दिन का उपवास और चार दिन भोजन। इसी प्रकार सात दिन तक लगातार उपवास और भोजन करने का अभ्यास करना चाहिए। इतने उपचार के बाद अभ्यासी को स्वयं अनुभव हो जायगा कि अब उसे इस उपचार की आवश्यकता नहीं है। भोजन या तो केवल दूध हो या नित्याहार; पर वह हलका हो। दूध का उपयोग भोजन के साथ जैसे खीर आदि में मिला कर भी किया जा सकता है। उपवास से केवल पाचन क्रिया ही ठीक नहीं होती, परन्तु साथ में दुग्धोपचार से बहुत से रोगों का निवारण और जीवनी-शक्ति की वृद्धि भी होती है।

शरीर का वज़न बढ़ाने में भोजन सम्बन्धी निम्नलिखित नियम और ख़ुराकें सदैव याद रखना चाहिए :—

अच्छे-अच्छे डॉक्टरों का मत है कि बहुत से लोग केवल इसलिए दुबले हैं कि वे उचित मात्रा में पानी नहीं पीते। हमें यह कभी न भूल जाना चाहिए कि हमारे शरीर में तीन चतुर्थांश जल-तत्व है और शरीर-रक्षा के लिए जल का शरीर में अन्दर पहुँचना बहुत आवश्यक है। भोजन के साथ पानी पीने से वज़न बढ़ाने में बहुत सहायता मिलती है, क्योंकि भोजन गीला हो जाने से

मधुर-मिलन

उसका रस शरीर में बहुत आसानी से पैवस्त हो जाता है। परन्तु पानी इतना नहीं पी लेना चाहिए कि भोजन एकदम घुल जाय। दिन भर में थोड़ा-थोड़ा करके कम से कम पाँच या छः गिलास पानी अवश्य पीना चाहिए। अन्य भोज्य पदार्थों की अपेक्षा दूध से वज़न बढ़ाने में

लाभ इसलिए होता है कि उसमें पानी की मात्रा अधिक रहती है।

जो लोग शरीर का वज़न और चर्बी बढ़ाने के लिए अधिक 'प्रोटीन' वाले पदार्थों का उपयोग करते हैं, वे भी भूल करते हैं। 'प्रोटीन' भोजन का वह तत्व है, जो शरीर में नाइट्रोजन, सलफ़र और फ़ासफ़ोरस की पूर्ति करता है और उसमें जीवनी शक्ति का विकास करता है। यह तत्व बादाम, अख़रोट, सकलपारा आदि फलों में; दूध, गेहूँ का चोकर, बिना मक्खन निकाले हुए मट्ठे, मांस और आलू में अन्य पदार्थों से कुछ अधिक मात्रा में पाया जाता है। 'प्रोटीन' यद्यपि भोजन के सब तत्वों की अपेक्षा अधिक पोषक और पौष्टिक है, परन्तु यदि वही आवश्यकता से अधिक मात्रा में अन्दर पहुँच जाय, तो पत्थर की तरह पेट में जम जाता है और उसका बाहर निकालना मुश्किल हो जाता है। भारतवर्ष के भोजन में आजकल दो ख़राबियाँ ९९ प्रतिशत कुटुम्बों में पाई जाती हैं। या तो उनका भोजन बिल्कुल तत्वहीन होता है और या पूरी, हलुआ, मिष्टान्नादि के रूप में वह इतना गरिष्ठ हो जाता है कि नमक सुलेमानी भी उससे उत्पन्न ख़राबियों के दूर करने में असमर्थ हो जाता है। शरीर के अविकसित रह जाने का यही मुख्य कारण है। प्रोटीन-युक्त पदार्थों का सदैव सावधानी से प्रयोग करना चाहिए। दूध में जो प्रोटीन रहता है, उससे हानि की कोई सम्भावना नहीं रहती। इसलिए जो लोग अपने शरीर का वज़न बढ़ाने के आकांक्षी हैं, उन्हें चाहिए कि दिन भर में कम से कम एक सेर दूध अवश्य पिएँ।

वज़न बढ़ाने के लिए कार्बोहाइड्रेट तत्व भी बहुत उपयोगी है। यह तत्व खजूर, किशमिश, अन्जीर और केलों में अधिकता से पाया जाता है। मिष्ट और स्वादिष्ट होने के साथ-साथ ये फल वज़न बढ़ाने में भी अपना प्रभाव शीघ्र दिखाते हैं। क्षार-तत्व, जो हरी तरकारी में पाया जाता है, स्वास्थ्य और विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अनुभव और प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि जब तक क्षार-तत्व शरीर में अधिक मात्रा में नहीं पहुँचाया जाता, तब तक कोई मनुष्य औसत दर्जे का वज़न प्राप्त नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त अपने भोजन में ऋतु के अनुसार फलों और तरकारियों, जैसे सेव, नासपाती, नारङ्गी, नींबू, रसवरी, अङ्गूर, बेर और गोभी, टमाटर, प्याज़, गाजर आदि को सम्मिलित करना न भूल जाना चाहिए।

दूध की ख़ुराक

उपवास के उपरान्त केवल दूध की ख़ुराक प्रारम्भ कर देनी चाहिए। साथ में अन्न या अन्य पदार्थों का लेश भी न हो। दूध घण्टे-घण्टे या दो-दो घण्टे के अनन्तर से पिया जा सकता है। एक बार में क़रीब आधा सेर ही पीना चाहिए। एक बार का गरम किया हुआ दूध ठण्डा हो जाने पर दूसरी बार गरम करके मत पियो। इस प्रकार दूध की मात्रा पाँच से आठ सेर तक बढ़ाई जा सकती है। यदि किसी जानकार की देख-रेख में दुग्धोपचार आरम्भ किया जाय, तो वज़न बढ़ाने में अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी।

दूध और मीठे फलों की ख़ुराक

यदि इनके साथ कोई अन्य पदार्थों का सेवन न किया जाय, तो दिन भर में तीन सेर दूध और क़रीब डेढ़ पाव खजूर, अञ्जीर, किशमिश और अन्य फलों का भोजन किया जा सकता है। इतना भोजन तीन बार में करना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक बार एक सेर दूध और आधा पाव फलों का भोजन वज़न बढ़ाने में बहुत लाभदायक होगा। यदि इतनी ख़ुराक से ही पेट भारी हो जाने की आशङ्का हो, तो फलों की मात्रा कम कर, दूध की मात्रा कुछ बढ़ा देनी चाहिए। यदि आप केवल इस ख़ुराक पर निर्भर न रहना चाहें, तो एक बार दोपहर के वक़्त मिश्रिताहार और सन्ध्या समय और सवेरे दूध और फलों का आहार किया जा सकता है। परन्तु दूध और फलों का मिश्रण अपने साधारण भोजन के साथ न करना चाहिए। उनका भोजन अलग ही रखना अधिक लाभदायक है।

(क्रमशः)

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द विरूपाक्ष]

जालना (हैदराबाद, दक्षिण) में एक मनचले मकड़ जी रहते हैं। सुनते हैं, वह अपनी नवपरिणीता पत्नी को पढ़ा कर धर्म और समाज की जड़ में एक साथ ही मट्ठे की मटकी उँडेल देने पर तुल गए हैं। शायद उन्हें मालूम नहीं कि स्त्रियों को पढ़ाना महापाप है !

❀

फलतः धर्मभीरु घरवालों ने श्री० मकड़ जी को बहुत-कुछ ऊँच-नीच समझाया। स्त्री-शिक्षा, धर्म और समाज का घोर घातक है। पढ़ी-लिखी स्त्री को देखते ही, धर्म भगवान की धुकधुकी बन्द हो जाती है और समाज भगवान रसातल चले जाने के लिए कमर बाँध कर खड़े हो जाते हैं। इसलिए जो लोग स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती हैं, वे धर्मध्वंसक और समाज-घातक हैं।

❀

बात यह है कि पढ़ने-लिखने से स्त्रियों की मूर्खता और कूपमण्डूकता दूर हो सकती है, धर्म का ज्ञान प्राप्त हो सकता है, सफ़ाई और स्वास्थ्य के तत्व वे जान सकती हैं; घर का हिसाब-किताब रख सकती हैं; विद्वाना और पण्डिता तथा सभ्या और सुशीला हो सकती हैं। इसके सिवा पढ़-लिख जाने से उन्हें घर की चहारदीवारी के बाहर की बातों का भी ज्ञान प्राप्त हो सकता है। ग़र्ज़ें कि पढ़ने-लिखने से वे नाना प्रकार के अनर्थों की पिटारी बन सकती हैं।

❀

इसीलिए धर्म भगवान पढ़ी-लिखी स्त्रियों से बहुत घबराते हैं और जिस घर में पढ़ी-लिखी स्त्री होती है, उस घर की ओर फूटी आँख भी देखना पसन्द नहीं करते और इसीलिए इङ्गलैण्ड आदि पाश्चात्य देशों से अपना बोरिया-बँधना समेट कर वे सीधे भारतवर्ष में चले आए हैं तथा अपनी जान और माल का ठीका यहाँ के सनातनियों को देकर निश्चिन्ततापूर्वक बुढ़ौती के मज़े ले रहे हैं।

❀

मगर इधर कुछ दिनों से, इस देश में भी ऐसे लोग पैदा हो गए हैं, जो स्वयं तो पढ़-लिख कर घोर नास्तिक हो ही गए हैं, और चाहते हैं कि स्त्रियाँ भी पढ़-लिख कर 'नास्तिका' बन जाएँ, ताकि धर्म का नामोनिशान भी पृथिवी पर न रहने पावे। इन्हीं लोगों में उपर्युक्त मकड़ जी भी हैं। परन्तु मालूम नहीं, बेचारे धर्म ने इन लोगों का क्या छीन लिया है, जो इस तरह उस ग़रीब के पीछे लठ लेकर दौड़ रहे हैं।

❀

ख़ैर जनाब, श्री० मकड़ जी तो मकड़ ही ठहरे, उन्होंने अपने शुभचिन्तकों की समीचीन और सारगर्भित युक्तियों पर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया। फिर आव देखा न ताव, झटपट एक 'मास्टरनी' को बुला लाए और स्त्री को पढ़ाने का प्रबन्ध पक्का कर लिया! परन्तु घरवाले भी कुछ पोले धर्मात्मा न थे। उन्होंने भी निश्चय कर लिया कि जीते जी यह अनर्थ न होने देंगे। फलतः उन्होंने घोषणा कर दी कि अगर तुमने अभी इस गर्हित कार्य से हाथ न खींचा, तो हम सारे के सारे ज़हर खाकर प्राण दे देंगे।

❀

भई, बात तो यह है कि इस घोर कलिकाल में भी हमारा हिन्दू-समाज धर्मात्माओं से ख़ाली नहीं है। कहावत है कि 'सड़ा तेली भी एक अधेली!' धर्म पर जानें देने वाले अभी भी यहाँ मौजूद हैं और तभी तो यह दुनिया ठहरी है, वरना अब तक सारे संसार में

प्रलय मच गई होती, न श्रीजगद्गुरु का कहीं पता होता और न इनके भवभयहारी भङ्गघोंटने का !

❀

इसलिए बधाई है, हैदराबाद के निज़ाम बहादुर को कि उनका राजपाट एक आफ़ते-नागहानी से बाल-बाल बच गया ! कहीं ये धर्मात्मा न होते और मक्कड़ जी अपनी मक्कड़ाइन जी को पढ़ा डालने में सफलता प्राप्त कर लेते तो, उफ़ ! कल्पना करते ही कलेजा काँप जाता है !! आज निज़ाम बहादुर की विशाल रियासत का पता ख़ुर्दबीन लेकर ढूँढ़ने से भी न लगता और बेचारे मौलाना शौकतअली साहब दोनों हाथों से अपनी तोंद पकड़ कर रह जाते। क्योंकि भारत में एक बार फिर मुस्लिम राज्य की प्रतिष्ठा-सम्बन्धी कमनीय कल्पना-लता को तुषार मार जाता !

❀

देखिए न, अभी स्त्री-शिक्षा का प्रचार इस देश में, रुपए में एक पाई भी नहीं है, परन्तु स्त्रियों ने एक साथ ही सारा आसमान सर पर उठा लिया है। कहीं पर्दा फाड़ रही हैं, तो कहीं लेक्चर झाड़ रही हैं; कहीं कौन्सिलों की मेम्बरी माँग रही हैं और कहीं राउण्डटेबिल में जाने के लिए 'पासपोर्ट' कटा रही हैं। अरे जनाब, कितनी कम्बख़्त तो—कहते लज्जा से सिर झुका जा रहा है—वकालत और बैरिस्टरी पास करके अदालतों में बहस करने लगी हैं !!!

❀

इधर जब से गाँधी बाबा ने अपनी आँधी चलाई है, तब से तो इन औरतों के मिज़ाज का पारा एकदम सातवें आसमान पर चढ़ गया है। कहती हैं, हम भी स्वराज लेंगे। भला बताइए, ये स्वराज लेकर क्या करेंगी। वह कोई नाक में पहनने का 'नकबेसर' या कमख़्वाब का लहँगा थोड़े ही है, जो किसी के शादी-ब्याह के अवसर पर पहन कर निकलेंगी ? मगर इन अक़्ल की अन्धियों को समझाए कौन ?

❀

एक दिन दौड़ी हुई चढ़ गईं, शिमले पर लाट साहब के पास ! ज़रा यह भी न सोचा कि बेचारे अपने मन में क्या कहेंगे ? और कहने लगीं, भारत के लिए भावी शासन-विधान की व्यवस्था कीजिएगा तो हमारा भी ख़्याल रखिएगा। क़सम ख़ुदा की, लाट साहब ने यह सुना होगा, तो अवश्य ही रूमाल से मुँह छिपा कर हँस पड़े होंगे ! भला, भावी शासन-विधान में बाबा सत्यनारायण का प्रसाद थोड़े ही बटेगा, जो मुट्ठी भर इन्हें भी चाहिए।

❀

शास्त्रों में लिखा है—'विश्वासो नैव कर्त्तव्यं स्त्रीषु राजकुलेषु च !' मि० केयर हार्डी भी जब हिन्दुस्तान आए थे, तो कह गए थे, कि सरकार कोई भी हो, देशी या विदेशी, उसका विश्वास नहीं करना चाहिए। फलतः अगर भारत की भावी सरकार में कहीं स्त्रियों का भी दख़ल हो गया तो बस, समझ लीजिए 'तितलौकी नीम पर चढ़ गई !' फिर क्या मजाल जो यह रथ एक दिन भी चले। इसलिए दोहाई लाट साहब की, भूल कर भावी शासन-विधान में स्त्रियों को स्थान न दीजिएगा, नहीं तो धर्म और समाज के साथ ही शासन की नौका भी मँझधार में ही डूब जाएगी।

❀

एक तो योंही सारे देश में बेकारी फैली हुई है; बरसाती मेंढकों की तरह ग्रेजुएटों की भरमार हो रही है, मगर काम नहीं मिलता। कहीं औरतों ने भी पढ़-लिख लिया तो और भी आफ़त आ जाएगी। देश के नवयुवक भूखों मर जायँगे। डिप्टी-मैजिस्ट्रेटी और तहसीलदारी से लेकर 'मिरदहागिरी' तक औरतें हथिया लेंगी। बेचारे नवयुवक टापते रह जाएँगे। इसलिए, श्रीजगद्गुरु की शुभ सम्मति है कि जालना के मक्कड़वंशियों की तरह देश के अन्यान्य दक़ियानूसी विचार वाले भी ज़हर खाने के लिए तैयार हो जायँ, ताकि देश, धर्म और समाज के सिर से आए दिन की यह आफ़त जल्दी से जल्दी टल जाए।

❀

और जनाब, सब से बड़ा नुक़सान जो स्त्रियों के पढ़-लिख लेने से होगा, वह यह है कि विवाह के वक़्त पढ़े-लिखे वरों को तिलक-दहेज़ नहीं मिलेगा। कन्याओं के बाप वरों के बापों से कहने लगेंगे कि तुम्हारा लड़का अगर ग्रेजुएट है तो हमारी लड़की भी 'ग्रेजुएटा' है। हमें तो डर है कि कहीं पढ़ी-लिखी लड़कियों के पिता दहेज़ देने के बदले लेने का ही दावा न पेश कर दें !

❀

इसलिए जनाब, अगर आप धर्म, जाति और समाज के रक्षक हैं, तो आपको चाहिए कि लड़कियों को हरगिज़ न पढ़ावें और दुर्भाग्यवश जो कुछ पढ़ गई हैं, उन्हें या तो ज़हर दे दें या कोई ऐसी दवा ढूँढ निकालें, जिसके सेवन मात्र से उनकी सारी विद्या काफ़ूर हो जाए। नहीं तो सच मानिए, यह देश एक क्षण के लिए भी धराधाम पर नहीं ठहरेगा।

❀

कन्याएँ अगर पढ़-लिख लेंगी तो यह मानी हुई बात है कि बकरियों और बछियों की तरह बिकना नहीं चाहेंगी, फलतः एक धर्मानुमोदित वैध रोज़गार पर पानी फिर जाएगा और कन्या के पिता जी को कन्या के बदले तोड़े पाकर बुढ़ौती में निश्चिन्ततापूर्वक भगवान का भजन करने का मौक़ा ही हाथ से निकल जाएगा। इसका परिणाम यह होगा कि भगवान को भोग-राग देने वाले भक्तों की देश में कमी हो जाएगी, वैकुण्ठ में अकाल पड़ जाएगा और बेचारे सपरिषद् भगवान दाने-दाने को तरस कर मर जाएँगे।

❀

आप कहेंगे, जब पढ़े-लिखे लड़के अपने पिता-माता की खातिर ख़ुशी-ख़ुशी बिक जाते हैं और तिलक-दहेज़ की प्रथा के विरुद्ध चूँ तक नहीं करते तो पढ़ी-लिखी लड़कियाँ क्यों न बिकेंगी? मगर जनाब आली, लड़कों को इस विक्रय में दोरुख़ा नहीं, बल्कि तीनरुख़ा लाभ होता है। सवा हाथ की घूँघट वाली बीबी आ जाती है और साथ में बूढ़े पिता जी की श्राद्ध के लिए काफ़ी रुपए भी लेती आती है और लाती है, पढ़े-लिखे दूल्हा जी के सैर-सपाटे के लिए एक बाईसिकिल! फिर बिक कर भी तो उन्हें अपने घर में ही रहना पड़ता है। कहीं लड़कियों की तरह डोली पर चढ़ कर दूसरे के घर जाना पड़ता तो दूसरी बात थी।

❀

यही वजह है कि तिलक और दहेज़-प्रथा के विरुद्ध लड़कियाँ आत्म-हत्याएँ कर रही हैं, परन्तु पढ़े-लिखे नवजवान—भावी भारत के सुयोग्य नागरिक—चूँ तक नहीं करते। आख़िर, बेचारे कुछ बूद्धू थोड़े ही हैं जो ऐसी लाभजनक प्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठाएँ, जिसमें आम का आम और गुठलियों के भी दाम मिल जाते हों।

❀

इसलिए हिज़ होलीनेस का फ़तवा है कि स्त्री-शिक्षा के विरुद्ध ज़हर खाने के लिए देश के पढ़े-लिखे नवयुवक भी तैयार हो जाएँ, नहीं तो ब्याह के साथ-साथ ही पितृ-श्राद्ध के झञ्झट से निश्चिन्तता पा जाने का मज़ा एकदम किरकिरा हो जाएगा और बाप-दादा की पुरानी मर्यादा एकदम मिट्टी में मिल जाएगी। फिर तो न बी० ए० पास करके विवाह करने में विशेषता रहेगी और न एम० ए०।

❀

सुनते हैं, बिहार की स्त्रियों ने, उस दिन परदा-प्रथा की वर्षी भी मना डाली है; परन्तु कोरे ज़बानी जमा-ख़र्च द्वारा, क्योंकि न कहीं पिण्ड-दान की व्यवस्था थी न ब्राह्मण-भोजन की। इसीलिए उस प्रथा की आत्मा प्रेत-योनि पाकर अभी भी बिहार के नाना स्थानों में मँडरा रही है। फलतः श्रीजगद्गुरु की राय है कि अबकी 'पितर-पख' में बेचारे का गया-श्राद्ध भी कर दिया जाए ताकि आवागमन से रहित होकर परम शान्ति पद प्राप्त कर ले। अन्यथा कोरी व्याख्यानबाज़ी से उसकी सद्गति नहीं होगी।

❀

ख़ैर, जब से बिहार की स्त्रियों ने परदा-प्रथा के विरुद्ध जहाद का झण्डा ऊँचा किया है, तब से संयुक्त प्रान्त तथा अन्यान्य प्रदेशों के परदा-पन्थी विशेष चिन्तित हो रहे हैं। वास्तव में चिन्ता की बात भी है। क्योंकि स्त्रियाँ ही तो भले आदमी की इज़्ज़त ठहरीं और अगर किसी ने इज़्ज़त ही देख ली तो फिर रह क्या गया?

❀

इसके सिवा परदा-प्रथा के कारण स्त्रियों का सौन्दर्य बढ़ता है; शरीर का मटमैला रङ्ग भी चहारदीवारी के अन्दर बन्द रहने के कारण सुन्दर स्वर्णाभ बन जाता है। सारे शरीर में नज़ाकत आ जाती है; और शीघ्र ही भव-बन्धन से भी मुक्ति मिल जाती है। फलतः परदे-

द्वारा इहलोक में आराम और परलोक में सद्गति प्राप्त होती है।

❀

हर साल बीबी बदलने में तो यह प्रथा इतनी सहायता प्रदान करती है कि बस, कुछ न पूछिए। हम तो कहते हैं कि अगर यह प्रथा न होती तो सद्गृहस्थों के सम्वत्सरिक मङ्गलानुष्ठान पर ही पानी फिर जाता और एक ही बीबी के पीछे अपना सारा जीवन व्यतीत कर देना पड़ता; बेचारे द्वितीय दार-परिग्रह के लिए तरस कर रह जाते!

❀

यह इस पवित्र और सुन्दर प्रथा का ही परिणाम है, कि कितने ही नवयुवक बीस और पचीस वर्ष की उमर होते न होते पाँच-पाँच बार 'वरं' बनने का सौभाग्य प्राप्त कर लेते हैं। हर साल तिलक, हर साल ब्याह और हर साल श्राद्ध! बारहमासी चहल-पहल मची रहती है। इससे धर्म को भी लाभ होता है और समाज को भी। फिर बाबा जी के लाभ की तो बात ही न पूछिए। श्राद्ध की दक्षिणा समाप्त होते न होते ब्याह की दक्षिणा की डौल लग जाती है।

❀

सद्यजात शिशुओं के लिए तो यह प्रथा गङ्गा माई से भी बढ़ कर मुक्तिदायिनी है। नान्दीमुख श्राद्ध का स्वाद मिटते न मिटते यमलोक चलने के लिए पुष्पक विमान पहुँच जाता है और पाप-ताप-पूर्ण संसार से छुटकारा मिल जाता है। न गुरुजी की छड़ी का डर, न मास्टर साहब के 'स्टेण्ड-अप ऑन दि बेञ्च' का खटका!

❀

प्रसव के पश्चात् माता जी के साथ ही शिशु जी भी चल देते हैं अथवा कुछ दिनों तक पितृ-सुख का मज़ा लेकर महीने दो महीने के बाद प्रस्थान करते हैं। इससे गृहस्थी में दोबारा रौनक़ आ जाती है। और अगर कम्बख़्त ज़िन्दगी कहीं बेहया साबित हो गई तो सुन्दर, इकहरा और हलका शरीर लाभ कर संसार-सुख का अनुभव करते हैं। न ऊपर मांस का बोझ, न भीतर बल की विडम्बना!

❀

इसलिए हिज़ होलीनेस की शुभ-सम्मति है कि अगर स्त्रियों की तरह पुरुषों में भी परदा-प्रथा का प्रचार हो जाए तो देश का विशेष उपकार हो। सुनते हैं अफ़ग़ानिस्तान के स्वनामधन्य भूतपूर्व अमीर बचा सक़ा की समझ में यह बात आ गई थी और वे लड़कियों की तरह लड़कों को भी एक निर्दिष्ट काल तक परदे में रखने की व्यवस्था पर विचार कर रहे थे। मगर अफ़सोस है कि अफ़ग़ानी युवकों के दुर्भाग्यवश बेचारे बीच में ही चल बसे!

❀

कुछ भी हो जनाब, हिज़ होलीनेस तो इस प्रथा के दिलोजान से हिमायती हैं और इनकी राय है कि चहारदीवारी के अन्दर बन्द रखने के साथ ही गत शताब्दी के चीनियों की तरह लोहे के शिकञ्जों से स्त्रियों के पैर भी कस दिए जाएँ जिससे वे परदा-नशीन होने के साथ ही सिन्धुरागामिनी भी बनी रहें। इससे उनके सौन्दर्य की वृद्धि तो होगी ही, इसके साथ ही घर की लक्ष्मी भी अटल-अचल हो जाएँगी और घर सदैव धन-धान्य से परिपूर्ण रहेगा।

❀

हमारा ख़्याल है कि हमारी ही तरह देश के जितने भी सुचतुर व्यक्ति हैं, वे सभी इस प्रथा के पक्षपाती हैं, इसी से तो सुधारकों के घोर आन्दोलन करने पर तथा बिहार में परदा-प्रथा का श्राद्ध हो जाने पर भी उन्होंने अपनी स्त्रियों को तहख़ाने से निकालने का विचार नहीं किया है। क्योंकि ऐसी उपयोगी प्रथा को तोड़ना निरी बेवक़ूफ़ी है। रह गया स्वास्थ्य और शिक्षा-दीक्षा आदि, सो इन बातों से स्त्रियों का वास्ता ही क्या है? घर में रहें, गहने पहनें, मेंहदी से हाथ-पैर रँगें और विवाह-सुख का उपभोग करके फ़ौरन मुक्तिधाम के लिए प्रस्थान कर जायँ। और उन्हें चाहिए ही क्या?

सोने के गहने पर कलकत्ते का प्रसिद्ध मीणाकारी का काम

C
B
A

F
E
D

I
H
G
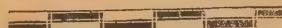
हमारे यहाँ सब प्रकार के सोने के गहने जैसे—चूड़ी, बाला, नेकलेस, अँगूठी, साड़ी-पीन, लेसपीन वग़ैरह, ऊपर बहुत ही सुन्दर कारीगरी का मीणाकारी काम सब रङ्ग में जैसे—सफ़ेद, लाल, हरा, नीला, फ़िरोज़ी इत्यादि रङ्ग में बहुत ही नफ़ीस बनता है।

गिनी सोने की अँगूठी नग १ मूल्य १०)
,, ,, चूड़ी ,, १ ,, २५)
,, ,, साड़ी-पीन ,, १ ,, ३०)
,, ,, लेसपीन जोड़ा १ ,, ३०)

L
K
J

1

2

3

4

5

6

कृपया ट्रायल ऑर्डर दीजिए! आपको पूरा सन्तोष होगा। ऑर्डर के साथ चूड़ी, अँगूठी की नाप भेजिएगा।

नोट :—दो आने का टिकट भेज कर हमारा पूरा सूचीपत्र मँगाइए!
मीनाकारी की वस्तुओं के मँगाने वालों को हमारे यहाँ की मीना की हुई वस्तुओं का २) रु० मूल्य का तिरङ्गा सूचीपत्र मुफ़्त दिया जाता है।

तार का पता :— "नवचेतन"

ठिकाना :—के० मणिलाल कम्पनी जौहरी
१७३ हरीसन रोड, कलकत्ता

फ़ो० नं० :— २७४१, बड़ा बाज़ार

Printed, Published and Edited by Bhuvaneshwer Nath Misra, M. A., vice Tribeni Prasad B. A., in Jail,
At The Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone Road, Chandralok—Allahabad.